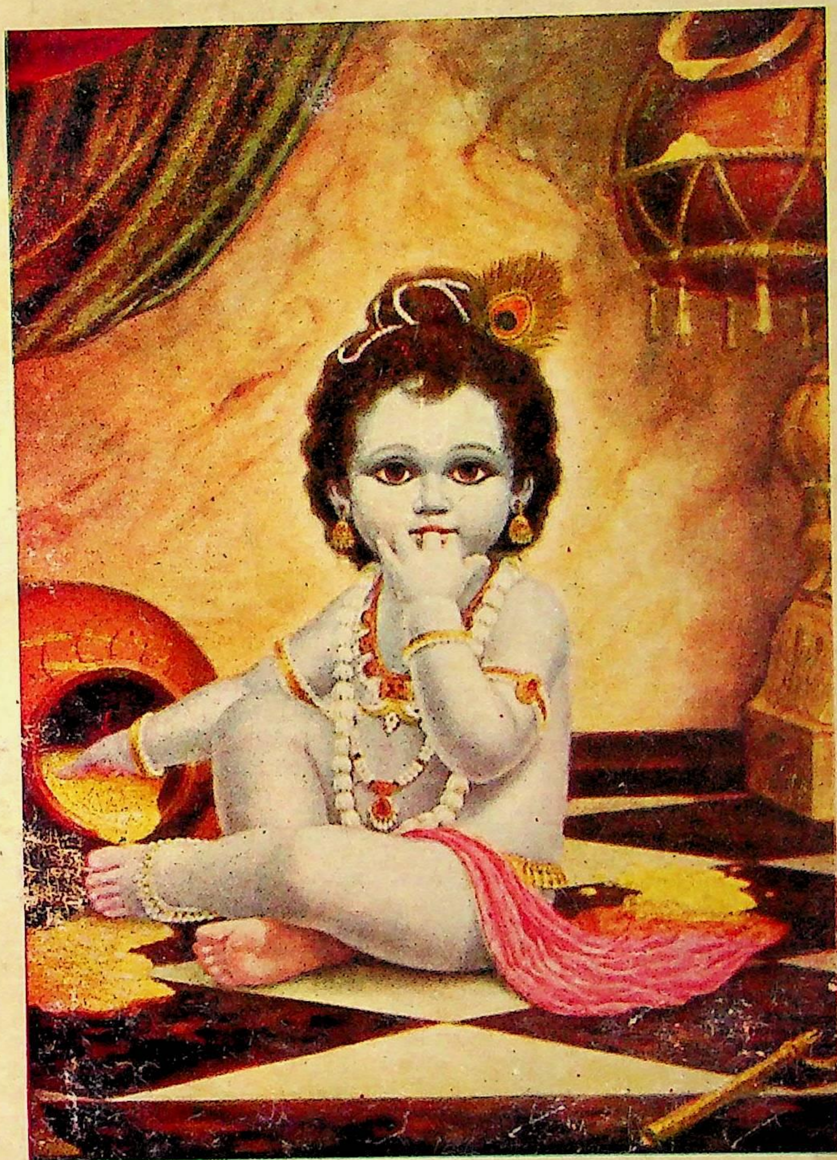
कन्हाई



—सुदर्शनसिंह 'चक्र'

कन्हाई



लेखक—

सुदर्शनसिंह 'चक्र'



प्रकाशक—

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान

मथुरा–२८१००१ (उ० प्र०)



मुद्रक—

राष्ट्रीय प्रेस,

डैम्पियर नगर, मथुरा–२८१००१

दूरभाष : १३७



प्रथमावृत्ति—३०००

मूल्य—

पाँच रुपये पचास पैसे

प्रकाशन-तिथि—

श्रीराधाष्टमी, सं० २०३६ वि०

३१ अगस्त, १९७९ ई०

" यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्यपर उपलब्ध किये गये कागजपर मुद्रित-प्रकाशित है।"

अनुक्रमणिका

कन्हाई–

कन्हाईसे–

कन्हाईके लिए–



कन्हाई—

अपनी बात—

अत्यन्त स्पष्ट बात—वह भोजनालय या जलपान-गृह उतना ही दरिद्र होगा, जितनी कम जातिकी सामग्री उसके समीप होगी। यह इसलिए कि मनुष्योंकी रुचि एक जैसी नहीं है। बिना रुचिके अनुकूल आहार होनेपर भी पेट तो भर सकता है; किन्तु तृप्ति नहीं हो सकती।

धर्म एवं अध्यात्मके क्षेत्रमें जो लोग एकरूपताकी बात करते हैं, वे समझ ही नहीं पाते कि यह क्षेत्र भी मनः प्रधान है और मन रुचि प्रधान होता है। एक निर्देशक, एक निर्देश, एक पद्धतिसे सैनिक व्यायाम तो कराया जा सकता है; किन्तु आध्यात्मिक साधन सम्पन्न नहीं हो सकता। इसलिए नहीं हो सकता; क्योंकि उसमें सैनिकके समान केवल तन ही नहीं लगाना है। उसमें मन लगाना है और मन अपने अधिकार, अपनी रुचिके विपरीत लगा नहीं करता।

इस तथ्यको ध्यानमें रखकर, पूर्णतः मानते हुए जब मैं कन्हाईकी बात करता हूँ। तब वह बात मेरी अपनी होती है। मेरे समान रुचिके लोगोंकी होती है। अवश्य ही समस्त सगुण-साकारके उपासकोंकी भी बात है वह; किन्तु तब उसमें आराध्यके रूप एवं मर्यादाके अनुरूप थोड़ा परिवर्तन कर लीजिये। तथ्य तो अपरिवर्तित ही रहना है; क्योंकि सगुण परात्पर तत्त्व वही रहता है। केवल नाम और आकार भिन्न होता है और उस नाम तथा आकारके अनुसार मर्यादा भिन्न होती है। उस मर्यादाके अनुरूप शब्दावली होनी चाहिये।

'कन्हाईसे' और 'कन्हाईके लिए' के साथ आवश्यक होगया कि 'कन्हाई' के सम्बन्धमें भी कुछ सोचा—कहा जाय। वैसे इसी श्रेणीमें आप 'श्यामका स्वभाव' भी गिन लें। क्या हुआ कि 'श्यामका स्वभाव' बहुत पहिले लिखा गया या छपा।

'राम-श्यामकी झाँकी' और 'सखाओंका कन्हैया' कन्हाईके स्वभावका ही तो चित्रण है। लेकिन झाँकियाँ तो वह दे, तब मिलें। केवल कल्पनाके सहारे झाँकियाँ लिख पाना मेरे लिए सम्भव नहीं होता। वैसे

हिन्दी और संस्कृत काव्योंमें बहुत अधिक झाँकियाँ हैं। वे बिखरी हुई हैं। हिन्दीका पद-साहित्य तो झाँकियोंका भण्डार है।

'कन्हाई' के सम्बन्धमें कुछ सोचना या लिखना मेरा व्यसन है। ऐसा व्यसन है जिसे मैं बनाये ही रखना चाहता हूँ। कन्हाई इसमें मेरी सहायता करता रहा है। आपको मेरे इस प्रयत्नसे कुछ प्रसन्नता हुई हो तो आप आशीर्वाद दें कि यह चिन्तन कालकी प्रतिबद्धतासे परे बना रहे और अभिवृद्धि पाता रहे।

गोपाष्टमी—सं० २०३५ वि०
८ नवम्बर, १९७८

—सुदर्शनसिंह 'चक्र'

कन्हाई ही क्यों ?

असंख्य रुचियाँ हैं, मुझे यह पता है। जो रुचि-भेद एवं अधिकार-भेदसे साधन-भेदकी सार्थकता स्वीकार करता है, वह अमुक ही साधन या अमुक ही आराध्यका आग्रह कैसे कर सकता है ?

आज विश्वकी जनसंख्याका आधेसे अधिक भाग किसी पारलौकिक सत्ताको ही नहीं मानता। ऐसा वर्ग भले लोकायत दर्शन (चार्वाक) को माने या मार्क्सको, कोई अन्तर नहीं पड़ता। दृश्य सत्ताको ही परमसत्ता मानने वाले जड़तत्त्ववादी वर्गसे मुझे भला क्या कहना है।

जनसंख्याकी दृष्टिसे अनात्म सत्तावादी वर्गके पश्चात् दो वर्ग आते हैं—१. सगुण निराकारवादी और २. ऐसे लोग जिनकी परमात्मा, आत्माके सम्बन्धमें कोई विशेष धारणा नहीं है। केवल वन-पर्वतों और हिम प्रदेशोंमें ही ऐसे लोग नहीं हैं। ऐसे लोगोंकी संख्या भारतमें भी कम नहीं है। ये भले भूत-प्रेत या स्थानीय देवताओंको मानते हों, स्पष्ट धारणा इनमें है नहीं।

बौद्ध एवं जैनमतमें ईश्वर स्वीकृत नहीं है। बुद्ध अथवा तीर्थङ्करकी उपासना इनमें चलती है और इन मतोंमें त्यागी-तपस्वी, विवेकवान साधकोंका अभाव नहीं है।

त्यागी, तपस्वी, विवेकशील साधक सगुण निराकारवादी ईसाई, मुसलमान जैसे वर्गमें भी कम नहीं हैं। सबसे कम जनसंख्या विश्वमें निर्गुण-निराकार तथा सगुण-साकार मानने वालोंकी ही है।

यह सनातन वैदिक धर्मकी ही विशेषता है कि इसमें परमात्माका निर्गुण-निराकार रूप तथा सगुण-साकार रूप भी स्वीकृत है। पुनर्जन्म तथा अवतारवाद भारतीय परम्परामें ही स्वीकार किया गया है।

आप वैराग्यवान हैं और आपमें सूक्ष्म ग्राहिणी विवेकशक्ति है तो आप निर्गुण निराकार ब्रह्मसे तादात्म्य करें। आकृतियोंमें आसक्ति भी हो और निराकारमें निष्ठा भी हो, बात बनती नहीं। यह हो सकता है कि आप अहं ग्रहोपासना करें। तब भी आपकी श्रद्धा प्रणम्य है ; क्योंकि

जानते हुए कि निर्गुणसे कोई सहायता नहीं मिलती, आप अपने बलपर बढ़नेका उत्साह रखनेवाले मनस्वी हैं।

सगुण-साकार भगवत्तत्त्वके अनेक रूप हैं। जैसे प्रबुद्ध प्रज्ञाके साथ जागृत वैराग्य निर्गुण निराकार ब्रह्मतत्त्वकी जिज्ञासाका अधिकारी बनाता है, वैसे ही उग्र वैराग्य शिव या शक्तिकी उपासनामें प्रवृत्त करता है।

जिन्हें आराध्यका ऐश्वर्य ही आकृष्ट करता है, वे इस विवादमें पड़ें कि नारायण, शिव, महाशक्ति, गणपति या सूर्यमें-से सर्वोपरि ऐश्वर्य किसमें? वैसे यह विवाद अज्ञतामूलक है। एकके ही ये रूप हैं और सब सम्पूर्ण ऐश्वर्य सम्पन्न हैं। इनमें न्यूनाधिकताकी कल्पना ही अपराध है।

ऐश्वर्यका आकर्षण दास्यभावको प्रधान बनाता है। वैसे भक्तिके सभी आलम्बनोंसे सख्यादिका परिपाक होता है; किन्तु कठिनाईसे होता है। भगवान शशाङ्कशेखरको प्रणाम कर लेना, जल-विल्वपत्र अर्पित कर देना तो उचित ही है; किन्तु उनके परिकरोंके मध्य निवास पानेकी आकांक्षा करनेके लिए कितना साहस चाहिये—आपने सोचा है?

माँजगदम्बा षोडश भुजा हों या द्विभुजा, सिंहवाहिनी हों या वृषभारूढ़ा, महाकाली हों या त्रिपुरसुन्दरी—माँ हैं। आपको उनकी योगिनी, भूतनी बनना हो अथवा उनकी सहेलियोंमें स्थान लेना हो तो आप जानें। मेरे अपने लिए तो वे माँ हैं और उनका वात्सल्य स्वत्व है मेरा। उन्हें केवल 'माँ' कहकर पुकार लेना क्या पर्याप्त नहीं है?

भगवान् नारायण शेषशायी हों या परवैकुण्ठाधीश, केवल प्रणाम कर सकता हूँ मैं उन्हें। उन अनन्त ऐश्वर्यके सम्मुख मस्तक झुक जाता है। हृदय विनम्र बनता है; किन्तु उनके समीप जो अत्यन्त श्रद्धा समन्वित दास्यभाव अपेक्षित है, वह तो अत्यन्त दुर्लभ है अपने लिए।

मैं अपनी ही बात यहाँ कर रहा हूँ। मानता हूँ कि आराधक तो मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, हयग्रीवादिके भी हुए हैं, अब भी हैं। उनमें अनेक लोकपावन परमभक्त हुए हैं। भगवानके इन रूपोंके तीर्थ ऐसे ही नहीं स्थापित हो गये हैं। लेकिन इनमें किसीका सान्निध्य पानेका विचार भी मुझे अपने लिए कठिन लगता है।

भगवान् परशुरामको पाससे नहीं; दूरसे प्रणाम करना अच्छा और भगवान् वामन तो दैत्यराज बलिके हो गये। उन्हें इस मन्वन्तर तक

सुतलमें द्वारपाल रहना है। वैसे भी वे आकारमें भले वामन हों, उत्पन्न होते ही गम्भीर ब्रह्मचारी बन गये। एक भी ऋषि-मुनिको शिष्य या साथी उन्होंने बनाया ही नहीं।

बात अटकती है आकर मर्यादा पुरुषोत्तमके समीप। उन्हें शिरसः शत शत प्रणाम। लेकिन वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। पतितपावन हैं, अशरण शरण हैं और परमोदार हैं। यह सब तो है ही, इतने सरल कि कुलगुरु महर्षि वशिष्ठसे सबके सम्मुख वानर-भालुओंके लिए कहते हैं—

'ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे।'

उनकी ओरसे तो कहीं कोई बाधा नहीं ; किन्तु उन सङ्कोचीनाथका शील ही क्या कम बाधा है ? सगे भाई भरत, लक्ष्मण तक तो अपनेको सदा सेवक ही मानते हैं। मुझे अपने लिए सोचना है और वे मेरे कुलपुरुष— उनके सम्मुख सङ्कोच न किया जाय, चाह कर भी इतना अशिष्ट बन नहीं पाता हूँ। आप बन सकते हैं ?

अवश्य ही अनन्त शक्ति सम्पन्न विश्वनियन्ता है, यह आस्था उसीने कृपा करके—अकारण कृपा करके अन्तरमें दी होगी। अपनेको इतना अबल पाता हूँ कि अवलम्बके अतिरिक्त उपाय नहीं। अतः निर्गुण-निराकार भले अपना स्वरूप है, उससे काम चलता नहीं। सगुण-निराकारसे केवल प्रार्थना की जा सकती है। इस प्रार्थनामात्रपर सन्तोष कर लेने जितनी भी क्षमता नहीं है।

कन्हाई गोपकुमार है। इसे छोटा भी बना लेनेमें कोई सङ्कोचकी बात नहीं है। यह तो छोटा बननेको सदा उत्सुक रहता है। बड़ा बननेमें इसे जैसे आनन्द आता ही नहीं। इसे छोटा बनाकर अपना अहङ्कार भी तुष्ट होता है और यह तो सौहार्द देनेमें कृपण होनेसे रहा।

कन्हाई कहाँ पंक्ति-पावन ब्रह्मर्षि है कि इसके साथ लम्बा-चौड़ा शास्त्राचार अपेक्षित होगा। इसे रुधिराशना राक्षसी पूतनाका स्तनपान करनेमें भी हिचक नहीं और ग्वाल बालकोंका उच्छिष्ट तो आग्रहपूर्वक लेता है। अतः इसके सान्निध्यमें कोई अंकुश नहीं।

न प्राणायामके लिए नाक दबाना आवश्यक और न दरबारके शिष्टाचार-पालनका बन्धन। यह बैठा हो या खड़ा, इसके समीप चाहो तो पैर फैलाकर लेट लगाओ या उछलो-कूदो। मौन रहो या चिल्लाओ। गाओ

या लाठी घुमाओ। जो जीमें आये करो और मन हो तो इसे भी हाथ पकड़कर अपने साथ खड़ा कर लो।

कन्हाईके साथ सब चलता है--सहज भावसे चल सकता है। केवल दास्यके लिए थोड़ी खटपट है। इसके समीप विनम्र दास्य यह चलने देनेसे रहा। सेवकको भी इसपर कुछ शासन ही करना पड़ेगा। जैसे बड़े घरों-के सेवक उस घरके छोटे बालकोंसे व्यवहार करते हैं, वैसा। बहुत चपल, बहुत नटखट बालक, किन्तु कष्ट नहीं देगा। कन्धेपर चढ़ जाय या दाढ़ी हिलावे, केश नहीं खींचेगा, इतना आश्वासन।

कन्हाई तो सहज सखा है--जो इसे मित्र बनाना चाहे, सबका मित्र। किसीको अपनाना अस्वीकार नहीं। किसीकी कोई अयोग्यता कभी मानता नहीं। इससे दोष-अयोग्यताकी चर्चा करो तो ताली बजाकर हँसेगा, चिढ़ावेगा। जो जैसा भी है उसी स्थितिमें इसे परमप्रिय है। उसीसे घुलने-मिलनेको प्रस्तुत है यह।

वात्सल्यकी बात—केवल 'लाल!' कहकर पुकार देखिये। यह वृद्धाओंके भी अञ्चलमें सिर छिपाकर दूध पीने लगता है। बड़े-बूढ़ोंकी गोदमें चढ़कर उनकी दाढ़ीमें अँगुलियाँ हिलाता है। इसके लिए तो कहीं कोई अपरिचित है ही नहीं!

माधुर्यरसकी मूर्ति बनानी हो तो इस व्रजराजकुमारको छोड़कर कोई दूसरी मूर्ति बन सकेगी? इसे विवाह करनेका व्यसन है। कोई मिले तो सही इसे। कानी, अन्धी, लूली-लँगड़ी, कुब्जा सबको सुन्दरी बना लेना इसे आता है और काली-गोरी, मोटी-पतली, लम्बी-ठिगनी सब इसे पसन्द हैं। इससे सुन्दर, अनुकूल वर कहीं किसी कन्याको मिलेगा?

आरोप मत कीजिये कि मैं इसका पक्ष ले रहा हूँ। यह तो मेरा है और पक्ष यही सदा लिया करता है अपनोंका। इस कन्हाईके अतिरिक्त और कोई ईश्वर-परमेश्वर हो तो उसे हाथ जोड़कर, आप कहें तो भूमिमें मस्तक रखकर, प्रणाम कर ले सकता हूँ; किन्तु इसके अतिरिक्त किसीसे अपनी निभती नहीं दीखती।



दामोदर—

आप ऊखल-बन्धन लीलासे परिचित हैं। मैं यह कथा यहाँ नहीं लिखने चला हूँ। यह चेतनसे जड़के अथवा जड़से चेतनके बन्धनकी कथा— आपको नहीं लगता कि यह नित्य कथा है। आप स्वयं ऊखलमें बँधे हैं, पता नहीं कबसे बँधे हैं। इसलिए बँधे हैं कि आपको मुक्त करने अभी तक दामोदर आया नहीं। वह भी इसलिए नहीं आया कि हम आप अभी तक यमलार्जुन नहीं बन सके। दुर्भाग्यके कारण किसी देवर्षिका शाप भी अर्जित नहीं कर सके, वरदान तो प्राप्त करनेका सौभाग्य कहाँ।

ईस्वर अंस जीव अविनासी।
चेतन अमल सहज सुख रासी॥
सो माया बस भयउ गोसाईं।
बँध्यो कीर मरकटकी नाईं॥ मानस

इससे क्या होता है कि तोता या कपि बँधे नहीं, केवल अपनेको बँधा मानते हैं। यह मानना ही तो उन्हें वास्तविक बन्धनमें डाल देता है।

यह जड़से चेतनका बन्धन अविद्यामूलक है, इस बातको तो सभी शास्त्र-संत कहते हैं। इसी बन्धनका उच्छेद करनेके लिए तो कन्हाईने सारे उपद्रव किये। मैयाने कोई यों ही तो अपने लालको ऊखलसे नहीं बाँधा।

वर्षोंसे नन्दपौरिपर कुबेरके दोनों पुत्र नलकूबर और मणिग्रीव देवर्षि नारदके शापसे यमलार्जुन बने खड़े थे। आप कौन हैं? यदि आपमें अर्थका लोभ नहीं है तो आप वन्दनीय हैं। भले आप शास्त्रमर्यादाकी रक्षाके लिए कुसुमाञ्जलिसे पूर्व—

राजाधिराजाय प्रसह्य शाहिने
नमो वयं वैश्रवणाय कुर्महे।

भी बोल लेते हैं। लेकिन जिसमें अर्थ-लोभ है, वह धनाध्यक्षका पुत्र अथवा दास ही तो है। पुत्रत्व भी प्राप्त नहीं, केवल दास—यह तो और भी गयी-बीती स्थिति हो गयी।

यो यच्छ्रद्धः स एव सः ।

अर्थ-निष्ठा, अर्थमें ही सब सुख निहित हैं, यह आस्था जड़ता नहीं देगी तो क्या चेतन रहने देगी ? जड़से तादात्म्य करके जड़ हो गये और दुर्भाग्य अब भी पिण्ड नहीं छोड़ रहा है। कोई देवर्षि-कोई संत महापुरुष शाप देनेको भी नहीं मिले। अर्जुन—सीधे सरल कहाँसे बनते और अर्जुन बने बिना तो नन्दपौरिपर स्थान मिलता नहीं।

ब्रह्माजीने गिड़गिड़ाकर श्रीव्रजेन्द्रनन्दनसे माँगा था—

> तद् भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां
> यद् गोकुलेऽपिकनमाङ्घ्रि रजोऽभिषेकम्
>
> श्रीम. भा. १०.१४.३४

ब्रह्माजी नन्द-पौरिपर वृक्ष बननेकी माँगका भी साहस नहीं कर पाते हैं। वृन्दावनमें कहीं झाड़ी, लता, तृण होनेकी माँग; पर यह भी नहीं मिला उन्हें। सृष्टिकर्ताको ही माँगनेपर जो सौभाग्य नहीं मिला, उसकी आशा उनकी सृष्टिका एक नगण्य प्राणी करेगा ?

तब अपने लिए आशाका कोई आधार ही नहीं ?

ऐसा नहीं है। मैया यशोदाके अङ्कधनने ऊधम करके अपनेको ऊखलसे यों ही नहीं बँधवाया था। उसने उस दिन तो नन्दपौरिपर खड़े, प्रशप्त कुबेर-पुत्रोंका वृक्षत्वसे उद्धार कर दिया; किन्तु उसी दिन वह दामोदर बन गया या नहीं ? दामोदर क्या केवल दो वृक्षोंके उद्धारके लिए बना ?

भले नन्दपौरिपर अर्जुन-सीधे सरल ही पहुँच सकते हों, क्या वृन्दावनमें टेढ़े-मेढ़े, झुके वृक्ष नहीं रहे या नहीं हैं ? क्या कन्हाईकी क्रीड़ामें सीधे वृक्षोंकी अपेक्षा टेढ़े तरु अधिक सुगमता नहीं प्रदान करते ? कृष्ण ही यदि कुटिलोंका कल्याण नहीं करेगा तो कहीं आश्रय है मेरे जैसोंके लिए ?

प्रमाद अपना—किसी देवर्षि-संतकी कृपा अर्जित नहीं की। कन्हाईको दामोदर भी देखना नहीं आया। यही देखना आजाता तो—कृष्णकी लीला भी कहीं केवल सामयिक होती है ? इस नित्यके सभी चरित तो शाश्वत हैं।

ऊखलसे बँधा श्रीव्रजराजकुमार आज भी वैसा ही ऊखल घसीट रहा है। अब भी जड़से बंधे चेतनके उद्धारकी ही सतत क्रीड़ामें संलग्न है।

अविद्याकी जड़ तो यह उखाड़ ही देगा। केवल इसे अपने अन्तरमें आने दीजिये।

ऊखल-बन्धनका दिन कौन-सा था, आपको स्मरण है ? दीपावलीका दूसरा दिन। कन्हाईने ही अपने इस बन्धनके दिनको, दामोदर बननेके दिनको उत्सव दिन बना दिया। इसी दिन गोपोंसे इसने गोवर्धन पूजन करवाकर ऐसी व्यवस्था करदी कि अब तक इस दिन अन्नकूट मनाया जाता है। यह दामोदर-जयन्ती भी है और अन्नकूटकी अपेक्षा हमारे-आपके लिए अधिक महत्वपूर्ण है।

कन्हाई भाद्रकृष्ण अष्टमीको तीन वर्ष पूरे कर चुका था। इस दिन तक दो महीने सात दिन अधिक हो गये थे। दीपावलीकी रात्रि लगभग बीत चुकी थी, तब उठा था। न कोई शृंगार, न वस्त्र। दिगम्बर शिशु कन्हाई। चरणोंमें नूपुर, कटिमें रत्नमेखला, भुजाओंमें हल्के अङ्गद, कलाइयोंमें कंकण, कण्ठमें कौस्तुभ, वक्षपर मुक्तामालमें-से झाँकता श्रीवत्स चिह्न, लेकिन कर्ण-वेध हुआ नहीं था तो कुण्डल कहाँसे कैसे पहिनता। अलकें बिखरी, नेत्रोंका अञ्जन फैला कपोलोंपर लगा और रुदन करते समय नेत्र मलनेसे दोनों करोंके पृष्ठ भागपर भी लगा हुआ है।

दामोदरकी यह झाँकी आपके मनमें आती है ? श्रीअङ्गपर छींटे पड़े थे दहीके; क्योंकि दधि-मन्थन करती मैयाके पास जाकर आपने मथानी पकड़ ली थी। ये छींटे सूखने लगे हैं। दोनों चरणोंमें भी कुछ उज्ज्वलता जहाँ-तहाँ झलकती है। दधि-भाण्ड फोड़कर उस फैले दहीमें-से ही तो चले थे। करोंमें नवनीत लगा था; किन्तु कर टेककर भूमिमें ऊखल घसीटना पड़ा। दोनों करोंमें व्रजरज लग गयी है।

कुसुम सुकुमार कन्हाईको मैयाने ऊखलसे बाँध दिया। बँधा है कन्हाई ऊखलसे। इसकी कटिसे तनिक ऊपर, किंकिणीसे ऊपर और नाभिसे किञ्चित नीचे मैयाकी वेणी-बन्धन-रज्जु बँधी है। केशोंसे बनी काली रज्जु। कन्हाईके घुटने, चरण और दोनों कर भूमिसे लगे हैं। यह ऊखल घसीट रहा है। ऊखलको आड़ा गिरा लिया है इसने। पीठकी ओर तो रज्जु ऊपर उठी है; किन्तु पूरे पेटसे रज्जु सटी है।

इस नवनीत कोमल नन्दनन्दनको इस प्रकार बँधा देखना बड़ा निष्ठुर कर्म है। इससे हृदय संतप्त होता है। यह झाँकी अप्रिय है आपको ? अच्छी बात, इसे मुक्त हो जाने दीजिये। बाबाने इसे खोलकर अङ्कमें ले

लिया था। अब आप इसे बाबाके अङ्कमें देखें या मैयाके समीप अथवा बालकोंके मध्य; किन्तु यह दामोदर तो है। यह दामोदर बना सो बन गया।

श्रीनारायण, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम और नन्दनन्दनमें कुछ समानताएँ हैं। मैं रूप-रंगकी समानता नहीं गिनाऊँगा। यह आप जानते हैं। आप यह भी जानते हैं कि तीनों कौस्तुभकण्ठ हैं। तीनोंके वक्षस्थल-पर श्रीवत्स चिह्न है। भृगुलताके सम्बन्धमें विवाद है। जिस कल्पमें श्रीनारायणके अंशसे रामअवतार या कृष्णावतार होता है, उसमें तो भृगलताका चिह्न होता है; किन्तु जब पूर्णावतार होता है, तब श्रीराम या श्रीकृष्णके वक्षपर दाहिने भृगुके पादका चिह्न नहीं होता।

श्रीव्रजराजकुमार अकेला ही दामोदर है। यह इतना सुकुमार है कि मैयाने ऊखलमें बाँधा तो उस रज्जुका चिह्न इसके उदरसे कभी मिटा ही नहीं। पीठकी ओर तो रज्जु उठी थी; किन्तु पेटकी ओर नाभिसे तनिक नीचे पूरे पेटपर एक ओरसे दूसरी ओर तक पतली काली रेखा बनी है। यह काली रेखा दीखती है इसके नील वर्ण अङ्गमें। इसी रेखाके कारण तो यह दामोदर है।

मैया अपने लालके उदरपर पड़ी इस रेखाको छूकर रो पड़ती है—'हाय! मैंने इसे कितनी निष्ठुरतासे बाँध दिया था!'

मैया कहाँ समझती है कि उसके इस नटखटको स्वयं बँधना था। कन्हाईके उदरमें पड़ी इस रेखाको हृदयमें स्पष्ट होने दीजिये। दामोदर कन्हाईका ध्यान करेंगे तो आपका बन्धन कट जायगा। दामोदरको ही तो पता होगा कि बन्धनकी पीड़ा और विवशता कैसी होती है। दूसरोंको बन्धनसे छुड़ानेकी उत्सुकता दामोदरमें ही तो अधिक होगी।



गोविन्द : गोपाल—

आपको पता ही है कि गोविन्द शब्दका अर्थ होता है गायोंका इन्द्र (गवामिन्द्रः) यह गोविन्दाभिषेक देवराज इन्द्रने किया था। प्रलय वृष्टि करके व्रजका विनाश करनेमें जब विफल मनोरथ हो गये, कन्हाईने गोवर्धनधारी बनकर व्रजको बचा लिया, तब पराजित, लज्जित पुरन्दर श्रीव्रजेन्द्र-नन्दनसे क्षमा माँगने आये। प्रस्ताव किया गोलोकसे पधारी भगवती कामधेनुने।

'जो लोकपालोंका अधीश्वर होकर भी इतना प्रमादी है कि गायों जैसे निरीह प्राणियोंके भी विनाशकी वाञ्छा करता है, उसपर मेरी सन्तानोंकी सुरक्षा नहीं छोड़ी जा सकती। यह सहस्राक्ष होकर भी अन्धा है। इसे दीखता ही नहीं कि गायें नित्य निरपराध हैं।' सुरभिने कहा—'कृष्णचन्द्र! तुम अस्वीकार नहीं कर सकते। मैंने लोक पितामह ब्रह्माजीसे आज्ञा ले ली है। गायोंके इन्द्र पदपर मैं अभी तुम्हारा अभिषेक करूँगी। तुम गोविन्द बनो। यह देवेन्द्र धन्य होगा इस अभिषेकमें मुझे सहयोग देकर।'*

वह दिन कार्तिक शुक्ल अष्टमीका था। गोपाष्टमीसे ही कन्हाईने गोचारण प्रारम्भ किया था और इसी तिथिको यह गोविन्द बना। लेकिन क्या यह नित्य गोविन्द नहीं है? यह इस वर्तमान श्वेतवाराह कल्पके वैवस्वत मन्वन्तरकी इस अट्ठाईसवीं चतुर्युगीके बीते द्वापरान्तमें अवतीर्ण होकर व्रजमें गोविन्द पदपर अभिषिक्त हुआ, यह बात तो ठीक है, किन्तु 'गायोंके इन्द्र' इस अर्थमें ही ठीक है। गोविन्दका दूसरा अर्थ भी है इन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष होनेवाला। (गोभिः इन्द्रियैः विन्दते, प्रत्यक्षी भवति इति गोविन्दः।)

निर्गुण निराकार ब्रह्मका तो अनुभव भी कभी किसीको नहीं होता। अनुभव भी वृत्त्यारूढ़का ही होता है और वृत्ति स्वयं कल्पित है। ब्रह्ममें अनुभव और अनुभविताका भेद सम्भव ही नहीं।

सगुण कहनेपर ईश्वरका अनुभव तो सम्भव है; किन्तु सगुण निराकारका साक्षात्कार सम्भव नहीं। भारतमें केवल आर्यसमाज ईश्वरको

* गोवर्धन-धारण और गोविन्दाभिषेककी पूरी कथा 'नन्दनन्दन' में गयी है।

सगुण निराकार मानता है। भारतसे बाहर उत्पन्न हुए धर्म ईश्वरको सगुण निराकार मानते हैं तो उसका साक्षात्कार नहीं मानते। केवल उसके ऐश्वर्य (जल्वा) का अनुभव मानते हैं। क्योंकि वृत्तिमें—हृदयमें भी दर्शन हो—भले ज्योतिका हो, तो भी उस ज्योतिका कोई-न-कोई आकार तो होगा ही।

सगुण साकार परमात्मा इन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष हो सकता है; किन्तु कन्हाईके समान सुलभ तो दूसरा कोई अवतार रूप नहीं है। यह गायें चराते वन-वन घूमने वाला—इससे मिलनेमें न किसी को संकोच हो सकता और न असुविधा। यह तो उन सबका है, जो इससे मिलना चाहते हैं। कृष्ण ही ऐसा है जो अनन्त ऐश्वर्यशाली भी है और गोपकुमार भी है। अतः गोविन्द शब्द श्रीव्रजेन्द्रनन्दनमें रूढ़ होगया है। जैसे जलज तो सीप, शंख तथा दूसरे भी जलीय पौधे हैं; किन्तु जलज शब्द कमलके अर्थमें रूढ़ है।

गोपाल भी कन्हाई ही है। क्यों भला? भारतमें तो अनन्त कालसे गोपालन होता आरहा है। नन्दबाबा और उसके व्रजके दूसरे लोग गोपाल क्यों नहीं? इस कृष्णके ही शतशः सखा हैं। उनके भी गायें हैं। वे भी इसके साथ ही गायें चराते हैं। गायोंके चरानेका, जल पिलानेका काम प्रायः वे ही करते हैं। यह तो वनमें गायोंके पीछे जाकर भी वंशी बजाता है, नाचता है, खेलता-कूदता है। गायोंकी सेवा कितनी करता है यह कि यही गोपाल है?

दूसरे सब गोप हैं। गोप अर्थात् गोरक्षक। नन्दबाबा और उनके साथी, उनके पूर्वपुरुष तथा वंशज सब गोप हैं। सबको गोरक्षा करनी है। हिन्दू मात्र अपनेको गोरक्षक कहनेमें गौरवका अनुभव करता है; किन्तु गोपाल तो मयूरमुकुटी श्रीनन्दनन्दन ही है।

पालक वह जो रक्षा पालनमें समर्थ हो। कितने वर्षोंसे भारतमें गोवध होरहा है—कोई अब तक इसे रोक सका? प्रयत्न ही मनुष्य कर सकता है। श्रद्धावान गो-सेवक प्रयत्न करते रहे हैं और आगे भी प्रयत्न करते रहेंगे।

मनुष्यके विरुद्ध मनुष्यका प्रयत्न सफल भी हो सकता है और विफल भी; किन्तु यदि देवशक्ति प्रतिकूल हो जाय? आज भी भूकम्प, महामारी, अकाल, बाढ़, ज्वालामुखी-विस्फोटको रोक देनेका कोई उपाय वैज्ञानिकोंके पास नहीं है। ये उपद्रव कोई देवता कर सकते हैं और द्वापरमें देवराज इन्द्र

ही क्रुद्ध हो गये थे। व्रजका—गायों-गोपोंका विनाश कर देना चाहा था उन्होंने। कोई गोप कुछ कर सकता था। उस प्रलयवृष्टिमें जिसने रक्षा की, वही तो गोपाल कहला सकता है ?

गोपालका भी एक और अर्थ है। गोपाल—इन्द्रियोंका पालक। गोका अर्थ इन्द्रियाँ हैं, यह गोविन्दके अर्थमें ही कहा गया है।

तब तो सब योगीपुरुष गोपाल हैं ! सभी तो इन्द्रियोंको ही परितृप्त करनेमें लगे हैं।

योगीपुरुष गोपाल है या गो-हिंसक ? इन्द्रियोंकी स्थिति तो गायकी नवजात बछड़ियों जैसी है। आपने गोपालन किया हो तो पता होगा कि नवजात बछड़े-बछड़ियोंको उनकी माताका दूध बहुत सम्हालकर पिलाना पड़ता है। उन्हें छोड़ ही दिया जाय तो वे अधिक दूध पीकर बीमार हो जाते हैं। जंगली गायोंके बच्चे बहुत कम बच पाते हैं, यद्यपि ये गायें बहुत कम (दो-ढाई सौ ग्राम) दूध रखती हैं; किन्तु नवजात बच्चेको वह भी भारी पड़ जाता है। बच्चा बीमार हो गया तो वहाँ उसकी चिकित्सा करने कौन बैठा है। ऐसे ही जिस इन्द्रियको बहुत भोगमें लगाया जायगा, वह अपनी शक्ति खो देगी। बहुत स्वादलोलुपका पेट खराब हो जाता है। तब वह अल्पाहार या उपवासको बाध्य होता है।

योगी पुरुष इन्द्रियोंको रुग्ण कर लेता है। योगी सुखा ही देता है इन्द्रियोंको। ये दोनों गोपाल नहीं हैं। गोपाल तो कन्हाई है। इस गोपालके द्वारा ही गायोंका—इन्द्रियरूपी गायोंका भी पालन होता है।

आपने भ्रूमध्यमें नेत्रोंको स्थिर करके शाम्भवी मुद्रा सिद्ध कर ली और ज्योति-दर्शन करके सनाथ हो गये; किन्तु आपके नेत्र ? आपके नेत्र तो व्यर्थ ही रहे। कान बन्द करके अनहद ध्वनिका श्रवण भले हो गया; किन्तु क्या कर्णेन्द्रिय सफल हुई ?

'नेति-नेति' के निषेध मार्गसे स्वरूपमें स्थिति तो हुई; किन्तु जिस शरीरने आपको यह सफलता प्रदान की, उसे क्या दिया आपने ? शरीरको आपके वैराग्यका तिरस्कार मिला। आपने इसे नश्वर, घृणित, पता नहीं क्या-क्या कहा। कभी सोचा कि इस शरीरने क्या-क्या सेवा की है आपकी ?

शरीरकी सार्थकता ही है सगुण साकारका साक्षात्कार। कन्हाईका

भुवनमोहन रूप एक बार दीख गया तो नेत्रोंको और कुछ देखना शेष रह गया ? नेत्र धन्य होगये , सार्थक होगये या नहीं ?

कहीं मुरलीमनोहरकी वंशी ध्वनि श्रवणमें पड़ जाय या इस चपलकी हास्यध्वनि , इसका स्वर कान सुन सकें—आपके कान ही नहीं ; कानोंके अधिदेवता भी पुनीत हो जायँगे । कान पानेका परमफल ही यही है ।

कन्हाईका स्पर्श—दुर्लभ होकर भी बहुत दुर्लभ नहीं है । यह ऐसा देवता नहीं कि चुपचाप सिंहासनपर गम्भीर बना बैठा रहे । यह तो सेवकों तकके कन्धोंपर जा बैठता है । चाहे जिससे लिपट जायगा । चाहे जिसके अङ्कमें चढ़ जायगा । इसका स्पर्श—वाणीमें आ सके ऐसा तो वह स्पर्श नहीं है । इस स्पर्शको पानेकी लालसा कभी आपके मनमें नहीं उठती ?

मन्दिरोंका प्रसाद प्राप्त हुआ होगा आपको । कभी कन्हाईके उच्छिष्टके लिए भी आपकी जिह्वापर पानी आया है ? रसनेन्द्रिय जिस अमृतरसको पाकर अन्तरको भी अमृताब्धिमें मग्न कर देती है, सचमुच अमृत तो वही है ।

गन्धकी बात कैसे कहूँ ? आपने इत्र सूँघे होंगे । सम्भव है , कस्तूरी भी सूँघी हो ; किन्तु कस्तूरी , केशर , कपूर , मलयज चन्दन , गोरोचन , अगुरु , तुलसी और नीलकमलकी उत्कृष्टतम जातियोंके इत्र हों और वे एक अनुपातसे मिलाये जायँ तो कैसी सुरभि होगी ? यह सुरभि यदि ऐसी बन सके कि एक बार नासिकामें पहुँचकर वहीं बस जाय—कन्हाईकी अङ्ग-सुरभि तो आकर मिटा नहीं करती ।

सब इन्द्रियोंका पालन , सबका नित्य पोषण कन्हाईके अतिरिक्त कहीं सम्भव है ? इसीलिए तो यही गोपाल है । यह इन्द्रिय प्रत्यक्ष भी होता है — गोविन्द भी है और इन्द्रियोंका परमपालक गोपाल भी है । इस गोपालको पाये बिना कहाँ प्राणीकी परम सार्थकता सम्पन्न होती है ।



जनार्दन—

अद्भुत नाम है जनार्दन ! इसके दो अर्थ होते हैं – (१) मायाको नष्ट करनेवाला। (जना=माया, अर्दन=मसल देनेवाला)। (२) अपने जनोंको रगड़-मसलकर शुद्ध कर देनेवाला। (जन=निजजन, अर्दन)

कन्हाईके सबसे प्रिय कौन ?

श्रीराधा, गोपियाँ, गोपकुमार, श्रीनन्द बाबा, मैया यशोदा। यही नाम कोई लेगा या और कुछ ? इस नटखटने केवल रास-रात्रिमें गोपियोंके मध्यसे अन्तर्हित होकर उन्हें कुछ देरको ही वियोग-व्यथा नहीं दी। यह तो व्रजसे चला गया अपनी ग्यारह वर्ष ६ महीने की अवस्थामें और पूरे सौ वर्ष पश्चात् कुरुक्षेत्रमें मिला। कुल सवा सौ वर्ष पृथ्वीपर अवतार लीला करनी थी आपको और उसमें अपने सबसे प्रिय, सबसे अधिक प्रेमियोंको सौ वर्षका वियोग। निजजन-निष्ठुर इससे अधिक कोई होगा ? जनार्दनका अर्थ निजजन-निष्ठुर अनुचित लगता है आपको ?

महर्षि सान्दीपनिके आश्रममें अकेला सुदामा ही तो सहपाठी नहीं था। चौंसठ दिनपर ही विद्यालयसे विदा हो गये और फिर किसीका कोई समाचार लिया ; बेचारा सुदामा अधिक घनिष्ट हो गया तो उसे क्या मिला ? उसे मिली दरिद्रता और जब वैभव भी मिला तो नीरस करके मिला। आपको बहुत स्वादिष्ट भोजन दिया जाय ; किन्तु आपकी जीभको एक इन्जेक्शन देकर, जो जीभमें स्वाद लेनेकी शक्ति न रहने दे तो आपको कुछ लाभ होगा ?

बड़े प्रिय पाण्डव आपके। श्रीकृष्णने युधिष्ठिरको राजसूय यज्ञ कराके चक्रवर्ती सम्राट् बना दिया ; किन्तु कितने दिनोंको ? राजसूय यज्ञसे लौटते ही तो दुर्योधनने द्यूत-सभाकी योजना बनायी। पाण्डव बारह वर्ष वन-वन भटकते फिरे। किसीको सम्पन्न बनाकर भिखारी बनानेसे क्या अच्छा नहीं है कि उसे दरिद्र ही रहने दिया जाय ?

पाण्डवोंका वनवास समाप्त हुआ। महाभारतके युद्धमें उनकी विजय श्रीकृष्णका कृपाप्रसाद था, इसमें दो मत नहीं है ; किन्तु उन्हें मिला

क्या ? उनके सब पुत्र, सब स्वजन युद्धमें मारे जा चुके थे। राज्यमें कोई रस रहा उन्हें ? युधिष्ठिरने अपनी व्याकुलताको विस्मृत करनेके लिए लगातार तीन अश्वमेध यज्ञ किये। आपको कदाचित् पता हो कि यदि यज्ञीय अश्व कहीं रोका न जाय तो अश्वमेध यज्ञ एक सहस्र दिनमें पूरा होता है। पाण्डवोंकी अश्व-रक्षक सेना को तो अनेक स्थानोंपर युद्ध करने पड़े थे।

महाभारत युद्धके पश्चात् केवल छत्तीस वर्ष युधिष्ठिरने राज्य किया। इतने अल्प समयमें तीन अश्वमेघ यज्ञ सम्पन्न किये। क्या राज्य सुख भोगा होगा उन्होंने ?

पाण्डवोंका और यादवोंकी भी अन्तिम गति श्रीकृष्ण ही थे और दोनोको इन्होंने अन्तमें असहाय छोड़ दिया। योगेश्वरकी असंगतता तो इससे सिद्ध होगयी; किन्तु सचमुच जनार्दन--स्वजन-निष्ठुर ये सिद्ध हुए या नहीं ?

श्रीकृष्ण जनार्दन—स्वजन निष्ठुर हैं। इसलिए भी जनार्दन हैं कि मायाको ध्वस्त कर देते हैं; दोनों अर्थोंमें कोई अन्तर नहीं है। वस्तुतः दोनों अर्थ परस्पर पूरक हैं। कठिनाई यह है कि हम-आप इस बातको ठीक समझते ही नहीं हैं।

जना अर्थात् माया। जो अनन्त कोटि ब्रह्माण्डोंको उत्पन्न करती रहती है, वही सबकी जन्मदातृ माया है; उत्पत्ति, स्थिति, पालन इसीकी क्रीड़ा है। चेतन परमपुरुषकी दृष्टिमें तो माया है ही नहीं। अद्‌भुत है यह माया। इसका ठीक वर्णन ही सम्भव नहीं। त्रिगुण इसके कार्य हैं और उन्हींके द्वारा इसका अनुमान किया जाता है।

जीवके लिए माया क्या है ?

मैं अरु मोर तोर तैं माया।

मैं-मेरा, तुम-तुम्हाराका भेद करके राग-द्वेषमें उलझ जाना ही माया है। शास्त्रके शब्दोंमें यह अविद्या है। यही जन्म-मरणके चक्रको चलाती रहती है।

योगदर्शनने पाँच ही क्लेश माने हैं--(१) अविद्या, (२) अस्मिता अर्थात् शरीरके घेरेमें अपनेको सीमित कर लेना, (३) राग, (४) द्वेष और (५) अभिनिवेश अर्थात् अपनेको शरीर ही मान लेना।

इनमें अविद्या ही शेष चारका मूल है। अविद्याके खेतमें ही चारों उत्पन्नहोते हैं; अविद्याका अर्थ अज्ञान ही या और कुछ ? अज्ञान—अविवेकके कारण ही शरीरमें अहं मात्र है और उसीको लेकर सारी ममता, राग-द्वेष हैं।

इस अविद्याको—मायाको जो नष्ट करेगा, वह जनार्दन—स्वजन-निष्ठुर हुए बिना यह कर सकेगा ? उसे अपनोंकी ममता, अहंता, राग-द्वेषको मूलसे ही नष्ट करना पड़ेगा या नहीं ? बहुत गहरी है अविद्याकी जड़, अतः बहुत उखाड़-पछाड़ उसे करनी पड़ती है। आसक्तिकी जड़ आसानीसे नष्ट नहीं होती।

कन्हाईको उनसे क्या लेना है जो इसकी ओर उन्मुख ही नहीं हैं। सृष्टिका प्रवाह तो अनादि है। अनन्त जीव इसमें भटक रहे हैं, अनन्त काल तक भटकेंगे वे। उनमें-से जो कोई कभी कन्हाईकी ओर मुख कर लेता है, परम कारुणिक, अकारण कृपालु श्रीव्रजेन्द्रनन्दन उसे इस भव-प्रवाहसे उठा लेनेको उत्सुक हो जाता है।

अद्भुत है यह जीव भी। यह एक ओर प्रार्थना करता रहता है—'मेरा उद्धार करो ! मुझे जन्म-मरणके चक्रसे बचा लो !' साथ ही दूसरी ओर यह भी चाहता रहता है कि इसके बन्धन कोई स्पर्श न करे। सम्भव हो तो और बन्धन जुटा दे। अब जो इसे छुड़ाने चला है, उस जनार्दनको इसके इस मूढ़ दुराग्रहके प्रति निष्ठुर बनना होगा या नहीं ? उसकी यह निष्ठुरता अनन्त कृपाका ही एक रूप है।

'मेरे बच्चेको बचा लीजिये !' बहुत व्याकुल आये थे भगतजी। उनकी व्याकुलता उचित थी। एक ही पुत्र था उनके। बड़ा सुशील, बुद्धिमान, विनयी और पिताकी सेवामें लगा रहनेवाला। अब वह रोग-शय्यापर था। चिकित्सा सफल नहीं हो रही थी।

वे भगतजी थे—सचमुच भगवद्भक्त। संयमी, सदाचारी, श्रद्धालु, संत-सेवा तथा भजन ही उनका व्यसन था। वे साधारण सांसारिक व्यक्ति होते तो उनका पुत्र बच जाता; किन्तु वे भक्त थे; पुत्रका मोह उनका बन्धन नहीं था ? दयार्णव, जनार्दन इस बन्धनको काटेगा या बचा रहने देगा।

वे भी भगवद्भक्त थे। बहुत प्रतिष्ठित थे। लोग उन्हें देवता ही मानते थे। बहुत दुःखी मिले मुझे—'मैं किसीको मुख दिखलाने योग्य नहीं रहा।'

वे आत्महत्याको उद्यत थे जब मुझे मिले। उनपर मिथ्या लाञ्छन लगा था। चारो ओर उनके कलङ्ककी चर्चा। उनकी व्याकुलता मैं समझ सकता था। मैं समझ सकता था कि अपने उज्ज्वल यशका उन्हें गर्व हो गया था। आसक्ति होगयी यशसे। कन्हाई जनार्दन है और बहुत नटखट है। इसने एक मुट्ठी कीचड़ फेंक दिया था उनपर। मैं जानता था कि वे चाहे जितने दृढ़ निश्चयी हों और चाहे जितने व्याकुल; किन्तु आत्महत्या कर नहीं सकते। यह नन्दतनय उन्हें ऐसे तो मरने देनेसे रहा। उनका उज्ज्वल यश ही मैल है उनका, और यह तो उन्हें मिट्टी रगड़कर धोने लगा है। यह जब रगड़कर धोने लगता है, गायोंके बछड़े बहुत उछल-कूद करते हैं; किन्तु कन्हाईके हाथसे इस प्रकार कहीं कोई छूट सकता है।

स्वजन-मरण, धन-हरण, रोग-शोक-मृत्यु—ये सब और भी बहुत कुछ है कृष्णके समीप। इसके पास गोबर, मिट्टी आदि जानें क्या-क्या हैं, किसीको रगड़कर स्वच्छ करनेके लिए। अपने किसीको यह मलिन देख नहीं पाता।

आप सुगन्धित साबुनकी बात मत कीजिये। कन्हाई कहाँ आधुनिक युगका सुसंस्कृत नागरिक है। इसे तत्काल मनोहर नहीं चाहिये। इसे तो परिणाम-सुखद, स्वास्थ्यप्रद प्रिय है। यह गोपकुमार है। गायोंके गोबरमें खेलना इसे प्रिय है। व्रजरजकी महिमा नहीं सुनी आपने? यह किसीको गोबर या मिट्टी लगाकर रगड़ने लगता है तो कृपा करता है उसपर।

गोबर और रज सर्वरोगहर हैं। आपको भरोसा न हो तो किसी प्राकृतिक चिकित्सकसे पूछ लीजिये। गोबर-मिट्टीकी रगड़पट्टीमें बच सकें, ऐसे न कोई जीवाणु (बेक्टीरिया) हैं और न विषाणु (वाइरस)। कन्हाईकी यह रगड़पट्टी अविद्याको मसल फेंकनेके लिए है। यह इसका स्वभाव है; क्योंकि यह जनार्दन जो ठहरा।



भोला जगद्गुरु—

अब इसमें तो कोई मतभेद है ही नहीं कि श्रीकृष्ण जगद्गुरु हैं। गीता प्रारम्भसे प्रस्थानत्रयीमें है। उसपर भाष्य किये बिना कोई जगद्गुरु हुआ नहीं। सनातन वैदिक धर्ममें नवीन सम्प्रदायको तभी मान्यता मिली, जब उसके प्रवर्तकने उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र और गीताके भाष्य द्वारा अपने मतको पुष्ट कर दिया।

गीता महाभारतका अंश है। ब्रह्मसूत्र और महाभारतके रचयिता भगवान श्रीकृष्ण द्वैपायन वेदव्यासजीने ही जब कहा—

कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्।

तब दूसरे किसके मुखमें हाथभरकी जीभ है जो इसके विपरीत कुतर्क करेगा।

अब यह दूसरी बात है कि आज भी ब्रजके लोगोंको अपना कन्हाई कुछ बहुत चतुर नहीं लगता है। यह कोई चतुरता है कि ब्रज कंटीले करीलसे भरा है और मेवे मथुरासे बहुत दूर होते हैं। कवि ठीक तो कहता है—

कहूँ कहूँ घनस्यामकी गयी सिटल्ली भूल।
काबुलमें मेवा दिये ब्रजमें करी करील॥

करीलमें कड़वी टेंटीके अतिरिक्त और क्या लगना है? लोगोंने बहुत प्रयत्न करके आम-अमरूद लगाये भी तो वे कहाँ अपनी जातिमें कोई प्रतिनिधित्व कर पाते हैं।

कृष्णचन्द्रने केवल गीताका ही उपदेश किया होता, तब भी वे जगद्गुरु माने जाते। पूरे विश्वके दार्शनिक गीताके सम्मुख सिर झुकाते हैं; किन्तु महाभारतके ही शान्तिपर्वमें अनुगीता है। वह भी कम महत्त्व नहीं रखती।

इन ब्रजवासियोंको कहा क्या जाय! ये तो कहते हैं कि 'नन्दबाबाने अपने लालको पढ़ाया ही नहीं। इसलिए इसे तो दो-दो चारकी गणना भी नहीं आती।'

आपको क्या लगता है कि ब्रजवासी ठीक नहीं कहते? इस समय आप भले यह बात कह दो; किन्तु इस भोले कन्हाईको क्या आपने कभी

ठगा नहीं ? कभी ठगनेका प्रयत्न नहीं किया ; आपने कभी मनौती नहीं की—'मेरा अमुक काम हो जाय तो मैं तुम्हारी पूजा करूँगा ?'

कभी आपने हिसाब लगाया है कि आपके उस कामको यदि साधारण ढंगसे किया जाता तो आपको कितना खर्च पड़ता ? लेकिन आप तो साधारण-सी पूजा भी पहिले करनेको प्रस्तुत नहीं। वह भी तब करेंगे, जब आपका काम हो जायगा। यदि यह लोगोंका काम ऐसे न करता होता तो आप मनौती करते ? मानता हूँ कि यह हर बार किसीका काम नहीं कर देता ; किन्तु यह आप भी मानते हो कि यह नटखट है। नटखट तो है ; किन्तु चतुर नहीं है, भोला है।

गीता और अनुगीताकी ही बात नहीं है। श्रीमद्भागवतका एकादश स्कन्ध आपने कभी पढ़ा है ? यह उद्धवको—देवगरु बृहस्पतिजीके साक्षात् शिष्य उद्धवको भी श्रीकृष्णने उपदेश किया है। केवल उद्धवको एकान्तमें नहीं, भगवान वेदव्यासके मित्र मैत्रेय महर्षिकी उपस्थितिमें और तब जब कि चरणमें वाण लग चुका था, पूरे यदुकुलके—अपने पुत्रों, पौत्रोंके शव सम्मुख पड़े थे। इस परिस्थितिमें तत्त्व ज्ञानका उपदेश स्थिर-शान्त चित्त कर सके, ऐसा दूसरा कोई आप सोच भी सकते हैं ?

इस गम्भीरताके साथ ही दूसरी बात भी ध्यान देनेकी है। गीतामें ही घोषणा है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ गीता ९.२६

यहाँ 'गृह्णामि—स्वीकार कर लेता हूँ', कहनेसे भी तो काम चल ही सकता था ; किन्तु 'अश्नामि—खाता हूँ' कहनेवाला अपने भोलेपनका क्या करे ? यह घोषणा भी पीछे की गयी। इसका अभ्यास तो आपने बहुत पहले कर लिया था।

द्रौपदीकी बटलोईसे शाकका चिपका पत्ता आपने उठाकर मुखमें डाला, तब क्या वह पत्ता शुद्ध था ? बर्तन मलनेके पश्चात् उसमें कुछ जूठा चिपका रह जाय, उसे आप मुखमें डालने योग्य मानेंगे ?

विदुर-पत्नीने केलेके छिलके खिलाने प्रारम्भ किये थे। ऐसे भोले कि छिलके और गूदेका अन्तर ही पता नहीं। आप इसे प्रेम-परवशता कहते हैं, सो तो ठीक है ; किन्तु यह भी तो स्वीकार करना पड़ेगा कि ये वहीं तक

जगद्गुरु हैं, जहाँ तक कोई सच्चा प्रेमी सम्मुख नहीं आ जाता। कोई प्रेमी सम्मुख ही आ जाय तो? तब तो गोपियाँ एक चुल्लू छाछपर नचाने लगती हैं।

मैं कहता हूँ कि कन्हाई तो भोला ही है। यह जगद्गुरु तो तब बनता है, जब कोई इसके सम्मुख गिड़गिड़ाने लगता है, कोई अर्जुनकी भाँति मोहग्रस्त हो जाय अथवा उद्धवके समान जिज्ञासु बने, तब इसे भी गम्भीर बनकर उपदेश करनेकी सूझती है। अन्यथा यह इसका अपना सहज स्वभाव नहीं है।

कन्हाई स्वभावसे चपल है। इसे आधी घड़ी कहीं स्थिर बैठना नहीं। ऐसा यह क्या स्वभावसे जगद्गुरु होगा? आप किसी गाने-बजाने-नाचने वालेको, बन्दरकी भाँति उछल-कूद करते रहने वालेको गुरु बनाना पसन्द करोगे?

गोपबालक तो कहते हैं—'कन्हाई तो इतना भोला है कि खीर देखकर भी कह बैठता है—'खट्टी हुई तो?' इसे तो कोई बात ठीक समझ ही नहीं आती। यह अवश्य है कि अपनेको बड़ा बुद्धिमान मानता है। सबसे उलटी-सुलटी बात करेगा और झगड़ेगा। बाघके बच्चेको बिल्ली कहेगा और तब मानेगा जब उन बच्चोंकी माँ को बुलाकर इसके पास खड़ा कर दो। यह तो बिना ब्यायी बछड़ीको भी दुहनेकी हठ करने लगता है।'

आप कह सकते हो कि—'श्रीकृष्णका भोलापन आगन्तुक है। ये सहज ही ज्ञानघन हैं। भोलापन तो भक्तोंको—स्वजनोंको प्रसन्न करनेके लिए अपनाते हैं।'

आपकी बातके पक्षमें बल तो यह है कि सब ऋषि-मुनि भी यही कहते हैं। इन दाढ़ी वाले बड़े-बूढ़ोंकी बात काटना कोई अच्छी बात नहीं है। ग्रन्थोंमें भी इनकी बात ही मिलेगी, यह तो निश्चित है; क्योंकि ग्रन्थ भी अधिकांश इन जटाधारियोंके ही हैं।

आपसे बिना विवाद किये एक बात पूछनी है। आप बहुमतको मानते हैं या नहीं? यह मानते हैं कि निकट रहनेवाले व्यक्तिको दूर रहने वालोंकी अपेक्षा अधिक जानते-पहिचानते हैं? यह आपको स्वीकार है कि व्यक्ति वैसा है, जैसा जीवनमें अधिकांश समय रहता है? अथवा व्यक्ति कभी कदाचित् जैसा बन जाता है, जैसा आप उसे मानते हैं?

कन्हाईके सम्बन्धमें यह बात निर्विवाद है कि यह आनन्दघन है। यह है ही उत्सव-मूर्ति। जहाँ रहेगा, आनन्द उछलता रहेगा वहाँ। यह वहाँ धूम मचाये रहेगा। लेकिन इसके सबसे निकट रहनेवाले ब्रजके लोग, उनसे पूछ देखिये कि उनका यह श्रीब्रजेन्द्रनन्दन भोला है या चतुर ?

कन्हाई उपदेष्टा कितनी देरको बना? जीवनमें तो यह धूम ही करता रहा। इसे 'मीठे खट्टे खारी' फलोंका स्वाद कभी समझमें नहीं आया। इसे सुदामाके चिउड़े मीठे लगने लगे। चाहे जिसे चिढ़ाने-खिझानेसे इसे अवकाश नहीं।

लका-छिपीके खेलमें यह कुञ्जमें भाग तो जाता है; किन्तु मुख निकालकर, हाथ हिलाकर ढूँढ़ने वालेको बुलाता भी है—'मैं यहाँ छिपा हूँ। मुझे यहाँ ढूँढ़ ले।'

एक ही चतुराई इसे आती है—बचपनसे आती है। गोपियाँ चाहे जितना छिपाकर रखें, उनके दधि-माखनके बर्तन ढूँढ़ लेता है। माखन लुटाकर आवे या पनघटपर किसीका घटस्फोट करके, मैयाके सम्मुख नये-नये बहाने बना लेना बहुत अच्छा आता है इसे। आप इसी कारण इसे जगद्गुरु कहना चाहते हो ? आपको इसके साथ कहीं माखन चुराना है या किसीका घड़ा फोड़ना है ?

जानता हूँ कि इसे जगद्गुरु कहने-मानने वाले इतने अधिक हैं, सदासे रहे हैं कि मेरी बात उन सबकी भीड़में सुनी नहीं जायगी। सबकी बातका विरोध करना भी अच्छी बात नहीं है। फिर जगद्गुरु है भी तो अपना यह कन्हाई ही तो। लेकिन इतना अवश्य कहना है कि यह जगद्गुरु भले हैं, पर बहुत भोला है।



सुकुमार वीर

अकेला कन्हाई ही है जो सुकुमार भी है और वीर भी है। सुकुमार इतना कि किसी कुसुमका दल इतना सुकुमार नहीं। लगता है कि इसके चरण रखे जायं, इतना मृदुल कोई आस्तरण सृष्टिकर्ताने बनाया ही नहीं। यह ब्रजमें रहे या अयोध्यामें, अपने सौकुमार्यका अपलाप तो कर नहीं पाता।

अद्भुत बात नहीं लगती आपको कि नंगे पैर गायोंके पीछे वन-वन भटकता रहता है और तब भी इसके चरणोंमें तनिक भी काठिन्य नहीं आ सका। खर-दूषणने जब श्रीराम-लक्ष्मणको देखकर कहा—

जद्यपि भगिनी कीन्ह कुरूपा।
बध लायक नहिं पुरुष अनूपा।।

तब श्रीचक्रवर्तीजीके कुमार कोई राजभवनसे नहीं चले आ रहे थे। अयोध्यासे निकले उन्हें बारह वर्षसे कुछ अधिक ही बीते थे। वनमें नंगे पैर चलते थे और धूप, वर्षा, शीत सबके मध्य ही रहते थे। भोजनमें न दूध था, न दही और न घी। कंद, मूल, फल और आप कह सकते हैं कि कभी-कभी मधु-छत्रक भी मिल जाता होगा। पैदल भी कितनी दूर चल चुके थे? अयोध्या से पञ्चवटी-नासिकके पास तक और वह भी बहुत अधिक ऋषि-मुनियोंके आश्रममें घूमते हुए। आज भी यह लगभग पूरा क्षेत्र (चित्रकूटसे पञ्चवटी तक) वन-पर्वतोंसे भरा है, दुर्गम है।

सौकुमार्य ऐसा दिव्य कि म्लान होना जानता ही नहीं। न धूप उसे झुलसाती, न शीत ठिठुराती। पृथ्वी ही उन चरणोंको देखकर संकुचित होकर मृदुल बनती है। प्रकृति तो सेविका है। वह प्रतिकूल बननेका साहस नहीं कर सकती।

कन्हाईकी वीरता? ब्रजमें तो सभी बालक इसे पटकनी दे लेते हैं। कंसके असुरोंको इसीसे भ्रम हो गया। भ्रम तो गोपकुमारोंको भी हो गया कि उनमें सबसे दुर्बल कन्हाई ही है और यह असुरोंको सहज मार देता है

तो राक्षस केवल फुग्गेके समान फूले होते हैं। देखनेमें भले डरावने लगते हैं और गुर्राते-उछलते भी बहुत हैं; किन्तु तनिक चोट पड़े तो फट् मर जाते हैं। बड़े मकड़ेसे अधिक महत्व उनका नहीं है।

यह श्याम नटखट भी तो कम नहीं है। इसे दूसरोंको भ्रममें रखनेमें पता नहीं क्या आनन्द आता है। सारे संसारको इसने भ्रममें ही तो भटका रखा है। इसकी मायासे ही तो सब मोहित हैं। अब यह भी कोई बात हुई कि जिस जरासन्धको आपने सत्रह बार बुरी तरह पराजित किया, उसीके सम्मुखसे बिना युद्ध किये ही मुट्ठी बाँधकर भाग खड़े हुए। भागते ही चले गये। इसीसे तो रणछोड़राय बन सके।

आपने भी सर्प तो देखा ही है। कितना भी बड़ा सर्प हो, क्या वह सिरपर एक किलो भार उठाये रह सकता है? आपने इस दृष्टिसे कभी सोचा है कि कालियके फणोंपर नृत्य करनेवाला यह कन्हाई भारकी दृष्टिसे कैसा होगा? यह उस नागके फणोंपर पैर न पटकता होता तो नागको कोई कष्ट होता? कालिय हारा ही इसलिए कि यह उसके फणोंपर धमा-चौकड़ी करता था।

कन्हाई केवल सात वर्ष दो महीने सात दिनका था जब इसने गोवर्धन उठाया था। वाम-करकी कनिष्ठिकापर सात दिन उठाये रहा उस पर्वतको। गोवर्धनकी परिक्रमा सात कोसकी कही जाती है तो उनकी लम्बाई पाँच कोसके लगभग तो होगी; क्योंकि चौड़ाई बहुत कम है—आधे मीलसे भी कम। आज भी गोवर्धन अपनी पूँछड़ीकी ओर छोटी पहाड़ी जितने ऊँचे हैं। कहते हैं कि वे भूमिमें धँस रहे हैं। मैंने ही आजसे लगभग तैंतालीस वर्ष पहिले देखा था तो राधाकुण्डकी ओर भी थोड़ी ऊँचाई थी। अब तो वहाँ चौरस खेत हैं। कितना भार होगा गोवर्धनका—यह तो कोई गणितज्ञ ही माप-जोखकर बता सकता है; किन्तु अब भी गोवर्धनमें इतनी बड़ी शिलाएँ हैं जो बड़े हाथियोंके हिलाये भी नहीं हिलेंगी।

जो इतना हल्का है कि कालियके फणोंपर नाचता रहा–वह सात दिन-रात अपनी कनिष्ठिकापर गोवर्धनको उठाये रहा। आजके बुद्धिमानोंकी समझमें यह बात नहीं आती तो वे बाँध बनाने जैसी कल्पना करते हैं। बात तो उस समय भी गोपबालकोंकी समझमें नहीं आयी थी लेकिन वे गोपबालक ही थे, आधुनिक तर्कधुरीण महापण्डित तो थे नहीं। उन्होंने

अपना समाधान अपने ढंगसे कर लिया—'हम सब अपनी लाठियाँ लगाये पर्वतको उठाये थे। कन्हाई तो हठके कारण वाम-हस्त उठाये रहा। इसने तो पर्वतको केवल स्पर्श कर रखा था।'

कहा न कि इस नटखट कन्हाईको लोगोंको भ्रममें रखनेमें कुछ मजा आता है। गोपकुमारोंको भ्रम न होता तो कंसके अखाड़ेमें ये कृष्णके खींचनेपर उससे मल्लयुद्ध करने उतर जाते? उन सबके ही सामने तो इसने असाधारण बलवान कुवलयापीड़ हाथीको मारा था।* कंसके लगभग दिग्विजयी मल्ल चाणूर-मुष्टिक, शल-तोशल तथा कूटको उसी अखाड़ेमें मारा था और तब तक उनकी लाशें भी अखाड़ेसे हटायी नहीं जा सकी थीं।

आप भ्रममें न पड़े तो इस परम सुकुमारका शौर्य आप सरलतासे स्मरण कर सकते हैं। महाभारतका युद्ध सम्भव ही तब हुआ जब श्रीकृष्णने घोषणा कर दी कि वे इस युद्धमें शस्त्र-ग्रहण नहीं करेंगे। यदि यह पता होता कि श्रीकृष्ण चक्र लेकर पाण्डवोंके पक्षमें युद्ध करेंगे, पता नहीं दुर्योधनके पक्षके कितने लोग युद्धका साहस कर पाते। युद्ध होता भी तो कितने घण्टे चलता? श्रीकृष्णने अनेक युद्ध किये और बहुधा अकेले या केवल अपने अग्रज श्रीबलरामजीको साथ लिया; किन्तु कोई युद्ध दो दिन भी चलने दिया? कोई टिक सका पूरे दिनभर भी इनके सम्मुख?

'भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि।'

आपने गीताके प्रारम्भमें ही दुर्योधनकी यह घोषणा पढ़ी है। इस आदेशमें 'भीष्ममेव' है अर्थात् केवल भीष्मकी रक्षा करें। इतना ही नहीं, आगे भी 'एव' और 'हि' आया है। 'हि' का अर्थ है निश्चयपूर्वक और 'एव' का अर्थ है केवल।

दुर्योधन स्पष्ट कह रहा है—'युद्ध तो अकेले पितामह भीष्म ही विजय कर लेंगे। आप सबको युद्धकी चिन्ता नहीं करनी है। लेकिन आप सब पूरे निश्चयसे चारों ओरसे केवल भीष्मकी रक्षा करें।'

इतना स्पष्ट आदेश है। इसमें किसीको कहीं अन्यत्र लगे रहनेका बहाना करनेका स्थान नहीं है। केवल कर्णने झल्लाकर घोषणा कर दी थी

---

*ये मथुराकी कथाएँ 'भगवान वासुदेव' में और गोवर्धन धारण, कालिय-मर्दनकी कथा—'श्रीनन्दनन्दन' में विस्तारसे दी गयी हैं।

कि पितामह भीष्मके सेनापति रहने तक वह युद्धमें सम्मिलित नहीं होगा। द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, दुःशासन, शल्य प्रभृति दूसरे सब महारथी तो थे ही और सबको भीष्मकी रक्षा करनेका स्पष्ट आदेश युद्धके प्रारम्भमें ही दुर्योधनने दे दिया।

श्रीकृष्ण एक ही दिनमें दो बार भीष्मको मारने दौड़े थे। पहली बार चक्र (रथका पहिया) और दूसरी बार चाबुक लेकर।* यह तो ठीक है कि भीष्म भक्त थे। उन्होंने श्रीकृष्णको अपनी ओर आते देखते ही धनुष रथमें डाल दिया और स्तुति करने लगे; किन्तु दूसरे महारथियोंने क्या किया? उनपर तो भीष्मकी रक्षाका भार दिया गया था।

'भीष्म मारे गये! भीष्म मारे गये!' कौरव पक्षके सब सैनिक और महारथी धनुष फेंककर दोनों हाथ उठाकर पुकारने लगे थे। किसीको सन्देह नहीं था कि भीष्म बच भी सकते हैं। किसी एकमें भी साहस नहीं था कि श्रीकृष्णको रोकनेका प्रयत्न करता।

स्वयं दुर्योधन कहीं गया नहीं था। उसने किसीको ललकारनेका साहस नहीं किया। पीछे भी दुर्योधनने किसीको उलाहना नहीं दिया कि भीष्मकी रक्षामें क्यों प्रमाद किया गया। दुर्योधन जानता था कि श्रीकृष्ण चक्र उठालें तो सृष्टिमें कोई उनको रोक नहीं सकता। रोकने वाले एक हों या समस्त सेना हो, बड़वानलमें रुईके समान उसे भस्म हो जाना है। असम्भव प्रयास कोई न करे तो उसके लिए उसे उलाहना नहीं दिया जा सकता।

मजेकी बात है कि दुर्योधन और दूसरे सब लोग केवल भ्रममें पड़ गये थे। इस नटखटसे कोई पूछे कि और भी कभी चक्र लेकर दौड़े हो? चक्र भी कोई लाठी या तलवार है कि उसे लेकर समीप जाना पड़ेगा? अर्जुनके रथपरसे ही चक्र चला देनेमें कोई अड़चन आ गयी थी? अड़चन तो थी और उसे सूरदासने देखा भी—

आगे होइ गंगा सुत देखे, परी तिलक पर दीठ।
सीतल भई चक्रकी ज्वाला, हरि हँसि दीन्ही पीठ॥

किसी भक्तपर तो चक्र चलनेसे रहा। कन्हाई निजजनोंकी रक्षाके लिए परमवीर है, चक्रधर है; किन्तु अपनोंके लिए तो यह परम सुकुमार मुरलीमनोहर ही है।

*** यह पूरी कथा 'पार्थ-सारथि' में देख सकते हैं।**

निष्ठुर दयामय–

अटपटा नहीं लगता आपको कि कोई निष्ठुर भी है और दयामय भी है। शास्त्र और संत तो अनन्त करुणावरुणालय कहते हैं। यह श्रीव्रजराज बाबा नन्दका लाड़ला है ही अत्यन्त अटपटा। सबके सब विरोधी धर्म इसमें अड्डा जमाकर बैठे हैं। इसलिए इसके सम्बन्धमें कोई भी एक बात सुनिश्चित नहीं कही जा सकती।

आप एक बार ग्रन्थोंको और लोगोंकी बात छोड़ दें, अपनी श्रद्धाकी बात भी रहने दें। संसारकी ओर देखें तो आपको क्या इसका संचालक दयालु लगता है? अकाल पड़ते ही रहते हैं। एक देशमें न सही, दूसरे किसी देशमें। भूखसे तड़प-तड़पकर लोग कीड़ोंके समान मरते हैं। माताएँ गोदके बालकोंको बेचकर दो मुट्ठी अन्न पानेको भटकती हैं।

अकेला अकाल ही तो नहीं है। बाढ़ रातोंरात गाँव-के-गाँव बहा देती है। प्रवाहमें बहते पशुओं और मनुष्योंको किनारे खड़े लोग असहाय बने मृत्युके मुखमें जाते देखते रहते हैं। सुखी-सम्पन्न परिवार घड़ी भी नहीं बीतती और लुप्त हो जाता है।

महामारियोंकी कोई गणना है? प्रकृति कितने उत्पात करती है या कर सकती है, कोई कह सकता है? समुद्री तूफान, आँधी, भूकम्प, ज्वालामुखीका विस्फोट पता नहीं कितने प्रलय-ताण्डव चलते ही रहते हैं सृष्टिमें।

होनेको तो संसारमें पता नहीं कितने मिहिरकुल, हलाकू खाँ, नादिरशाह और तैमूरलंग हुए हैं। एक-एक स्थानपर लाख-लाख लोगोंको मरवा देना, नगरों और गाँवोंमें आग लगा देना उनका मनोरञ्जन था।

इतिहासको न भी उलटें तो अभी इसी दशकमें क्या संसारमें कम नृशंस अत्याचार और नरसंहार हुए हैं? कई-कई देशोंके शासकोंने अपने किसी प्रदेशकी पूरी-की-पूरी जातिको नष्ट कर देनेका क्रूरतम प्रयास किया।

यह सब सच होनेपर भी परमसत्य यह है कि मनुष्य पूरे संसारके मिलकर भी सौ वर्षमें उतना संहार या उत्पात नहीं कर पाते, जितना

प्रकृतिका एक बड़ा उपद्रव पलक झपकते कर डालता है। मनुष्यके उपद्रवके विरुद्ध आक्रोश उठता है; किन्तु प्रकृतिके उपद्रवके सम्मुख तो मनुष्य विवश है।

केवल अकाल, बाढ़, भूकम्प, महामारीके प्रकोप ही नहीं है। संसारके प्राणियोंके इतिहाससे परिचित लोग जानते हैं कि प्रकृतिने कैसे अनेक बार सम्पूर्ण प्राणियोंका संहार कितनो निर्दयतासे किया है। पूरे महाद्वीप समुद्र-गर्भमें विलीन हुए या हिम-समाधिमें अब तक सो रहे हैं। इतना ही नहीं, सम्पूर्ण ग्रहोका भी विनाश होता है। इसीको हम-आप प्रलय कहते हैं।

विशेष अवसरोंकी बात जाने दीजिये, बहुत दारुण कथा है यह। साधारण समयमें ही आप किसी बड़े अस्पतालमें चले जाइये। संसारमें रोगोंसे ग्रस्त तड़पते लोग सब कहीं हैं। दरिद्रताके कारण अस्थि कंकाल बने, दाने-दानेको तरसते बालक-वृद्ध भी सम्पन्नतम देशोंमें मिलते हैं।

केवल मनुष्योंकी बात अब तक मैंने की और वह भी अत्यन्त सांकेतिक ढंगसे; किन्तु पशु-पक्षी, कीट-पतंग क्या उसीकी सृष्टि नहीं हैं, जिसने मनुष्य उत्पन्न किये हैं? यदि सचमुच सृष्टिका न्यायाधीश अपने आसनपर बैठ जाय और दूसरे प्राणियोंको अभियोग उपस्थित करनेका अवसर दे तो?

मैं उन लोगोंकी चर्चा छोड़ देता हूँ, जिन्हें अपने उदरको कब्रगाह बनानेका उत्साह है। जो शाकाहारी हैं, जो अहिंसाव्रती हैं, उनके द्वारा ही क्या कम हिंसा होती है? प्राणियोंकी सहस्र-सहस्र जातियोंका उन्मूलन करनेमें मनुष्य लगा है। केवल सीधी हत्या नहीं, आज तो खोजबीनके नामपर या विलासिताकी सामग्री पानेके लिए लाखों प्राणियोंपर पैशाचिक अत्याचार किये जा रहे हैं।

आप स्वयं किसीकी हत्या न करें, किसीको न सतावें; किन्तु आपके सामने कोई भूख या रोगसे तड़पता हो, कोई किसी दुर्बल बालक या असमर्थ अबलापर अत्याचार करता हो और आप सम्पन्न हों, अच्छे चिकित्सक हों या बलवान हों, फिर भी चुपचाप देखते रहें, तटस्थ बने रहें तो आपको सज्जन कहा जा सकेगा? आपको कोई ऐसी अवस्थामें दयालु कहे तो वह आपकी प्रशंसा होगी या उपहास?

कन्हाई सर्वज्ञ नहीं है ? सर्वसमर्थ नहीं है ? सृष्टिमें जो कुछ हुआ या हो रहा है, वह किसी दूसरेकी शक्तिसे, सङ्केतसे, समर्थनसे हो रहा है ? हम धार्मिक भारतवासी तो शैतान जैसी कोई सत्ता ही नहीं मानते। तब विश्वका विधायक अत्यन्त निर्दय-निष्ठुर है, यह कहनेमें कोई अत्युक्ति है ?

लेकिन यह बात शास्त्र और संतोंके सर्वथा विरुद्ध है। सत्-परम्परासे समर्पित तथ्य ही सत्य होता है और सत्-परम्पराका घोष है कि परमात्मा अनन्त दयाधाम है। कृपा करना ही उसका स्वभाव है। कृष्णको दण्ड देना आता ही नहीं। यह तो विशुद्ध दयामय है।

'प्रभु मूरति कृपामयी है।'

इसलिए हमको-आपको अपने प्रत्यक्षपर विचार करना पड़ेगा। अनेक बार तथ्य उसके सर्वथा विपरीत होता है जैसा कि दिखायी पड़ रहा हो। बोतलमें सदा शराब ही नहीं होती। उसमें गंगाजल भी हो सकता है और औषधि भी।

संसारकी ओर देखते समय हम एक मूल बात ही भूल जाते हैं कि सब प्राणियोंमें जो चेतन है, वह अविनाशी है। उसमें परिवर्तन नहीं, विनाश नहीं। मृत्यु, रोग, अभाव प्रभृति केवल शरीरोंको प्रभावित करते हैं और शरीर अवश्यमेव नष्ट होनेवाला है।

सौभाग्यवश मुझे एक पागलको देखनेका अवसर मिला। उसने पता नहीं कितने वर्षोंसे स्नान नहीं किया था। उसके शरीरपर लिपटा-चिथड़ा दुर्गन्धि दे रहा था। शरीरपर फुन्सियाँ हो गयीं थीं। तीन तगड़े लोगोंने उसे पकड़ रखा था। पागल चीख-चीखकर रो रहा था और हाथ-पैर पटक रहा था।

उन लोगोंने उसके शरीरपर-का चिथड़ा फाड़ फेंका। सीधे उतारना इसलिए कठिन था क्योंकि पागल चिथड़ेको हाथोंसे पूरी शक्तिसे चिपटाये था। पागलको उन लोगोंने बलपूर्वक रगड़-रगड़कर धोया। उसे नंगा कर दिया था उन्होंने और उसके शरीरसे मैलकी तह छुड़ा रहे थे। इस पूरे समय पागल रोता-तड़पता रहा। उसे स्नानसे स्वच्छ करके कोई तेल लगा दिया और स्वच्छ, नवीन कपड़े पहिना दिये।

वे तीनों पुरुष क्या पागलके प्रति बहुत निष्ठुर थे ? उन्होंने उसके चिथड़े जलाकर निर्दयता की ? जला न देते तो पागल शायद उन्हें फिर

उठा लेता और आश्चर्य नहीं कि नये कपड़ोंके ऊपर लपेट लेता। उन लोगोंकी पागलके प्रति सहानुभूतिमें कोई कमी थी ? उनमें यदि दया और सहानुभूति नहीं होती—आपको ऐसे मलिन वस्त्र पागल कभी मिले नहीं ? आपने भी कभी उनको नहलाने और उनके कपड़े बदलनेका पुण्य किया है ?

पागल तो रोवेगा ही। उसकी अपने चिथड़ेसे बहुत आसक्ति है। वह गाली देगा, थूकेगा, मार भी सकता है। उसे सम्हालनेकी शक्ति चाहिये और बहुत दया, बहुत सहानुभूति चाहिये। उससे कुछ पानेकी आशा तो कोई भी कर नहीं सकता। वह स्नान कराये जाने और नवीन कपड़े पानेपर प्रसन्न होकर प्रशंसा ही करेगा, यह निश्चित नहीं है। वह तब भी चिथड़ेके लिए रोता रह सकता है और गाली दे सकता है।

चेतन अमर है, अविनाशी है। चेतन ही कन्हाईका अपना है, कठिनाई यह है कि यह जीव—चेतन पागल हो रहा है। यह चिथड़ोंको चिपटाये है और उन्हीं चिथड़ोंके मोहसे दुःखी है। अपनी स्वच्छताका प्रयत्न स्वयं तो क्या करेगा, कन्हाई करता है तब भी यह उसे दारुण-पीड़ा मानकर रोता-चिल्लाता है।

कन्हाईको अनेक रूप लेने पड़ते हैं। बहुत बार ढेर सारे चिथड़ोंकी होली ही जला देनी पड़ती है। अनेक बार इन पागलोंको स्नान करानेके लिए देर तक इन्हें रगड़ना पड़ता है। इन सब प्रयत्नोंमें नन्दलाल निष्ठुर लगता है तो दोष किसका है ?

कोई कन्हाईकी ओर उन्मुख होता है तो यह उन्मुखता ही उसे अनायास स्वच्छ कर देती है। जिसमें भक्तिदेवीका तनिक भी प्रकाश आया, वह शरीरसे तो अनासक्त हो ही गया। कदाचित कभी आसक्ति आती जाय तो आपने कभी सुना है कि संकटमें किसीने परमात्माको पुकारा और उसको सहायता प्राप्त नहीं हुई ?

रोग और मृत्यु, उत्पात और आक्रमण बहाने हैं चिथड़ोंको नष्ट करनेके लिए। पागलोंका, अज्ञानी जीवोंका समुदाय न इन चिथड़ोंकी आसक्ति छोड़ता, न रोना बन्द करता; किन्तु दयामय अपनी स्वच्छताका प्रयास बन्द कर दे तो दयामय रहेगा ?



योगेश्वर गोपाल—

अनेक लोग हैं जो कन्हाईको योगेश्वर मानते हैं। असंख्य लोग हैं जो इसे परमब्रह्म परमात्मा कहते हैं। कुछ लोग आदर्श पुरुष या प्रकृष्ट नीतिज्ञ कहते हैं तो कुछ ऐसे भी हैं या हुए हैं जो इसे ऐतिहासिक ही नहीं मानते। कहते हैं—'यह तो व्यास अथवा उन जैसे ही किसीकी कल्पनाका पुरुष है।' कुछ अत्यन्त प्रगतिशील लोग इसको कुपुरुष भी कहते हैं और वैसी उपाधियों-से विभूषित करते हैं। परमहंस चक्र चूड़ामणि श्रीशुकदेवजीने इसे योगेश्वरेश्वर कहा है।

पुराणकार कहते हैं कि यह पूर्णपुरुष है और इसने स्वयं अपनेको पुरुषोत्तम कहा है—

यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।। गीता १५.१८

क्षर और अक्षरसे भी भिन्न, अक्षरसे उत्तम तो पुरुषोत्तम ही पूर्ण-पुरुष हुआ। पूर्ण होता ही वह है जो सब ओरसे पूर्ण हो। अतः जिस किसी भी दृष्टिकोंणसे देखा जायगा, यह पूर्ण ही दीखेगा।

आप कृष्णको योगेश्वर कह सकते हैं; किन्तु कोई छोटा भोगी नहीं कह सकते। इसे नीतिज्ञ कहने चलेंगे तो नीतिज्ञ-शिरोमणि ही कहना पड़ेगा। यहाँ तक कि इसे चोर कहना हुआ तो श्रुतिने हाथ जोड़ लिया—

'तस्कराणां पतये नमः।'

जिन्होंने कल्पना-पुरुष कहा, उन्होंने भी स्वीकार किया कि श्रेष्ठतम प्रतिभाशालीकी उत्कृष्टतम कल्पनाका यह प्रतीक है। जो इसे गाली देते हैं; वे लोग भी इसे छोटा उपद्रवी कहनेका साहस नहीं करते।

यह गोपाल अद्भुत है। इसे किसीका कुछ कहना बुरा नहीं लगता। आप इसे जो कहो, सब स्वीकार है इसे।* कहने वालेके लिए यह वैसा ही बन जाता है।

यह बात भी ठीक नहीं है कि कन्हाई सर्वत्र ही सर्वोपरि है। यह गोपाल है तब सर्वोपरि कैसे रहेगा? गायोंका चरवाहा वैसे भी कोई

---

* **कृष्णके स्वभावोंका वर्णन 'श्यामका स्वभाव' में विस्तारसे है।**

सम्मानित नहीं हुआ करता। ब्रजमें तो बहुत थोड़े बालक हैं जो इससे आयु और बलमें छोटे हैं।

श्रीनन्दबाबा अथवा उनके समान बड़े गोपोंकी चर्चा क्यों की जाय। ऐसे ही ऋषि-मुनियोंकी, मैया यशोदाकी या बड़ी गोपियोंकी भी चर्चा व्यर्थ है। यह सब वर्ग तो इससे बड़ा है ही। ब्रजके सेवक-सेविकाओंका भी यह वात्सल्य-भाजन ही है। चर्चा आप चाहें तो गोपकुमारोंकी कर सकते हैं; किन्तु उनमें भी अधिकांश आयु तथा बल दोनोंमें इससे बड़े हैं। जो वयमें समान हैं अथवा महीने दो महीने छोटे हैं, वे भी इसे पटकनी दे लेते हैं। थोड़ेसे बालक हैं तोक, अंशु और इनके समवयस्क। कन्हाई इन सबको स्नेह करता है। लेकिन इनमें भी कोई नहीं मानता कि वह कन्हाईसे दुर्बल है।

गोपाल नाम कृष्णके लिए रूढ़ होगया, यह ऋषि-मुनियोंके झक्की स्वभावका परिणाम आपको नहीं लगता? जो गायें चराते थका करते थे, जो गायोंकी साज-सम्हाल रखते थे, वे सब गोपाल नहीं और यह कन्हाई गोपाल होगया, केवल गायोंके पीछे प्रतिदिन वनमें जाने और सायंकाल उनके साथ लौटनेसे?

मैं स्वीकार करता हूँ कि गायें यदि हमारी आपकी भाषा बोल सकें और उनसे पूछा जाय कि उनका पालक कौन है? तो वे इसीका नाम लेंगी। दूसरा नाम वे ले नहीं सकतीं। गायोंकी आदिमाता सुरभिने इसका अभिषेक करके इसे गोविन्द पद दे दिया है। अतः गायें दूसरेको गोपाल कैसे मान लेंगी?

अच्छी बात—इसे गोपाल रहने दीजिये। भले यह गायोंके साथ बनमें जाकर वंशी बजाने, नाचने, खेलनेमें ही लगा रहता हो, संकटमें गायोंको इसीने बचाया, हम आप भी इसे कैसे अस्वीकार करेंगे। दावानलसे इसने बचाया और इन्द्रके द्वारा प्रलयवृष्टि करनेपर इसीने परित्राण दिया। अतः कन्हाई गोपाल तो है। केवल गायोंकी ही नहीं, पूरे गोकुलकी रक्षा करके गोपाल नामको सार्थक किया है इसने।

गोपाल तो ठीक; किन्तु योगेश्वर? गोपाल भी कोई कभी योगी हुआ है? गायोंको चरानेवाला आसन लगाकर, नेत्र बन्द करके ध्यान करने बैठेगा तो उसकी गायें भटक नहीं जायँगी? वह गाय चरावेगा या योग करेगा?

ठीक है कि इन्द्रियोंका भी नाम गौ है। ये भी गायोंके समान ही संसारमें चरने दौड़ती हैं। इनको रोका न जाय तो इन्हें स्वयं उचित-अनुचितका पता नहीं है। इनको तो बुद्धिके द्वारा नियन्त्रित करते ही रहना पड़ता है। लेकिन जो इन्द्रियोंकी ही तृप्तिमें लगे हैं, उन इन्द्रियराम लोगोंको आप योगी कहना चाहेंगे ? योग तो उनसे कोसों दूर है; क्योंकि योगका आरम्भ ही शम-दमसे होता है। इसमें इन्द्रिय दमनका ही नाम दम है।

कन्हाई गोपाल है—खूब श्रेष्ठ गोपाल भी कहें तो कोई बुरी बात नहीं। लूटकर चोरी करके भी दधि-माखन खानेमें इसने कभी संकोच नहीं किया। अब भी भक्तजन इसे छप्पन भोगके नामपर कई-कई सौ पदार्थ निवेदित करते हैं। भोजनकी यह निपुणता और विवाहकी बात आप जानते ही हैं। ब्रजमें ही रासमें कितनी सखियाँ थीं इसकी ?

पुष्प इसे बहुत प्रिय हैं। बहुत प्रिय है पुष्प श्रृंगार और इत्र भी। अंगराग तो इसने मथुरामें प्रवेशके प्रथम दिन ही कुब्जासे माँगकर लिया। धूप, माला, पुष्पके बिना कहीं किसी मन्दिरकी पूजा सम्पन्न होती है ?

सुकोमल पीताम्बर ही पहिनेगा और संगीत, नृत्यमें इसकी समता त्रिभुवनमें कभी सम्भव नहीं हुई। इस प्रकार आप इन्द्रियपालक होनेसे इसे गोपाल कहें तो मजेमें कह सकते हैं और गायोंका, गोपकुलका पालक तो यह है। जब इन्द्रने यह स्वीकार कर लिया तो आप अस्वीकार भी करेंगे तो उसे कोई मानेगा ?

कन्हाई बहुत चपल है। इसे दो घड़ी भी कहीं चुपचाप बैठना नहीं आता। वनमें कभी दोपहरमें पल्लव-तल्पपर किसी सखाकी गोदमें सिर रखकर लेटे भी तो लेटे-लेटे भी किसीको गुदगुदा देता है। किसीको चुटकी काट लेता है या अँगूठा दिखा देता है। किसीके ऊपर भी कंकड़ी अथवा पुष्प फेंककर दूसरी ओर मुख करके नेत्र बन्दकर लेता है। मानो गहरी नींदमें ही हो। इसे शान्त रहना आता ही नहीं।

सुना तो यही है कि योग कोई भी हो, उसके साधकको स्थिर बैठना पड़ता है। मनको शान्त करना पड़ता है। चञ्चलता और योगका कोई मेल आपने कहीं सुना है ? कोई योगका साधक बन्दर पाल ले तो या तो उसका साधन भाग जायगा या उसका बन्दर ही भाग खड़ा होगा। मैया इस श्यामको कोई अकारण बानर-बन्धु नहीं कहती। इसकी बन्दरोंसे खूब

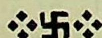
पटती है। यह उनके साथ पेड़ोंपर भी चढ़ दौड़ता है। अब इसने कभी कोई योग किया हो, ऐसा तो सुना नहीं।

लेकिन कन्हाई योगका साधक या योगी है, ऐसा तो सुना नहीं। यह योगी नहीं है, योगेश्वर है। ईश्वरके लिए तो कोई साधन करना आवश्यक नहीं हुआ करता। साधन पुरुष करते हैं। पुरुषको ही चित्त-वृत्ति निरोध करके प्रकृतिसे उपरत होना है। पुरुषको ही स्वरूपावस्थानकी आवश्यकता है। पुरुषोत्तम क्यों इस खटपटमें पड़े।

योग किया जाता है मायाके बन्धनसे छूटनेके लिए। यह कन्हाई क्यों योग करे? मैयाने भले इसे एक बार ऊखलसे बाँध दिया; किन्तु इसे बाँधकर मैया भी पछतायी ही। इसने मैयाके द्वारपर खड़े अर्जुनके दोनों पेड़ ही उखाड़ डाले। गोपियाँ उन पेड़ोंकी पूजा करती थीं।* पूरे गोकुलसे आदर प्राप्त उन वृक्षोंको इसने जड़से उखाड़ दिया। अब भला किसमें साहस है कि इस ऊधमीको बन्धनमें डालनेकी बात भी सोच सके।

माया बेचारी तो उन लोगोंको भी छोड़ भागती है, जो इस ब्रजराजकुमारका स्मरण करते हैं। उस महामोहिनीको भय लगता है उन सबसे जो झूठ-मूठ भी इस गोपालको अपना कहने लगते हैं। यह इसीलिए कदाचित योगेश्वरेश्वर है कि नाना प्रकारके योग-साधनोंसे भी जो माया बड़ी कठिनतासे दूर होती है, वह इस चपलसे बहुत घबड़ाती है। जहाँ इसकी छाया भी किसी हृदयमें पड़ी, माया भाग खड़ी हुई वहाँसे।

सबसे बड़ी बात यह है कि ऋषि-मुनियोंकी बात काटी नहीं जा सकती। ये बड़ी दाढ़ीवाले बाबाजी लोग कन्हाईको योगेश्वरेश्वर कहते हैं तो यह है। भले यह गोपाल है, चपल है, नटखट है। कौन जाने माया इसकी चपलता और नटखटपनसे ही घबड़ाकर भाग जाती हो। अतः अपना यह कन्हाई एक साथ गोपाल और योगेश्वर दोनों है।



---

* देखिये 'नन्दनन्दन'।

जब भूल जाय—

अधिकांश लोगोंको भूला ही हुआ है और जब कन्हाई भूल जाता है, अपना आपा भी भूल जाता है। अनन्त कालसे जीव इस व्रजसुन्दरको विस्मृत किये बैठा है। फलतः अपनी भी स्मृति नहीं है। यह तो जन्म-जन्मके पुण्योदयके पश्चात्—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये। गी० ७.३

सहस्र-सहस्र मनुष्योंमें-से किसीको कभी तनिक चेतना होती है। वह जाननेका प्रयत्न करता है कि उसकी सब भाग-दौड़, चिन्ता-व्यथा किसलिए है, किसके लिए है। इतनी चेतना आजाय तो दोमें-से एक बात अवश्य होगी, यदि अहङ्कार अभी शिथिल नहीं पड़ा है तो वह हाथ-पैर पटककर पुनः प्रसुप्त हो जायगा। यदि अहङ्कार कुछ शिथिल पड़ा है तो स्मरण आवेगा कि कोई है—कोई अदृश्य, अज्ञात है जो उसे सम्हालता रहा है।

कन्हाईके स्मरण आये बिना तो अन्तःकरणकी शुद्धि होती नहीं। विस्मृति अशुद्ध अन्तःकरणकी विशेषता है। इस विस्मृतिकी भी विचित्र विशेषताएँ हैं। कौन कह सकता है कि शराब या अफीमके नशेमें उन्मत्त व्यक्ति अपनेको क्या मान बैठेगा और क्या बोलेगा या क्या करेगा।

कन्हाईको जीव भूला और अविद्याके नशेमें प्रमत्त हुआ। दार्शनिकोंने जगतको स्वप्न कहा है। गोस्वामी तुलसीदास जी भी कहते हैं—

मोह निसा सब सोवनिहारा।
देखहि सपन अनेक प्रकारा॥

आप कौन हैं? किसीसे भी पूछ देखिये। वह एक नाम बता देगा। नाम जो उसने स्वयं न रख लिया हो तो माता-पिता या किसी औरने रख दिया होगा। नाम जो केवल शरीरको दूसरे शरीरोंसे पृथक पहिचाननेके लिए एक संकेतमात्र है। नाम क्या सेना या कारागारके नम्बरके समान नहीं है?

नामसे आगे बढ़कर व्यक्ति कुल, जन्मस्थान अथवा पद या व्यवसाय बता दे सकता है। यह सब किसका परिचय होगा? उसका स्वयंका या

उसके इस वर्तमान शरीरका ? जन्मसे पहिले इस सबसे कोई सम्बन्ध था उसका ? जन्मके पीछेका ही तो यह परिचय है। मृत्युके पश्चात् इनमें-से किसी परिचयसे आप उसे पहिचान पावेंगे ?

जिसका परिचय दिया जाता है, वह शरीर भी क्या है ? उसका वजन घटता-बढ़ता रहता है, आकृति बदलती रहती है। शैशवका आपका चित्र यदि आपने बीचमें न देखा हो और अब आपके सामने आवे तो आप पहिचान लेंगे ?

यह सब क्या है ? यह है कन्हाईका नटखटपन। आपको स्मरण नहीं है कि यह बात स्वयं इसने कही है ?

मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनञ्च। — गीता १५.१५

इस विस्मृतिका विलास असीम है। विस्मृतिने सर्वथा विपरीत स्थिति उत्पन्न कर रखी है—

ईस्वर अंस जीव अविनासी।
चेतन अमल सहज सुखरासी॥

लेकिन विस्मृतिने समझा दिया और मान बैठे कि शरीर हम। अब अपना परिचय शरीरका नाम, जाति, पद, व्यवसायादि होगया। चेतनने अपनेको परिवर्तनशील जड़ मान लिया। अतः उसे रोग, अभाव, मृत्युके भयने जकड़ लिया।

ऐसी मलिनता आयी कि धोये नहीं धुलती। कितना भी शौचाचारका पालन किया जाय, शरीर शुद्ध बन सकता है ? शरीरमें क्या शुद्ध है ? शरीरसे जो निकलता है, सब अशुद्ध। संसारके सब पदार्थ और स्थान मनुष्यके सम्पर्कमें आनेके पश्चात् ही तो अशुद्ध होते हैं। मल-मूत्र, केश-नख, थूक-श्लेष्मा, रक्त-मांस, स्नायु, अस्थि, इनमें-से कुछ कहीं पड़ जायगा तो वह स्थान या वस्तु शुद्ध रहेगी ? जो चेतन सहज अमल है, वही अपवित्रताका उद्गम होगया !

सहज-सुखराशि आप होते तो आपको कभी दुःख होता ? चिन्ता या भय आपका स्पर्श करते ? तथागत बुद्धने तो आर्यसत्य माना—'दुःखं-दुःखं।'

विवेक करनेपर सब पदार्थ, परिस्थिति, सम्बन्ध, भोग दुःखदायी ही सिद्ध होंगे—'दुःखमेव सर्वं विवेकिनः।'

श्रुतिने कहा—'सर्वं खल्विदं ब्रह्म।'

जीवकी बात यह नहीं है। इदं अर्थात् जो कुछ दीख रहा है, उपलब्ध हो रहा या हो सकता है, वह सब ब्रह्म है। ब्रह्म दुःखरूप हो सकता है? वह सच्चिदानन्द है या नहीं?

सब ब्रह्म भी और सब दुःखरूप भी, इसकी कोई संगति है? यह सङ्गति इतनी ही है कि 'सब ब्रह्म है' यह भूल गया है। बहुत सीधे शब्दोंमें कन्हाई भूल गया है और कन्हाईकी विस्मृति तो अत्यन्त विषम विषके समान पीड़ादायिनी है ही।

यह कृष्ण ही आनन्द है और यही ज्ञान है। जब ज्ञान नहीं रहा, आनन्द भूल गया तो दुःखके अतिरिक्त बचा क्या? अब जो बचा वह तो उन्मत्त का उन्माद है। नशेके झोंकमें व्यक्ति अपनेको सुखी मानने लगता है। वह सुखी होना तो दूर, दयनीय बन गया है।

कन्हाई भूल जाता है; भूल गया है। आपको भूल जाय कि दिनका प्रकाश है तो आपके लिए क्या बच रहेगा? प्रकाशकी विस्मृति अन्धकारके अतिरिक्त और कुछ है? सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि मनुष्य यह भी नहीं समझता कि वह भूला हुआ है। अपनेको भूला जान ले तो ठीक खोजमें तो लगे।

विस्मृति दी इस नटखटने और ऐसी विस्मृति दी कि यह आभास भी नहीं रहने दिया कि हम कहीं भूल-भटक गये हैं। हम तो इस शरीर और संसारको ही सब कुछ मानकर इसीमें उलझ गये। इसीसे यह हमारे लिए दुःखरूप हो गया।

एक प्रश्न मनमें आता है, आप बहुत उपासना करके भगवान सूर्यको प्रसन्न करलें और उनसे थोड़ा-सा अन्धकार माँगें तो मिलेगा? श्रीव्रजराज बाबाका यह सुकुमार लाल, इसके पास कठोरता, निष्ठुरता है ही नहीं तो यह दे कैसे सकता है?

कन्हाईको आँख मिचौनी खेलनेका व्यसन है। अपने सखाओंके साथ यह लुकाछिपी खेलता ही रहता है। सब जीव इसके सखा ही तो हैं। कन्हाई करे क्या, यह छिप नहीं पाता। यह कैसे छिपे? इसकी अङ्गकान्ति कहीं छिप सकेगी? यह जहाँ छिपे भी, वहीं मयूर, शशक, कपि इसके पास दौड़ जायँगे।

इस भोले नन्दलालको छिपाना आता भी नहीं। यह तो छिपनेसे पहले कह देता है—'मैं उस कुञ्जमें छिपूँगा।'

छिपकर भी यह छिपना हुआ? फिर इससे प्रतीक्षा नहीं होती। यह बार-बार सिर निकालेगा, हाथ हिलाकर बुलावेगा। इसकी समझमें ही नहीं आता कि सखा इसको छोड़कर दूसरोंको क्यों ढूँढ़ते हैं।

अब यह सखाओंकी सनक कि इसको देखकर भी नहीं देखना चाहते। सबके सब अपनेको भली प्रकार छिपा लेते हैं। स्वयं छिपा लेते हैं। जो अन्धकारमें छिपेगा, कन्हाईसे दूर छिपने जायगा, उसे क्या प्रकाश मिलेगा? कुश, काँटे अन्धकारमें ही तो चुभते हैं।

विपद् विस्मरणं विष्णोः।

विपत्ति और अभाव, दुःख और शोक कन्हाईसे दूर रहते हैं। इसके पास इनमें-से कुछ है ही नहीं तो यह देगा कहाँसे? कन्हाईकी विस्मृति हमारा प्रमाद है। हमारे अपने प्रमादका परिणाम और कोई तो भोग नहीं सकता।

दुःखको दूर करनेके लिए, सर्वथा और सदाको दूर करनेके लिए ही सब आध्यात्मिक साधन प्रारम्भ होते हैं। इसमें ऐसा कोई साधन नहीं, जो कन्हाईके स्मरणके बिना सम्पन्न होता हो। भले आप सीधे शब्दोंमें इसे स्वीकार न करें; किन्तु अन्तर्मुख हुए बिना कोई साधन सफल होता है? अन्तर्मुखता क्या? हृषीकेश अधोक्षजके समीप या उससे एक होकर बैठ जाना ही या और कुछ?

जीवका परम सौभाग्य कि श्यामकी स्मृति बनी रहे। कन्हाई भूल गया तो भाग्य फूट गया। भवमें भटकना, भ्रान्तिसे ठोकरें खाते रहना भाग्य बन गया। बहुत भयानक बात है; किन्तु है। इसीसे उबरना है। इसी विस्मृतिसे बचना है।

कन्हाई इसमें सहायता नहीं करता, ऐसा नहीं है। लुका-छिपी खेलते कोई सखा कहीं गहन वनमें भटक गया तो कोई उपालम्भ नहीं। यह नन्दनन्दन नहीं कहेगा कि दोष उस सखाका है। यह तो कान लगाये रहता है कि कोई इसे पुकारे और यह दौड़ जाय। पुकारने मात्रकी अपेक्षा है। विस्मृति तो पुकारनेका मन करते ही विलीन हो जाती है।



जब स्मरण रहे –

अनेक बातें ऐसी हैं जो अपनी पृथक विशेषता रखती हैं, जैसे भगवन्नाम अपने नामीसे अभिन्न होता है। जगतके सब नाम कल्पित हैं— अत: उनका अपने नामीसे कोई सम्बन्ध नहीं। अग्नि कहनेसे जीभ जलना तो दूर, गरम भी नहीं होती। अग्नि शब्दसे अग्निका बोध भी उसीको होगा जो पहिलेसे जानता हो कि अग्नि किसे कहते हैं; किन्तु अनजान व्यक्ति भी यदि ठीक ढंगसे अग्नि बीजका बराबर जप करे तो उसके शरीरमें उष्णता अवश्य बढ़ेगी। ऐसे ही सब भगवन्नाम भगवत्तत्त्वके बीज हैं। भगवानसे उनका नित्य सम्बन्ध है। अर्थ जाने बिना भी उनका उच्चारण अपना कुछ-न-कुछ प्रभाव उत्पन्न करता है।

यह बात तो हुई शब्दके सम्बन्धमें; किन्तु स्मृतिका तो सीधा सम्बन्ध है पदार्थसे। आपके हृदयमें जिसका स्मरण होगा; वह पदार्थ आपके मनमें साकार होगा। इतना ही नहीं, उस स्मृतिका प्रभाव स्थूल शरीरपर भी पड़ता है। नीबूका स्मरण करनेपर आपके मुखमें पानी आता है या नहीं? शत्रुका स्मरण होनेपर रक्तमें उष्णता आने लगती है।

यह ठीक है कि चीनीका स्मरण करनेसे न मुख मीठा होता और न रक्तमें चीनी बढ़ती; किन्तु चीनीका स्वाद तो मनमें आ ही जाता है। लेकिन इन सांसारिक पदार्थोंकी स्मृति भी रुचिकी अपेक्षा करती है। जिसे मिठास प्रिय नहीं है, उसे चीनीका स्मरण भी कुछ आकर्षक नहीं लगेगा।

हरिः स्मृतिर्सर्व विपद् विमोक्षणम्।

कन्हाईकी स्मृति संसारकी सब स्मृतियोंसे विलक्षण हैं। स्मृति और कन्हाई दो नहीं हैं। कन्हाईके समान ही इसका स्मरण भी सच्चिदानन्द है और सम्पूर्ण विपत्तियोंसे छुड़ाने वाला है।

भजन क्या है? बहुत साधक पूछते हैं।

'भगवानका स्मरण।' बहुत सीधा उत्तर है; किन्तु अधूरा है। कहा जाना चाहिये—'प्रेमपूर्वक भगवानका स्मरण।'

स्मरण तो कृष्णका कंस और शिशुपाल भी करते थे; किन्तु आप उस स्मरणको भजन कहोगे ?

अभी मैंने ऊपर कहा है कि कन्हाईकी स्मृति उससे अभिन्न है। कन्हाई मिल जाय, कैसे भी मिल जाय तो जीवका कल्याण हो जाता है। कन्हाईकी स्मृति आयी तो जीवका कल्याण होनेमें कुछ शेष रहा ? कंस या शिशुपाल जैसे स्मरण करते थे, वैसा स्मरण भी कल्याण करता है या नहीं ?

स्मरणका अर्थ ही है अन्तरमें कहाईका आविर्भाव। अब यह कैसे सम्भव है कि श्याम भी रहे और वहाँ अविद्याका अन्धकार भी रहे। सूर्यका तिरोहित होना ही तो रात्रि है। सूर्य रहेगा तो अन्धकार रहेगा ? कन्हाई रहेगा तो अविद्या रहेगी कैसे ?

कन्हाई नहीं है, ऐसी तो कोई बात है नहीं। यह अन्तर्यामी अधोक्षज हृषीकेश आपको छोड़कर कहीं जा सकता नहीं; किन्तु आप भूल गये हो या भूल जाते हो। आपकी जेबमें नोट पड़ा है, आप उसे भूल गये हो और चिन्तित हो कि भूखे रहना पड़ेगा। अब नोटका मिलना उसकी स्मृति ही है या और कुछ ?

कन्हाई जब स्मृतिमें आया, चिन्ता गयी, भय गया, शोक गया। यह श्यामसुन्दर मनमें है तो साथ है और यह साथ है तो चिन्ता किसकी ? अमृत पीकर अमर हुए देवता भी अघासुरके भयसे काँपते रहते थे। पापसे सुरोंको भी डरना चाहिये; क्योंकि पुण्य करके स्वर्ग मिला तो पाप करके वहाँसे पतन नहीं होगा ? अघासुर तो पापका साक्षात् अधिदेवता। उसका भय देवताओंको भी व्याकुल कर देता था। वही अघासुर आया वृन्दावनमें और उसने गोपबालकोंको प्रलुब्ध भी कर लिया। पाप प्रलोभनीय तो होता ही है; किन्तु बालकोंके साथ था कन्हाई। बालकोंको अपने सखाकी स्मृति थी। सबोंने ताली बजायी—

'अयं तथा चेद् बकवद् विनंक्ष्यति। भागवत १०. १२.२४

'यह यदि खेलने योग्य गुफा नहीं है, राक्षस है—अजगर है तो बकके समान मारा जायगा। अपना कन्हाई कहीं गया तो है नहीं।'

ताली बजाते, हँसते सब अघासुरके मुखमें चले गये। क्या हुआ ? कन्हाईका स्मरण लेकर गये तो कन्हाई बाहर रहता ? अघासुर मिट गया।

बालक उसे गुफा मानकर उसमें छिपना चाहते थे, अतः कन्हाईने उसके शरीरको निष्प्राण, विषहीन करके गुफा बनाकर खेलनेको दे दिया उन्हें।*

भय भी लगता है। यह भव तो नित्य भयाक्रान्त है; किन्तु कृष्णका स्मरण आ जाय तो भय बना रहेगा? सम्पूर्ण व्रजवासियोंको दावानल जलाने बढ़ा आ रहा था। भागनेका कोई मार्ग नहीं। रात्रिमें सब सो रहे थे, तब वनमें अग्नि प्रकट हुआ। चारों ओरसे घिर गये, तब निद्रा टूटी। अब क्या हो? लेकिन कृष्ण भी तो साथ ही था उनके। कन्हाईको केवल पुकारना पड़ा और इस अग्निपायीने दावानल पी लिया।*

कन्हाई है ही तापको पी जानेवाला। इस चिद्घनके समीप पाप-ताप-संताप कोई टिक नहीं पाते। इनकी तो सत्ता ही इसलिए है कि कन्हाई समीप नहीं है। 'कन्हाई समीप नहीं है' का इतना ही अर्थ कि आपको यह स्मरण नहीं आता। आप इसे पुकारते नहीं। अन्यथा कन्हाई भी कहीं दूर हुआ करता है।

चिन्ता होती है वर्तमानकी सुरक्षाको लेकर। भय होता है भविष्यके प्रति—आगे कुछ बिगड़ न जाय इस आशंकासे; और शोक होता है भूतको लेकर। शोक तो भूत है। पिछले समयमें कोई मर गया है, कुछ बिगड़ गया है, अब उसका भूत आपको चिपटता है तो आप दुःखी होते हैं। कन्हाई भी रहेगा और भूत भी चिपटनेका साहस करेगा? श्यामकी स्मृति रहेगी तो आनन्द आवेगा या शोक उत्पन्न हो सकेगा?

आपको सन्देह नहीं होना चाहिये कि बड़े जटा-जूटवाले ऋषि-मुनि जो सचमुच तपस्वी हैं, बड़े बुद्धिमान होते हैं। बुद्धिमान न होते तो उन्हें ज्ञानी कौन कहता? ये सब ऋषि-मुनि यदि कन्हाईको घेरे ही रहते तो इन्हें कोई रोक पाता? कोई प्रतिबन्ध था इनके व्रजमें नन्द-भवन या वृन्दावन आनेपर? अथवा मथुरा या द्वारिकामें इनका प्रवेश-निषिद्ध था? इन लोगोंका तो स्वागत ही होता था। इनकी पूजा की जाती थी। लेकिन इनमें-से कोई कभी पहुँच भी जाता था तो पूजा स्वीकार करके विदा ले लेता था। इन सब लोगोंने मिलकर नटखट कन्हाईका स्थायी घेराव क्यों नहीं किया? आजके भगत लोग यही करना चाहते हैं या कुछ और? लेकिन ऋषि-मुनियोंमें तो सभी एक ही ढंगके। जैसे सब जटा बढ़ाये, सब कृशकाय, वैसे ही सबकी एक ही माँग—'आपकी स्मृति बनी रहे।'

---

* पूरे चरितके लिए देखिये 'नन्दनन्दन'।

'आप हमारे समीप सदा बने रहो।' यह प्रार्थना केवल दैत्यराज बलिने की थी। वामन भगवान सदा उनके द्वारपर उपस्थित रहते हैं। ऋषि-मुनि इस बातको जानते तो होंगे ही। उनमें एकने भी यह प्रार्थना क्यों नहीं की ? की होती तो कन्हाई अस्वीकार कर देता ?

'हम सदा आपके समीप बने रहें।' यह प्रार्थना अनेकोंने की। असंख्य लोगोंने यह प्रार्थना न की होती तो सामीप्य मोक्षका अर्थ ही कुछ नहीं होता। लेकिन ऋषि-मुनि यह प्रार्थना भी क्यों नहीं करते ?

देवर्षि नारदको तो वैकुण्ठ, साकेत, गोलोक कहीं जानेसे कोई रोकता नहीं। दक्षका शाप इन दिव्य-लोकोंसे बाहर ही प्रतीक्षा करता है देवर्षि की। तब ये नारद बाबा क्यों लोकोंमें भटकते फिरते हैं ? ये कन्हाईके समीप ही बैठे वीणा बजाते रहते।

ऋषि-मुनि बहुत अधिक बुद्धिमान होते हैं। उन्हें पता है कि कन्हाईको सदा समीप रहनेको कहनेपर इसे बहुत कष्ट होगा और हम स्वयं इसके समीप बने रहें तो इसकी क्रीड़ामें बाधा पड़ेगी ? अथवा यह चपल हमको ही जटा-दाढ़ी हिलाकर छेड़ता रहेगा। इसलिये यह भी सुखी-स्वच्छन्द रहे और अपने भी ध्यान-धारणाको निर्विघ्न रखो। इसकी स्मृति बनी रहे तो अन्तस्तलमें तो यह बना ही है। इसके बने रहनेसे कहीं अधिक महत्व है इसकी स्मृतिके बने रहनेका।

कन्हाई जब स्मरण रहता है—केवल कन्हाई ही स्मरण रहता है। कन्हाई भी स्मरण रहे और शरीर-संसार भी स्मरण रहे, यह नहीं हुआ करता। आप अपने संसारको, अपने शरीरको, अपने सम्मानको सम्हाले रखना चाहते हैं ? तब आप इस गोपकुमारकी चर्चा छोड़िये।

आप अपने शरीरको, संसारको, स्वजन-परिवारको, पद-प्रतिष्ठाको इसकी इच्छापर समर्पित करनेको प्रस्तुत हैं ? यह इसब सको खेलनेको—यथेच्छ खेलनेको अर्पित कर देनेको उद्यत हैं तो यह आपकी स्मृतिमें बना रहेगा और इसकी स्मृति तो इससे अभिन्न है।



जब असंग—

असंगता कन्हाईका सहज गुण है। कम-से-कम आप इसे दोष तो कह नहीं सकते ; क्योंकि जितने अच्छे महात्मा हैं या हुए हैं, सब असंग। महात्मा गाँधीने गीताका नाम ही अनासक्ति योग रखा। अनासक्ति और असंगता पर्याय हैं। आसक्तिका ही दूसरा नाम सङ्ग है। अतएव जो असंगयोगका उपदेशकर्ता है, जिसके स्मरण-चिन्तनसे दूसरोंको असङ्गता प्राप्त होती है, वह स्वयं क्या स्वरूपसे सङ्ग-दोष वाला हो सकता है ?

आचार्य रामचन्द्र शुक्लने एक स्थानपर लिखा है —'ईश्वरको निर्गुण मान लेनेसे पाता, त्राता कोई हाथ नहीं आता।'

यह तो अपने हानि-लाभको सोचनेकी बात है। लेकिन भगवान शंकराचार्यका अद्वैतवाद निर्गुण ब्रह्मवाद ही है। यह दूसरी बात है कि भारतके बाहर जो भी धर्माचार्य हुए, उन सबने ईश्वरको सगुण ही माना है। भले उन्होंने साकार न माना हो।

अनीश्वरवाद, शून्यवाद और अनेकान्तवादकी यहाँ चर्चा नहीं करनी है ; क्योंकि ये तो ईश्वर ही नहीं मानते, तब सगुण-निर्गुण क्या। लेकिन जो ईश्वर मानते हैं, उनके सगुण ईश्वर माननेका बहुत अर्थ है। सगुण ईश्वर ही तो रक्षा कर सकता है, सहायता दे सकता है, प्रार्थना सुन सकता है।

सरलतासे कहा जा सकता है कि मनुष्यने अपना स्वार्थ सोचकर ईश्वरके स्वरूपका निश्चय किया है। स्वयं ईश्वर कैसा है ? तब कहना पड़ेगा कि वह स्वरूपसे निर्गुण है।

आवश्यक नहीं है कि जो सगुण हो, वह आपसे सम्बन्ध या आसक्ति रखता ही हो। आप स्वयं संसारके कितने कम लोगोंसे परिचित हैं। पृथ्वीकी जनसंख्या लगभग ढाई अरब है। इसमें-से कितनेको आप जानते हैं ? पृथ्वीकी बात जाने दीजिये, आप अपने नगर या जिलेके क्या आधे लोगोंको भी जानते हैं ? मार्गमें चलते, यात्रा करते जो लोग सामने पड़ते हैं, उनमें भी बहुत ही थोड़े होते हैं, जिनको हम जानते हैं। जिन्हें जानते ही नहीं, उनकी चर्चा क्या, जिन्हें जानते भी हैं, उनमें-से भी बहुत कमसे हमारी कोई आसक्ति है। शेषसे तो हम असङ्ग ही हैं।

जहाँ तक ईश्वरकी बात है, उसके लिए मनुष्य या एक छुद्र कीटमें कोई अन्तर है ? उसके लिए भी क्या कोई स्व या पर राष्ट्र है ? उसके तो अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड हैं। जबकि हमारे इस ब्रह्माण्डकी बात भी नहीं, हमारी पृथ्वीके एक मकानमें, सम्भवतः किसी एक घरमें ही इतने प्राणधारी हैं, ज़ितने पूरी पृथ्वीमें मनुष्य नहीं हैं। ईश्वरके लिए कितने जीव होंगे सृष्टिमें, यह गणना सम्भव नहीं है। असङ्ग है ईश्वर सबके प्रति सामान्य रूपसे। सब अपने कर्मोंके अनुसार जन्म-मरण पाते हैं और सुख-दुःख भोगते हैं।

ईश्वर सगुण है सृष्टिकी दृष्टिसे, यह निर्गुण ब्रह्मवादको भी स्वीकार है। सृष्टिका बाध करके ही ईश्वर ब्रह्म है, निर्गुण है और हम यहाँ सृष्टिके बाध होजानेके पश्चात्की स्थितिपर विचार नहीं कर रहे हैं। वह स्थिति विचारसे परे है। विचार या चर्चा कन्हाईकी।

कन्हाई असङ्ग तो है। इसमें तो वे गुण प्रतिफलित होते हैं, जो आप इसे देते हो, इसमें आरोपित करते हो। वैष्णवाचार्य जब कहते हैं— 'रक्षापेक्षामपेक्षते' तब इसका यही तो अर्थ होता है कि जो अपनी रक्षाकी ईश्वरसे अपेक्षा नहीं रखता, ईश्वर भी उसके प्रति निरपेक्ष है, असङ्ग है ?

दूसरोंकी बात क्यों करूँ, बाबा नन्दरायको अम्बिकावनमें रात्रिमें सोते समय अजगरने पकड़ लिया और निगलने लगा। वे चीखते-पुकारते रहे और अजगर उन्हें पैरकी ओरसे धीरे-धीरे निगलता रहा। कुशल यही है कि अजगरकी निगलनेकी गति बहुत मन्द है। वह एक कुत्ता या शृगाल भी कई घण्टोंमें निगल पाता है। यह भी कुशल ही थी कि बाबाको उसने चरणोंकी ओरसे मुखमें लिया था।

बाबा चिल्लाते रहे। गोप-गोपियाँ जाग गये। गोपियाँ रो सकती थीं; किन्तु गोप लाठियाँ और जलती लकड़ियाँ लेकर उस अजगरपर टूट पड़े। लगता है कि उनके पास वहाँ परशु या कुल्हाड़ा नहीं था। वहाँ वे सब शिवरात्रिका पूजन करने गये थे। अतः उनके पास अस्त्र-शस्त्र नहीं था। लाठियोंसे पीटनेपर, जलते उल्मुकोंसे जलाये जानेपर भी अजगर न मरा, न उसने बाबाको छोड़ा। वह चाहे जितना घायल हो गया हो, बाबाको उसने अपने पेटकी ओर खिसकाना बन्द नहीं किया। कमर तक नन्दबाबा उसके मुखमें चले गये।

कन्हाई कहाँ था उस समय ? वह नन्दगाँवमें नहीं था। यह भी बाबाके साथ गया था अम्बिकावन और वहीं सो रहा था। बाबा चिल्ला

रहे थे, गोप हल्ला कर रहे थे और कन्हाई खुर्राटे मारकर सो रहा था। इसको उसी दिन ऐसी नींद आनी थी ?

'कृष्ण ! कृष्ण ! यह अजगर मुझे निगल रहा है। दौड़, बचा मुझे !' अन्तमें व्याकुल होकर बाबाने पुकारा।

बाबाने पुकारा था। कोई दूसरा भी इस कन्हाईको पुकारता है तो इसकी नींद टूटे बिना नहीं रहती। बाबाके पुकारनेपर तो इसे जागकर दौड़ना ही था। यह पहुँच जाय तो विपत्ति टिकती है ? इसके चरणस्पर्शसे अजगरका उद्धार हो गया। लेकिन ध्यान देनेकी बात तो यह है कि जब तक बाबाने इसे ही नहीं पुकारा, यह समीप ही आनन्दसे सोता पड़ा रहा। अब आप इसे ससंग कहोगे या असंग ?

स्वभावसे कन्हाई असंग है, इसे प्रकट करनेको क्या यह पर्याप्त नहीं है कि यह ब्रजसे गया तो लौटनेका नाम ही नहीं लिया इसने ? प्रभासमें यादव परस्पर युद्ध करके कट मरे। वे सबके सब स्वजन थे। इसके स्वयंके भाई, पुत्र-पौत्र और क्या यह असमर्थ हो गया था उन्हें बचा लेनेमें ? यह भी कभी असमर्थ हुआ करता है ? लेकिन जब इसे पुकारा नहीं जाता, इससे सहायता नहीं माँगी जाती तो हस्तक्षेप करने इसके पद नहीं उठते। फिर वह कुरुक्षेत्रका रणाङ्गन हो या प्रभासकी संहार-स्थली।

कन्हाईको आकृष्ट करना पड़ता है। यह दूर कभी हुआ नहीं करता। इसके दूर या निकट होनेका कोई अर्थ नहीं है। कौरव-सभामें जब दुःशासनने द्रौपदीको नङ्गी करना चाहा; द्रौपदी एकवस्त्रा थी। अर्थात् उसके शरीरपर केवल साड़ी थी। दुःशासनको एक ही झटका देना था या और कुछ ? कितने क्षण लगने थे इसमें ? लेकिन द्रौपदीने हाथ उठाकर पुकार लिया—

'श्रीकृष्ण द्वारिकावासिन् पाहि पाहि....'

आप क्या सोचते हैं कि द्रौपदीको इतने शब्द भी बोलनेका समय मिला होगा ? लेकिन मनमें श्रीकृष्णसे रक्षा पानेका विचार उठा तो श्रीकृष्णको उसी क्षणार्धमें वस्त्रावतार लेनेमें रुकावट कहाँ थी।* कृष्ण अनन्त—अतः उनका वस्त्रावतार अनन्त। अकेला दुःशासन थककर हार गया, सब कौरव लग जाते, उनके सब सहायक लग जाते तो क्या कुछ दूसरा परिणाम होता ? अनन्तका अन्त भी क्या पाया जा सकता है ?

---

* पूरी कथा के लिए देखें 'पार्थ-सारथि'।

ग्राह-ग्रस्त गजेन्द्रने भी पुकारा था ऐसे ही आर्त होकर। श्रीहरिको उस समय गरुड़ भी मन्दगति लगे थे। कन्हाईको कोई पुकारे तो इसका कोई अर्थ नहीं कि वह कहाँ पुकारता है। देश और काल दोनों इसीमें कल्पित होते हैं। देश इसे दूर करनेमें समर्थ नहीं है।

कन्हाईसे असङ्ग रहकर जीव इसे असङ्ग बना देता है और जब यह असङ्ग रहता है—बना ही तो है असङ्ग असंख्य लोंगोंके लिए। मनुष्यका थोथा अहंकार—विज्ञानकी डींग चाहे जितनी कोई मार ले; किन्तु कितना दुर्बल, कितना असहाय-निरुपाय है मनुष्य। कोई इतना छुद्र कीटाणु या विषाणु जो शक्तिशाली सूक्ष्मवीक्षणसे भी कठिनाईसे देखा जा पाता है, अकल्पनीय गतिसे अपनी वंश-वृद्धि करता जाता है और पटापट मनुष्य मरते जाते हैं उसका आखेट बनकर। सहस्र-सहस्र सजातियोंकी बलि देकर यदि मनुष्य उस कीटाणु या विषाणुकी वंशवृद्धिपर नियन्त्रण पा ले तो यह कोई सफलतामें गणना करने और गर्व करनेकी बात है?

बाढ़, ज्वालामुखी, भूकम्प, अकाल—इन सब प्राकृतिक उपद्रवोंपर नियन्त्रण हो सकेगा? कब तक हो सकेगा, कोई अनुमान करके बतावेगा? यह सब तो भौतिक क्षेत्रकी बाधाएँ हैं। केवल शरीरको प्रभावित करने वाली बाधाएँ। शरीर वैसे भी मरणधर्मा है। लेकिन जो मरता नहीं, जन्मान्तरमें भी साथ जाता है, वह अन्तःकरण? अन्तःकरणके रोग तो जन्म-जन्ममें पीड़ा देनेको साथ ही लगे रहते हैं।

काम-क्रोध, लोभ-मोह, मद-मत्सर, राग-द्वेष, अहंकारादिके सम्मुख कितना असहाय है मनुष्य! इन सबसे सतत संघर्ष—ऐसा संघर्ष जो समाप्त होनेका नाम ही नहीं लेता। ये शत्रु ऐसे कि शत्रु भी हैं, यही समझनेमें बुद्धिको बहुत निर्मल होना पड़ता है। ऐसे शत्रु कि इनके आनेसे आधे क्षण पूर्व इनके आगमनका अनुमान भी करना सम्भव नहीं। कोई चर नहीं इनके विरुद्ध। मायाकी प्रबलतम सेना और एकाकी जीव। कन्हाई असङ्ग हो जाय तो कितना असहाय हो जाता है यह मानव।

●

जब अपना--

अपना कन्हाई, सचमुच अपना कन्हाई ही। कहनेको तो आप भी यही कहते हैं; किन्तु यह बात गलेसे ही उठती है। यदि यह हृदयसे उठती तो कन्हाई अपना हो चुका होता।

महाभारतका वर्णन है कि यक्षने युधिष्ठिरसे पूछा था—'आश्चर्य क्या है?'

धर्मराज युधिष्ठिरने उत्तर दिया—'सब लोग प्रतिदिन प्राणियोंको मृत्युमुखमें जाते देखते हैं; किन्तु इतनेपर भी अपने बने रहनेकी आशा--इच्छा करते हैं, इससे बड़ा आश्चर्य क्या होगा।'

हम आप देखते-जानते हैं कि आजके पुत्र कितने माता-पिताके भक्त हैं। भाई कैसे भाईका स्वत्व छीननेको उद्यत रहते हैं। माता पुत्रकी हत्या कर दे, यह साधारण घटना हो गयी है और पति-पत्नीका सम्बन्ध मात्र शारीरिक सम्बन्ध बनता जा रहा है। इतनेपर भी पारिवारिक आसक्ति छूटती नहीं है।

शरीरको लेकर ही परिवार है और शरीर कितना साथ देता है? जिस शरीरकी शक्ति, सौन्दर्यको लेकर मनुष्य गर्वसे सीधे नहीं देख पाता, वही शरीर अकस्मात् उसे दयनीय बना देता है। कौन-सा रोग किसे कब दबोच लेगा—कोई बता सकता है?

बहुत महत्त्व है प्रतिभाका, बुद्धिका; किन्तु सिरमें लगी एक साधारण चोट सब पढ़ा-लिखा बराबर कर देती है। क्या यह सिद्ध नहीं करता कि बुद्धि भी भौतिक तत्त्व ही है और यह भी चाहे जिस क्षण नष्ट होसकती है।

शरीर प्रतिक्षण परिवर्तित हो रहा है। जिसका परिवर्तन हम नहीं रोक सकते, वह हमारा कैसे हो सकता है? जब शरीर ही हमारा नहीं, तब शरीरका नाम और शरीरको लेकर जो सम्बन्ध बने हैं, वे हमारे हैं या होंगे?

जन्मसे पहिले और मरनेके पश्चात्की स्थितिके सम्बन्धमें आपने कभी सोचा है? कह सकते हैं कि यहाँ तक बुद्धि नहीं पहुँच पाती; किन्तु

क्या किसी माता या पिताको उस अजन्मे शिशुके लिए आपने शोक करते देखा है, जिसका माताके उदरमें आना तो हुआ हो ; किन्तु गर्भस्राव या गर्भपात हो गया हो ।

पशु-पक्षी भी अपने बच्चोंसे मोह करते हैं। बहुत अधिक स्नेह करते हैं ; किन्तु कब तक ? पीछे तो पहिचान रखनेकी भी परम्परा उनमें नहीं है। मनुष्यमें भी यही पाशविक मोह है जो स्वार्थका संयोग पाकर सुदृढ़ बन जाता है ।

आपने कम ही गलित कुष्ठके रोगीकी सेवा स्वजनों द्वारा होते देखी होगी। दीर्घ रोगी भार हो जाता है स्वजनोंपर और सब उसकी मृत्यु-कामना करने लगते हैं, इस सत्यसे आँख नहीं बन्द की जा सकती । इसलिए अपना कौन ? यह बात केवल मुखसे कहनेकी नहीं हैं, गम्भीरतापूर्वक विचार करनेकी है ।

भगवान ऋषभदेवने तो एक कसौटी ही दे दी है—

गुरुर्न स स्नात्स्वजनो न स स्यात्-
पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात् ।
दैवं न तत्स्मान्न पतिश्च स स्यात्
न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम् ॥ श्रीम. भा. ५.५.१८

वह गुरु गुरु नहीं है, वह स्वजन स्वजन नहीं है, वह पिता पिता नहीं है, वह माता माता नहीं है, वह देवता देवता नहीं है, और वह पति पति नहीं है जो समीप आयी मृत्युसे बचा न सके ।

आपको क्या लगता है कि संसारमें कोई भी किसीको मृत्युसे बचा सकता है ?

दूसरी ओर ईमानदारीसे आप अपने पिछले जीवनपर एक दृष्टि डालकर देखिये कि क्या एकाधिक बार आपको ऐसे संकटसे, जिससे बचनेकी कोई सम्भावना नहीं थी, किसी अज्ञात शक्तिने अचानक नहीं बचाया है ?

'केवल भगवान ही अपना है।' आस्तिक व्यक्ति अनेक बार कहता है ; किन्तु क्या सचमुच इसे मानता है ? यदि इसे मानता होता ···· ।

भगवान सर्वसमर्थ है या नहीं ? भगवान सदा सर्वत्र है या वह भी बीमार होगया अथवा छुट्टीपर चला गया ? भगवानको आपकी स्थितिका

पता है या उसकी सर्वज्ञता अब समाप्त हो गयी ? भगवान दयामय है या अब वह भी निष्ठुर अथवा स्वार्थी हो गया ?

भगवान सर्वसमर्थ है, सदा-सर्वत्र है, सर्वज्ञ है और दयामय है, तब आपको चिन्ता, भय, शोक क्यों होता है ? मेरी जेबमें भले एक पैसा न हो; किन्तु मेरे साथ कोई मालदार उदार मित्र हो तो मैं अपनी जेबकी बात क्यों सोचूँ ? मेरे साथ मेरा शिकारी मित्र भरी दुनाली लिये चल रहा हो तो वनमें जानेमें मुझे झिझक क्या ? मुझे बन्दूक पकड़ना आता हो या न आता हो, इसका कोई प्रभाव ?

मेरा अपना सम्बन्धी न्यायाधीश हो, तब भी मुझे चिन्ता होगी यदि उसके न्यायालयमें मुझपर कोई अभियोग हो। उसकी न्यायबुद्धि और निष्पक्षता प्रबुद्ध हो उठे तो ? लेकिन मेरा भगवान् न्यायाधीश बनना पसन्द ही नहीं करता। वह तो भक्त पक्षपाती है। भक्तवत्सल है वह।

इतनेपर भी जीवन भय, चिन्ता, शोकसे ग्रस्त है। ऐसा क्यों है ? ऐसा इसलिए है कि हमने भगवानको अपनेसे बहुत दूर कर दिया है। 'केवल भगवान् ही अपने हैं' यह मुखसे कहनेकी बात रह गयी है।

भगवान् अनन्त शक्ति। भगवान् अतुलनीय ऐश्वर्यशाली। भगवान् अवाङ्मनसगोचर। भगवान् सर्वेश्वरेश्वर। भगवान् सबसे बड़े, सबके शासक। अब जो एक चपरासीसे डर जाता है, एक दारोगासे बोलते झिझकता है, वह ऐसे-इतने बड़े भगवान्से आत्मीयता स्थापित कर सकेगा ? वह जब कहता है—'केवल भगवान ही अपने' तब भी यह बात उसके गलेसे ऊपर ही रहती है।

आप बहुत बड़े हो सकते हैं। सम्भव है, आप चपरासी या दारोगासे न डरते हों; किन्तु कोई है जिससे आप डरते हैं ? ऐसे सहस्रों होंगे जिनसे आप मिलने-बोलनेमें झिझकें, भय करें। जब आपके मनमें मनुष्योंसे ही झिझक है, भगवान तो बहुत बड़ा है।

मान लेते हैं कि कुछ ऐसे लोग भी निकल आवेंगे जो किसी मनुष्यसे न झिझकते हों; किन्तु उनके सम्मुख कोई विकटाकार प्रेत प्रकट हो जाय तो ? कोई भैरव या भयंकराकृति देवता ही प्रकट हो जाय ....।

'सचाई यह है कि अचानक कोई आकृति सामने प्रकट हो जाय तो मैं काँप उठूँगा। रोमाञ्च हो जायगा। सम्भव है, पसीना छूटने लगे और

ठीकसे बोला न जाय।' एक परिचित साहसी मित्रने एक बार कहा—'भले वह आकृति सौम्य हो। वह सौम्य हो तो कुछ क्षण लगेंगे मुझे स्वस्थ होनेमें।'

इसीलिए भगवान्‌का साधारणीकरण हो जाता है भक्तिके पथमें। भगवान् बहुत दूरका कोई किम्भूत किमाकार न रहकर अपने जैसा साधारण और अपना हो जाता है। वह भले भगवान् ही बना रहे ; किन्तु उसकी भगवत्ता गौण हो जाती है। मुख्य रह जाती है उसकी आत्मीयता।

यह कन्हाई साधारण गोपकुमार है। यह तो राजा-महाराजा या कोई पदाधिकारी भी नहीं कि इससे संकोच करना पडे। इसे अपनानेमें भला कठिनाई क्या। यह तो सबका अपना, सबसे घुलमिल जानेको सदा समुत्सुक। सबके निकट।

भक्तिकी बात भक्तोंके लिए रहने दीजिये। भक्ति तो बड़े-बड़े ऋषि-मुनियोंको भी सुदुर्लभ रही है। आपके हृदयमें भक्ति न सही, आत्मीयता है। आप कितनोंको अपना कहते-मानते हैं। अनेकोंको बहुत सच्चाईसे अपना मानते हैं। आवश्यक तो नहीं है कि आप जिनको अपना मानते हैं उनसे आपका रक्तका सम्बन्ध ही हो। अतः इस आत्मीयताके घेरेमें कन्हाईको भी आजाने दीजिये। इसे भी अपना बना लीजिये।

कन्हाई जब अपना बना लिया जाता है—यदि सच्चाईसे अपना बनाया गया है तो स्वयं बहुत कुछ कर लेता है। इसका स्वभाव पैर फैलाते जानेका है। तब यह अकेला ही आपका बन जाता है। भले धीरे-धीरे बने ; किन्तु प्रतिद्वन्द्वी इसे सहन नहीं है।

कन्हाई अपना हुआ और फिर भय, चिन्ता, शोक? इन सबको आप अँगूठा दिखा सकते हैं।



जब अपनाता है—

कन्हाईको अपना बना लेना जीवनकी कृतकृत्यता है। समस्त पौरुषकी परम सफलता है कि श्रीव्रजेन्द्रनन्दनमें आत्मीयत्व स्थापित हो जाय; किन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कन्हाई ही किसीको अपना बना लेता है। क्यों ऐसा होता है, कैसे कहा जा सकता है। व्रजराजकुमार कब क्या करेगा, यह तो सृष्टिकर्त्ता भी समझ नहीं पाते। यह गोपकुमार किसी नियम-बन्धनको मानता होता, तब 'क्यों' का कोई उत्तर हो सकता था। लेकिन यह तो सर्वतन्त्र स्वतन्त्र है।

समर्पण कब पूरा होता है?

तब जब आपने दिया और जिसे दिया, उसने स्वीकार कर लिया। यदि उसने स्वीकार नहीं किया तो समर्पण पूरा हुआ?

पूरा हो जाता है, यदि अत्यन्त दृढ़ निष्ठा हो। समर्पण यदि सच्चा है तो अपने आपमें पूर्ण है। उसे स्वीकृतिकी अपेक्षा नहीं है। वह तो अस्वीकृतिके अनन्तर भी परिपूर्ण रहता है।

आपको यह बात विचित्र लगती है? एकलव्यको शिष्य बनाना द्रोणाचार्यने अस्वीकार कर दिया था; किन्तु उस निषादकुमारकी निष्ठा सुदृढ़ थी। द्रोणाचार्यकी अस्वीकृति काम आयी? आचार्य द्रोणने जब उससे गुरु-दक्षिणा माँगी, उसे शिष्य स्वीकार करके मांगी या नहीं? द्रोणने क्या माँगा, यह भिन्न बात; किन्तु आचार्यकी अस्वीकृतिपर उस शिष्यकी निष्ठाविजयिनी हुई या नहीं?

कठिन काम है। सब एकलव्य नहीं हो सकते। एकलव्य जैसी अलौकिक निष्ठा अत्यन्त दुर्लभ है। यह बात ठीक है, परन्तु जहाँ तक कन्हाईकी बात है, ऐसी निष्ठाकी आवश्यकता नहीं है। श्यामको अस्वीकार करना नहीं आता। अतः आपके समर्पणमें यदि ईमानदारी है तो वह पहिलेसे स्वीकृत है।

कन्हाईको तो शाब्दिक या औपचारिक समर्पण भी आवश्यक नहीं नहीं होता। यह तो गोपियोंका दधि-नवनीत छीन-झपटकर, चोरी करके भी भोग लगानेका अभ्यासी है। अवश्य ही हृदयमें लालसा होनी चाहिये कि यह स्वीकार कर ले।

शाब्दिक समर्पणका तो कुछ भी अर्थ नहीं होता। यह तो शिष्टाचार हैं कि पूछनेपर लोग कह देते हैं—' आपका ही मकान है।' अथवा 'यह आपका ही बालक है।' इसका यह अर्थ नहीं होता कि आप उस मकानमें-। कुछ ले जानेका स्वत्व पा गये अथवा उस बालकको आप दो थप्पड़ मारेंगे तो उसके पिताको क्रोध नहीं आवेगा।

कन्हाई तो गोपकुमार है, वन-वन गायें चरानेवाला। इसेकहाँ ऐसी शिष्टता आती है। ऐसी शाब्दिक शिष्टताकी ताली बजाकर यह उपहास करे तो बुरा माननेकी बात नहीं है। इससे आप आशा नहीं कर सकते कि हाथ जोड़कर, आँख बन्द करके आप जो रटे-रटाये शब्द बोल जाते हैं, उसे स्वीकार कर लेगा। यह स्वीकार तो करता है, बिना बोले भी स्वीकार करता है यदि मनमें भाव ठीक हो।

मनमें भाव भी नहीं और शब्द भी नहीं। देनेका संकल्प भी नहीं। इतनेपर भी यह श्रीव्रजनवयुवराज कभी किसीको अपना बना लेता है। बलात् किसीको अधिकृत कर लेता है। ऐसा ही अनुभव है श्रीमधुसूदन सरस्वतीजी महाराजका। वे कहते हैं—

अद्वैत वीथी पथिकैरुपास्याः
स्वाराज्य सिंहासन लब्धदीक्षा।
शठेन केनापि वयं हठेन,
दासीकृता गोपवधूविठेन॥

'अद्वैत सिद्धि' जैसे ग्रन्थका रचयिता यदि अपनेको अद्वैत-पथके पथिकोंका उपास कहता है तो उसके गर्वको अनुचित नहीं कहा जा सकता। यह तो उसकी अनुभूति है कि उसने स्वाराज्य-सिंहासनपर दीक्षा प्राप्त कर ली है अर्थात् अविद्याको ध्वस्त करके आत्मतत्त्वका अपरोक्ष साक्षात्कार प्राप्त कर लिया है। लेकिन एक गोपवधू नायक है और वह शठ है—दुष्ट है। उसने ऐसे महात्माको हठपूर्वक—बलात् अपना दास बना लिया है।

कुछ ऐसी ही अनुभूति 'कृष्णकर्णामृत' के कर्ताकी भी है—

'यावन्निरञ्जनमजं पुरुषं जरन्तं
संचिन्तयामि मनसा जगति स्फुरन्तम्।
तावद् बलाद् स्फुरति हंत हृदन्तरे मे
गोपस्य कोऽपि शिशुरञ्जनपुञ्ज मञ्जुः।

बैठे थे ध्यान करने निर्गुण-निर्विकार परमतत्त्वका ; किन्तु जब तक उस निरञ्जन-निर्विकार, अजन्मा, पुराण-पुरुषको मनसे विश्वरूपमें भासित होते चिन्तन कर सकें, उसके पूर्व ही आश्चर्यकी बात है कि हमारे हृदयमें बलपूर्वक अञ्जनके समान काला, पर परमसुन्दर कोई गोपशिशु स्फुरित होने लगता है।

यह कन्हाई केवल मधुसूदन सरस्वती या विल्वमंगल जैसे महात्माओंको ही बलपूर्वक अपनाता हो ; ऐसा भी कोई नियम नहीं है। आपको कुब्जाका स्मरण है ? वह कोई महात्मा थी या भजन-पूजन करने वाली थी ? वह दासी भी थी तो कंसकी और कंसकी ही सेवामें लगी थी। वह कहाँ इन मयूर-मुकुटीको समर्पण करने आयी थी, वह तो मथुराके राजपथसे अंगराग लेकर कंसकी सेवामें जा रही थी। उस कुबड़ीको बलात् रोककर ही इस नटखटने अपनाया या नहीं ?

अपनी ओरसे कन्हाई अपनाता तो है और किसे अपनावेगा, यह कोई नियम नहीं है। जिसे अपनाना चाहेगा, वह चाहे या न चाहे, कितना भी छटपटाये, छूट नहीं सकता। पकड़कर छोड़ना कृष्णको आता नहीं। आप हाथ बढ़ाओ तो पकड़ ही लेगा। बढ़े हाथकी उपेक्षा नहीं करता; किन्तु कभी-कभी सिकोड़े गये हाथको भी बलपूर्वक पकड़कर खींच लेता है। जैसे सुदामाकी बगलसे चिउड़ोंकी पोटली खींच ली थी।

'ब्रह्मन् यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम्।' श्रीम०भा० ६.२२.२४

कन्हाई अपनी ओरसे किसीको अपनाता है तो क्या करता है ? स्वयं कह रहा है—'जिसे अनुग्रहपूर्वक मैं अपनाता हूँ, उसके धनका नाश कर देता हूँ।

वृत्रासुरने इससे भी स्पष्ट परिभाषा कर दी इन देवताके अनुग्रहकी—

त्रैवर्गिकायासविघातमस्मत्,
पतिर्विधत्ते पुरुषस्य शक्र।
ततोऽनुमेयो भगवत्प्रसादो,
यो दुर्लभोऽकिंचनगोचरोऽन्यैः ॥ श्रीम०भा० ६.११.२३

इन्द्र ! अपने निजजन जब अर्थ, काम और धर्मकी प्राप्तिके लिए प्रयत्न करने लगते हैं तो उनके आयासको ये दयामय निष्फल कर देते हैं। इस विफलतासे इन भगवानकी कृपाका अनुमान कर लेना चाहिये।

एक श्रीमद्भागवत्के प्रकाण्ड मर्मज्ञ एवं परिचित व्याख्याता कहते हैं—'श्रीकृष्ण तब कोई उत्पात खड़ा करते हैं, जब ब्रजके लोग उनको छोड़कर कहीं और देखने लगते हैं।'

कन्हाईको सहन नहीं है कि जो उसका है, वह और भी किसीका बना रहे। वह और भी कहीं संसक्त हो। वह और भी कुछ चाहने लगे। अतः यदि वह इनमें-से कुछ भी करने लगता है या करना चाहता है तो यह ऊधमी यशोदा-तनय उपद्रव तो करेगा ही।

यह उपद्रव तब भी करता है जब आप इसे हाथ पकड़ाकर फिर खींचने या कुछ ढीला करनेका मन करते हो। जब यह स्वयं हाथ पकड़ ले तब इसकी पकड़ स्वाभाविक ही अधिक कड़ी होगी। तब यह यदि अधिक उपद्रव करता है तो क्या आश्चर्य।

आपको संसारके भोग नहीं मिले। योग्य होकर भी आप लौकिक सफलता अर्जित नहीं कर सके। आप स्वजन-सम्बन्धियोंसे रहित हैं या उनके द्वारा उपेक्षित हैं। जिनकी आपने सेवा की, जिनका उपकार किया, उनमें आपके प्रति कृतज्ञता नहीं है। वे आपके विरोधी बन गये। आपको वे हानि पहुँचानेमें तत्पर हैं। यदि यह सब सचमुच है तो आप भाग्यवान् हैं। आपका अभाग्य इतना हो कि अभी आपने यह नहीं समझा कि यह नटखट नन्दकुमार आपको अपना चुका है। यह सब असफलता और अभाव, विपत्ति और विरोध इसीका उत्पात है। कोई दूसरा इसमें कारण नहीं है।

आप जितना छटपटाओगे, आपका कष्ट बढ़ेगा। यह तो हँसेगा और पकड़ कठिन करता जायगा। एक बार इसकी ओर देखो और संसारकी ओरसे उपरत हो जाओ। जो जाता हो—चला जाय। जिसे बिगड़ना हो, बिगड़ जाय। जो नष्ट हो रहा है—अभी हो जाय। यह उपेक्षा-निरपेक्षता आने दो और देखो कि यह हँसकर स्वयं हृदयमें आ जाता है या नहीं।

कन्हाई अपना, तो आनन्द-ज्ञान अपना। अभाव और आपत्तियाँ स्वयं अपना सिर पीटें। लेकिन आप कन्हाईको ओर देखो तो सही।

●●

जब दर्शन देता है--

अनेक लोग जानते हैं कि भगवानका एक नाम त्रियुग है। त्रियुग अर्थात् सतयुग, त्रेता और द्वापर। लेकिन त्रियुगका अर्थ यह नहीं है कि इन तीन युगोंमें ही भगवद्दर्शन होता है, कलियुगमें होता ही नहीं। त्रियुगका अर्थ है कि अवतार सतयुग, त्रेता, द्वापरमें ही होता है। इन्हीं तीनों युगोंमें श्रीहरि अवतार धारण करके पृथ्वीपर अपनी सन्निधि देते हैं। कलियुगमें अवतार नहीं हुआ करता। वैसे मैं जानता हूँ कि आजकल लगभग तीन सौ लोग स्वयं या उनके शिष्य उन्हें अवतार घोषित करते हैं। कलियुगके अन्तमें कल्कि अवतार होगा; किन्तु कल्कि तो नवीन सतयुगका प्रवर्तन करने वाले हैं।

अवतार भले न होता हो, कलियुगमें प्राकट्य होता है। यह प्राकट्य सर्वसाधारणके लिए होता तो उसे अवतार ही कहते। यह किसी व्यक्ति विशेषके लिए होता है। वही उसका दर्शन एवं सान्निध्य प्राप्त कर सकता है, इसीलिए उसे प्राकट्य कहते हैं। कलियुगमें इस प्रकार सहस्रों लोगोंके लिए प्राकट्य हुआ है और अब भी होता है। इस प्रकार भगवद्दर्शन सदा हुआ करेगा।

कलौ दशसहस्राणि हरिस्त्यजति मेदिनीम्।

कलियुगके दस सहस्र वर्ष बीत जानेपर श्रीहरि पृथ्वीका परित्याग कर देते हैं, यह पुराण वाक्य यह नहीं कहता कि उसके पश्चात् किसीको भगवद्दर्शन होता ही नहीं। इस वाक्यका तात्पर्य है कि कलियुगके दस हजार वर्ष बीत जानेपर पृथ्वीपर वैष्णव-मन्दिर नहीं रह जाते। तीर्थस्थलोंमें और दिव्य देशोंमें जो अर्चा-विग्रह हैं, उनका लोप हो जाता है।

'क्या इस युगमें भी भगवद्दर्शन सम्भव है?' यह प्रश्न एक जिज्ञासुने एक प्रसिद्ध अद्वैत निष्ठा वाले विद्वानसे किया।

'जो अन्तःकरणमें आता है, वह प्रत्यक्ष भी आ सकता है।' यह उत्तर दिया उन विद्वानने।

यह उत्तर क्या ठीक उत्तर है? अन्तःकरणमें तो भावना-कल्पना आती है। वह आवेगयुक्त हो तो वह प्रत्यक्ष दीखने लग सकती है। जैसे न

होनेपर भी भयके कारण भूत दीखने लगता है। लेकिन इस प्रकार अपना मन ही यदि कोई आकृति प्रकट करके दिखला दे तो वह भगवद्दर्शन हुआ ?

किसी भी आकारका—ज्योतिर्मय आकारका दीख जाना ही भगवद्दर्शन नहीं है। आप इस सत्यको मत भूलिये कि लंकाके युद्धमें रावणने श्रीरामकी उपस्थितिमें मायासे सैकड़ों राम प्रकट कर दिये थे और न केवल साधारण वानरोंको, भक्ताग्रगण्य हनुमानजी तकको उन आकृतियोंमें भ्रम हो गया था।

कोई मेस्मराइज्मका अच्छा अभ्यासी किसीको भी कोई आकृति दिखला दे सकता है। देवता, गन्धर्व ही नहीं, प्रेतोंमें भी ऐसे समर्थ होते हैं जो कोई आकार धारण कर सकते हैं। सबसे बड़ा भूत अपना मन है। यह भी कोई आकार प्रकट कर सकता है। आत्मसम्मोहन (सेल्फ हिप्नोटिज्म) भी एक अवस्था है। अतः आकार-दर्शन ही भगवद्दर्शन है, इस भ्रमको मनसे निकाल देना ही सबसे अधिक सुरक्षित है।

कन्हाई दर्शन देता है। ऊपरकी सब बातें सच होनेपर भी यह परम सत्य है कि कन्हाई दर्शन देता है—सचमुच दर्शन देता है। बिना कि[illegible]सी भ्रमके दर्शन देता है और भ्रमसे पृथक इसे पहिचाना जा सकता है।

कन्हाई कैसे दर्शन देता है ? इसका एक निश्चित उत्तर नहीं [illegible] है। दर्शन देनेवाला सर्वसमर्थ है और मौजी है। अतः उसपर निर्भर है कि[illegible] वह कैसे दर्शन देगा। अवश्य कुछ अवस्थाएँ इसकी सम्भव हैं।

१. स्वप्न दर्शन—साधारण स्वप्नकी अपेक्षा आप विशेष स्वप्नको पृथक कर सकते हैं।

स्वप्न मनके संस्कारसे, चिन्तनसे हुआ या सचमुच स्वप्नमें भगवान्‌ने दर्शन दिया, यह कैसे समझा जाय ?

यह प्रश्न जागृतके दर्शनके सम्बन्धमें भी उठना चाहिये, यही तो मैं कह रहा हूँ। इसका निर्णय कैसे हो, यह बात अन्तमें स्पष्ट कर लेंगे। यहाँ इतना ही कि प्रकाश-विशेष, आनन्द-विशेष और उस दिन कोई ऐसा चिन्तन नहीं था, यह निर्णयके लिए बहुत दुर्बल कसौटी है, इसमें भ्रम सम्भव है। लेकिन यह भी सत्य है कि स्वप्नमें या आगे बतलाये ढंगके दर्शन मनकी भगवनोन्मुखताकी प्रगाढ़ता प्रकट करते हैं। यह उत्तम स्थिति है। इससे लगे स्नेहकी प्रेरणा लेनी चाहिए।

२. ध्यानमें दर्शन--जागते समय ध्यान करने बैठे हैं या नहीं भी करने बैठे हैं तो भी भीतर सहसा भगवन्मूर्ति प्रकट हो जाती है। अनन्त आनन्द, अपार प्रकाश और अनिर्वचनीय स्थिति। इसीका वर्णन देवर्षि नारदने किया—

प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः।
आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि ॥ श्रीम. भा. १. ६. ३४

३. तन्द्रामें- ठीक शब्द नहीं हैं इस अवस्थाके लिए, अतः तन्द्रा शब्दका उपयोग कर रहा हूँ। निद्रा टूट चुकी है। इतने सावधान हो गये हैं कि बाहरके सब शब्द सुन रहे हैं। लेकिन नेत्र खुले नहीं हैं - खुलते नहीं हैं। शरीरका कोई अङ्ग हिलाना भी चाहें तो नहीं हिलता। प्रत्यक्षके समान, खुले नेत्रोंसे देख रहे हों इस प्रकार भगवानका दर्शन हो रहा है।

४. प्रत्यक्ष दर्शन--जागते हुए खुले नेत्रोंसे भगवानका दर्शन हो रहा है।

इन चारों ही अवस्थाओंके भी भेद होते हैं और ये भेद चारों अवस्थाओंमें समान रूपसे हो सकते हैं—

१. केवल दर्शन--अर्थात् भगवान कुछ क्षणको प्रकट हुए और अदृश्य हो गये। उस समय दर्शन करने वालेमें स्तब्धी भाव हो गया। वह न बोल सका, न हिल सका।

२. संलाप--दर्शन होनेपर भक्तने भी कुछ कहा—स्तुति भी की हो सकती है। भगवान्ने भी कुछ कहा। इसमें वरदान देनेकी बात भी आ जाती है।

३. स्पर्श—भगवान्के श्रीअंगका स्पर्श भी प्राप्त हुआ। भले उनके चरणोंका ही स्पर्श मिला हो या उन्होंने मस्तकपर हाथ रखा हो।

४. क्रीड़ा- केवल दर्शन, संलाप और स्पर्श तक ही बात नहीं रही। भगवान्के साथ कुछ क्रीड़ा भी हुई। यह क्रीड़ा अपने भावके अनुसार ही होगी। दास्यभावका भक्त सेवा करेगा।

इन सब अवस्थाओंके कुछ चिह्न, कुछ उपहार इन अवस्थाओंकी समाप्तिके पश्चात् भी बचे रह सकते हैं। जैसे कोई पुष्प, माला या चन्दन समीप रह जाय। स्वप्न-दर्शनके बाद भी ये चिह्न बचे रह सकते हैं। लेकिन इन चिह्नोंका बचा रहना यह प्रमाण नहीं है कि दर्शन भगवानका ही हुआ था। देवता, प्रेतादि भी ऐसे चिह्न दे जा सकते हैं। कुछ चमत्कार दिखाने वाले लोग विश्वास दृढ़ करनेके लिए भी ऐसे चमत्कार प्रदर्शित करते हैं।

भगवान्‌का दर्शन भी हुआ, अनन्त प्रकाश दीखा और मनमें अद्‌भुत आनन्द भी है और भगवान्‌का दिया प्रसाद भी पास है, इतनेपर भी यह भ्रम है ?

इतनेपर भी यह भ्रम हो सकता है। इसीलिए बहुत अधिक सावधानी अपेक्षित है। आप जितना अधिक मूल्यवान रत्न लेने जाते हैं, ठगे जानेकी उतनी अधिक सम्भावना रहती है या नहीं ?

कन्हाई दर्शन देता है। अनेक बार ऐसे सामान्य रूपमें दर्शन देता है कि दर्शन करने वाला पहिचान ही नहीं पाता। कहते हैं कि गोस्वामी तुलसीदासजीके सम्मुखसे घोड़ेपर बैठे श्रीराम-लक्ष्मण निकल गये, पर गोस्वामीजीने उन्हें केवल राजकुमार समझा। हनुमानजीने पीछे उन्हें सावधान किया।

कन्हाई नटखट है। यह दर्शन देकर भी पहिचानमें न आवे, यह बहुत साधारण बात है। लेकिन एक पक्की कसौटी है और आप उसे ध्यानमें रखें तो कभी भ्रममें नहीं पड़ेंगे। वह कसौटी है कि यदि भगवानका दर्शन हुआ तो अविद्याका नाश हो गया। सूर्य भी उगे और रात्रि भी बनी रहे तो वह सूर्य सूर्य होगा ? कन्हाई आवेगा और अविद्या टिकी रहेगी ? अविद्या एक बार मिटकर फिर नहीं आती। जैसे आपको कोई भाषा नहीं आती, उसे पढ़ लिया तो उसका अज्ञान सदाको मिट गया।

अविद्या मिट गयी, इसकी पहिचान ?

अविद्या है 'मैं-मेरा' का भाव। अविद्या मिट गयी तो देहासक्तिकी जड़ कट गयी। न देहका मोह रहा, न लोकेषणा बची। परिवारादिकी आसक्ति तो बचेगी कहाँसे। लोभ और मोहका सर्वथा उन्मूलन हो गया। *

जब कन्हाई दर्शन देता है तब कन्हाई ही बच रहता है। इसीका प्रेम शेष रह जाता है। मैं-मेरा कुछ बचा नहीं रह जाता। भले यह स्वप्नमें ही दर्शन दे ; किन्तु यह दर्शन देगा सचमुच तो अविद्या और उसका परिवार बचा नहीं रहेगा।



* यहाँ यह स्पष्ट कर देना है कि अवतार कालमें सब दर्शन करने वालोंकी अविद्या नष्ट नहीं होती। अवतार रूप तो 'योगमाया समावृत' रहता है ; किन्तु सामान्य कालमें भगवान दर्शन दें तो अधिकारीको ही देंगे, अत: उसमें अविद्या नहीं टिक सकती।

जब जीवन बनता है—

अपने आप स्वयं कन्हाई गोपियोंके सम्बन्धमें कहता है—

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः ।

श्रीम० भा० १०.४६.४

उनका मन मैं हूँ। उनका प्राण मैं हूँ। मेरे लिए ही उन्होंने अपनी सब शारीरिक क्रियाएँ अर्पित कर रखी हैं। अर्थात् गोपियोंमें न अपना मन है, न प्राण है। उनके भीतर मन बनकर मैं संकल्प-विकल्प करता हूँ। उनके भीतर श्वास-प्रश्वास मैं बना हूँ। वे स्नान-भोजन आदि भी मेरे निमित्त करती हैं; क्योंकि अपना शरीर वे मेरा मानती हैं, अतः उसे बचाये-सजाये रखनेमें लगती हैं।

इसीलिए जब देवर्षि नारदजीको अपने भक्ति-दर्शनमें प्रेमका उदाहरण देना हुआ तो कह दिया—

यथा व्रजगोपिकानाम् ॥२१॥

कन्हाई दर्शन देता है, इसका बहुत अधिक महत्त्व नहीं है। दर्शन तो इसके दुर्योधन और उसके सब सङ्गी साथियोंको हुए ही। महत्त्व इसका है कि यह जीवनमें आता है या नहीं। एक क्षणको दर्शन हुए तो, और न हुए तो; किन्तु आना चाहिये इसे जीवनमें। यह जीवनमें जीवनका एक कोई अंश बनकर आवेगा, इसकी आशा मत कीजिये। जैसे आपके परिवारके बहुत-से सदस्य हैं, आपके बहुत-से मित्र हैं, सब आपके जीवनके अंश हैं। सबपर आपका ममत्व है। समयपर सबका चिन्तन आप कर लेते हैं और सबके लिए अवसरपर त्याग करने, कष्ट उठाने को उद्यत हैं, वैसे ही कन्हाई भी आपके जीवनमें कोई एक होकर, कोई अंश बनकर आजायगा, इसकी कोई सम्भावना नहीं है।

कृष्ण अंश नहीं बना करता। यह अंशी है और अंशी ही रहता है। अधूरा लेना हो तो दूर ही खड़ा रहेगा। इसे घर बुलाना हो तो कहना पड़ेगा—'श्रीव्रजराजकुमार! आप पधारिये! अबसे यह घर आपका। बसाइये या उजाड़िये। मुझे अब यह घर नहीं चाहिये। मुझे चाहिये आपके श्रीचरण।'

कन्हाई जीवनमें आवेगा तो जीवन बनकर आवेगा। तब पूरा जीवन ही कृष्णके लिए, कृष्णमय बनकर रहेगा। तब न संसार—न संसारके सम्बन्ध। न मानापमान, न पद-प्रतिष्ठा। तब अपना अपने लिए तो कुछ रह नहीं जाता।

तब न भोग रहता, न त्याग। न राग, न विराग। तब केवल कृष्ण रह जाता है। तब रह जाती है कन्हाई की रुचि, इस श्यामसुन्दरकी इच्छा। इसको सन्तुष्ट, सुप्रसन्न देखनेकी कामना और प्रयत्न।

गोपियाँ कोई गृहत्यागी महात्मा थीं? वे घर-द्वार छोड़कर वनमें तप करने जा बसतीं तो मोहनको माखन कौन खिलाता। कौन इस श्यामसुन्दरके लिए गोदोहन करता, दही जमाता, दधि-मन्थन करके नवनीत सहेजता। गोपियाँ यदि अपने पादचुम्बी सघन सुकुमार केशोंको जटा बनालें और वस्त्राभरण त्यागकर वल्कल पहिनें तो उन्हें देखकर कन्हाईके कमलदल विशाल लोचन खिलेंगे या अश्रुमोचन करेंगे?

कन्हाई मथुरा चला गया व्रजसे। पूरे सौ वर्षका वियोग; किन्तु एक भी गोप या गोपकुमार तपोवन नहीं गया। एक भी मलिन वस्त्र नहीं पहिनता था। कोई न तो गायोंकी ओरसे दो पलको उदासीन हुआ और न अपने घर-शरीरकी ओरसे। क्योंकि कन्हाई कभी भी आसकता है, यह आशा लगी थी और आकर अपनी गायोंको, अपने सखाओंको, स्वजनोंको देखेगा। वह परम स्नेहमय इनमें किसीको मलिन, असज्जित देखकर प्रसन्न होगा? उसके मुखपर उदासी नहीं आवेगी? कन्हाईका कमलमुख किञ्चित् भी म्लान हो, यह देखा जा सकेगा?

कन्हाई जब जीवन बनता है, व्यक्तिकी विचित्र दशा होजाती है। यह नटखट कभी एक समान तो रहता नहीं। कभी लगता है कि साथ है और कभी लगता है कि युगोंसे वियुक्त है। कभी सम्मुख रहता है और कभी छिप जाता है। लेकिन जीवन तो बना सो बना। यह नहीं हो सकता कि कन्हाई एक बार जीवन बन जाय और फिर जीवन बहिर्मुख होजाय, संसारी होजाय।

कन्हाई साथ रहता है, मिला रहता है, तब पता ही नहीं लगने देता कि इसमें कुछ ऐश्वर्य भी है। संयोगमें इसका ऐश्वर्य कभी स्मरण नहीं आता। ईश्वर-महेश्वर होना तो दूर, यह सशक्त और बहुत बुद्धिमान भी नहीं लगता। यह अत्यन्त भोला, सीमातीत सुकुमार, बहुत दुर्बल, केवल स्नेह पाने योग्य है। इसे तो नेत्रोंकी पुतलीसे भी अधिक सावधानीसे सम्हाले

रहना है। इससे श्रम सहा नहीं जाता और दौड़े-कूदे बिना मानेगा नहीं। न आतप सह सकता, न शीत और चपल इतना कि पूछिये मत। खट्टे-मीठे, कच्चे-पके फलोंकी इसे पहिचान नहीं और चाहे जो मुखमें डाल लेना स्वभाव। पेड़पर चढ़ने लगेगा, यमुनामें कूद जायगा। इसे पल-पलपर सम्हालना पड़ता है। इसे तो यह भी पता नहीं कि किन पुष्पोंमें काँटे या कीट हो सकते हैं। यह पुष्पके समान ही वृश्चिक भी पकड़नेको हाथ बढ़ा दे सकता है।

कन्हाई साथ नहीं रहता – छिप जाता है या वियुक्त होता है तब ? तब तो लगता ही नहीं कि सृष्टिमें कोई इससे भी महान् या इसके समान दूसरी कोई सत्ता है। कोई ऐसा कार्य नहीं जो कन्हाई न कर सके, ऐसा लगता हो। कन्हाईसे ही जैसे बुद्धिकी देवी प्रकाश पाती हो।

कोई संकट आजाय—किसी संकटके आनेकी सम्भावना ही हो तो इस कन्हाईके अतिरिक्त कोई स्मरण ही नहीं आता। सब पुकारने लगते है—'कृष्ण ! श्यामसुन्दर !' कोई नहीं सोचता कि सुकुमार, भोला, नन्हा कन्हाई भला क्या करेगा। लेकिन कन्हाई है कि ऐसे अवसरपर किसीकी आर्तपुकार अनसुनी नहीं कर पाता। काम सबका कर देता है और ऐसा बना रहता है कि जैसे इसने कुछ किया ही नहीं।

सुदामाको श्रीकृष्णने जब द्वारिकासे विदा किया, उनकी उसी फटी-मैली धोतीमें विदा किया। जो पीताम्बर पहिनाया था, वह भी साथ नहीं ले जाने दिया। उसके लिए भी लोभी बन गये – 'यह मेरा उत्तरीय रहेगा।'

द्वारिकामें कोई नवीन स्वभाव नहीं बना था। व्रजमें जब कालियके ह्रदसे निकले, गोपकुमारोंसे बोले – 'सर्प बहुत दयालु और बलवान होता है। वह तो मुझे फणोंपर उठाये और सम्हाले रहा। व्यर्थमें लोग उसे अपयश देते थे।'

सात दिन-रात गोवर्धन उठाये रहे सबके सम्मुख और फिर गोपोंके मध्य ही कहने लगे – 'मैं तो फिर इस पर्वतको उठाये रह सकता हूँ। 'दाऊ दादा ! तू अपना लकुट लगाये रहेगा न ? मेरे सब सखा लाठियोंका सहारा दिये रहें तो पर्वत मैं फिर उठा लूँ।'

जैसे गिरिराज गोवर्धन गोपकुमारोंकी लाठियों और दाऊदादाके लकुटपर टिका था। गोपोंको, गोपियोंको इस नटखटने उसी समय असमञ्जसमें डाल दिया था। दावानल ही पीना पड़े तब सबको नेत्र बन्द

करनेको कहता है। सचमुच भव-दावानल पीते इसे कभी किसीने देखा है ? साथ ही क्या यह सत्य नहीं है कि असंख्य मुक्त पुरुषोंके लिए भव-दावानल इसीने पी लिया ?

कन्हाईका वियोग—यह वियोग तो सभीको प्राप्त है। इसके संयोगका अनुभव ही कभी किसी सौभाग्यशालीको होता है और जिसे यह अनुभव होता है—कन्हाई जीवन बन जाता है उसका। अब उसको जब इसके वियोगका अनुभव होता है—उसके अन्तर्दाह, व्यथा, व्याकुलताका वर्णन करनेके लिए शब्द नहीं हैं।

अत्यन्त दारुण; किन्तु फिर मधुर। विचित्र बात है कि इस मधुरिपुके लिए रुदन भी प्रिय लगता है। इसके लिए अश्रु आनेमें भी अलौकिक सुख है। भाग्यशाली हैं जिनके नेत्रोंमें इसके निमित्त अश्रु आते हैं। ये अश्रु तो गङ्गाजलके समान पावन हैं, हृदयका कलुष इनके बिना कहाँ प्रक्षालित हो पाता है।

कोई विष इतना तीक्ष्ण नहीं। कोई अग्नि इतनी दाहक नहीं। विश्वमें इतनी दारुण पीड़ाकी कल्पना भी नहीं। लेकिन इतना तीक्ष्ण, इतना दाहक, इतना दारुण होनेपर भी कन्हाईका वियोग वरेण्य बना रहता है। अद्भुत है यह रसराज कि इसकी वियोग-वह्निमें पककर भव महाभाव बन जाता है।

कन्हाई जब जीवन बनता है, जीवन जगत्पावन बन जाता है। उसका स्मरण-चिन्तन करके दूसरे अनन्तकाल तक अपनेको पवित्र करते रहते हैं। वह ज्योतिपुञ्ज हो उठता है। जो सम्पर्कमें आया, उसमें भी वही ज्योति अवतरित हो गयी। एक दीपकसे दूसरा दीपक जल गया।

जीवनमें कन्हाई आवे, कन्हाई जीवन बने—बस। जीवनकी पूर्णताकी आपकी जो भी कल्पना हो, बहुत पीछे छूट जाती है इससे। जीवन अपना हो तो पूर्ण या अपूर्ण बने। जीवन कन्हाई—कन्हाई कैसे रहेगा, क्या करेगा, कोई कैसे सोच सकता है। कन्हाई परिपूर्ण परमानन्द, अतः जीवनमें इसका वियोग भी जागेगा तो वह महावाड़वसे भी दाहक होकर भी परमानन्दसे पृथक् तो नहीं हो सकेगा।

—❀—

त्वमेवेदं सर्वम्—

आजकी बात नहीं है। बात है उस समयकी जब महामना पण्डित मदनमोहनमालवीयजीका जन्म भी नहीं हुआ था। तब इलाहाबाद इतना बड़ा नगर नहीं था। जहाँ आज भारती-भवन है, वहाँ मालवीयजीका मकान था और उसके समीप तक उजाड़ या जंगल था।

मैं पहिले बतला दूँ कि मुझे मानस सङ्घ, रामवनके दिवंगत संस्थापक बाबू श्रीशारदाप्रसादजीने यह घटना सुनायी थी। इलाहाबादमें उनके नानाजीका घर मालवीयजीके घरसे लगा था। इस पड़ोसके नाते वे मालवीयजीके पिताको नानाजी ही कहते थे। घटना उनकी भी देखी नहीं, सुनी ही है; क्योंकि देखने वाले तो उस समय मालवीयजीके माता-पिता ही वहाँ उपस्थित थे।

विन्ध्याटवीमें, विशेषकर रीवाके पूर्वी भागमें अब भी वनोंमें शेर पाये जाते हैं। उनकी संख्या तब इतनी अधिक थी कि अभी रीवाके पिछले महाराज गुलाबसिंहने सैकड़ों शेरोंका आखेट करके संसारमें सबसे अधिक शेर मारनेवालेका प्रतिमान ही स्थापित किया था।

वर्षा ऋतुमें जब गङ्गा बढ़ती थीं, अनेक बार गङ्गाके प्रवाहमें बहकर शेर इलाहाबाद या वाराणसी तक आ पहुँचते थे। मेरे बचपनमें ऐसे ही बहकर आये किसी शेरको वाराणसीके उस समयके प्रसिद्ध पहलवान बचऊसिंहने खाली हाथों पटककर कुहनियोंके आघातसे मार दिया था। उस समय यह घटना इतनी प्रसिद्ध हुई कि इसके गीत गाये जाने लगे थे।

इसी प्रकार वर्षामें गङ्गाकी बाढ़में कोई शेर बहकर आया होगा। वह प्रयाग पहुँचा। रात्रिका पहला ही प्रहर था। शेर मालवीयजीके मकानमें घुसा। उस समय मकानका द्वार खुला ही हुआ था।

'अरे, नृसिंह भगवान पधारे हैं!' मालवीयजीके पिताश्री केवल भागवतके कथावाचक ही नहीं थे। वे हृदयसे परम भागवत थे। शेरपर दृष्टि पड़ते ही पत्नीको पुकारा उन्होंने—'सती! पूजाकी सामग्री ले

पत्नीको पुकारकर वे दण्डवत् पृथ्वीमें शेरके सम्मुख प्रणाम करते लेट गये। शेर ठिठककर खड़ा हो गया। उसने केवल सिर झुकाकर इस अद्भुत ब्राह्मणका मस्तक सूँघा।

'प्रभु! आसन स्वीकार करें!' उठकर हाथ जोड़कर उन्होंने प्रार्थना की--'कंगाल ब्राह्मण हूँ। इस रात्रिमें पुष्प भी नहीं हैं। देखता हूँ कि आपकी अर्चाके लिए इस दीनके समीप क्या है।'

शेर चुपचाप जाकर पण्डितजीकी पूजाकी चौकीपर बैठ गया। पण्डितजीकी पत्नीने पतिकी पुकारपर झाँककर देखा और भयके मारे भीतर काँपने लगीं। उनसे चीखते भी नहीं बना। पण्डितजी ही भीतर आये और पानीका लोटा, थाली, एक कटोरेमें थोड़ा दूध ले गये। घरमें केवल पावभर दूध था उस दिन।

पण्डितजीने थालीमें शेरके दोनों पिछले पैर धोये। चन्दन घिसा, और उसे तिलक लगाया। अन्तमें दूधका कटोरा सामने रखकर हाथ जोड़ खड़े हुए-'मेरे दयामय स्वामी! घरमें मात्र इतना दूध है। आप इसी नैवेद्यको स्वीकार करें।'

वह वनपशु चुपचाप अब तक इस ब्राह्मणको कुतूहलपूर्वक देख रहा था। अब उसने मुख बढ़ाया और लपलप करके जीभसे पूरा दूध चाट गया। वह दूध पीकर उठ खड़ा हुआ तो पण्डितजीने फिर उसके सामने पड़कर दण्डवत प्रणिपात किया। शेरने फिर सिर सूँघा उनका।

इस पूरे समय पण्डितजीके नेत्रोंसे अश्रुधारा चलती रही। उनका स्वर गद्गद था। शेर घरसे निकलकर जाने लगा तो वे उसके पीछे द्वारके बाहर तक आये और हाथ जोड़े उस जाते शेरकी ओर तब तक देखते रहे, जब तक उसकी पूँछ भी दीखती रही।

शेर गङ्गाकी बाढ़में ही बहकर आया होगा। वह पता नहीं कबका भूखा था। वनपशु साधारणत: वन्य झोपड़ियोंमें भी प्रवेश नहीं करते। भूखसे व्याकुल होकर वह हिंसक प्राणी आखेट करने बस्तीमें घुसा था। भला पावभर दूधसे उसका क्या बनना था। उसने समीपके दूसरे घरमें जाकर मनुष्य हत्या की। स्वभावतः हल्ला हुआ और लोगोंने मिलकर उस शेरको भी मार डाला।

शेरका क्या हुआ और उसने क्या किया, यह बात महत्वकी नहीं है। महत्त्वकी बात है श्रीमालवीयजीके पिताका शेरमें भगवद्भाव। वह भाव इतना सच्चा था कि शेरने उनके यहाँ जो व्यवहार किया, उससे भिन्न व्यवहार वह कर ही नहीं सकता था। उस समय वह शेर था ही नहीं। उसके भीतर जो अन्तर्यामी था, वह शेरके शेरपनेको दबाकर पूजा लेने प्रवुद्ध हो गया था।

यह अकेली घटना नहीं है। ऐसी घटनाएँ इतिहासमें बहुत हुई हैं और अब भी होती रही हैं। अनेक संतोंको शेर मिलने तथा उनके अनुकूल व्यवहार करनेके वर्णन मिलते हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु, स्वामी रामतीर्थ जैसे दो-चार नाम ही नहीं हैं। सैकड़ों नाम हैं और आप जानते हैं कि प्रसिद्ध व्यक्तियोंकी अपेक्षा अप्रसिद्ध संत बहुत अधिक भारतमें हुए हैं। इनमें अधिक वनोंमें ही रहते थे, अतः वनपशुओंसे उनका काम पड़ता ही रहता था।

जब मैं 'संकीर्तन' (मेरठ) का सम्पादक था और वहाँसे हरिद्वार गया था, मुझे तब ऋषिकेश पैदल जाते एक दिगम्बर संत मिले। किसीने बतलाया कि वे गङ्गापारके वनमें रहते हैं। पता नहीं किस मौजमें सत्यनारायण मन्दिर आ गये थे उस दिन। मैंने बालचापल्यवश पूछ लिया (तब २१ या २२ वर्षकी आयु होगी) —'आपको सर्दी नहीं लगती ?'

'मैं रीछ ओढ़ता हूँ।' बच्चोंकी भाँति खिलखिलाकर हँसते उन्होंने बतलाया। उन्होंने ही स्पष्टीकरण किया—'रीछोंका एक जोड़ा है। मैं शीतकालमें उनकी गुफामें रहा। वे दोनों दो ओर होकर मुझे अपने बीचमें करके सोते थे।'

घटनाएँ प्रमुख नहीं हैं। प्रमुख है यह सत्य कि संसारमें कन्हाईके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जो कुछ दीख रहा है या दीख सकता है, सब इस नटखट खिलाड़ीके ही रूप हैं। यही इन सब रूपोंमें यह खेल कर रहा है। इसके अतिरिक्त दूसरी सत्ता ही नहीं है। इसीसे श्रुति कहती है— 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म। नेह नानास्ति किञ्चन।'

जगतका यह नाटक कब तक ? जब तक कोई पहिचान नहीं लेता कि खिलाड़ी ही इतने रूप धरे खेल रहा है। रंगमञ्चपर रावण, परशुराम या कंसका गुर्राना, उछलना तो ठीक; किन्तु आप समीप जाकर कन्धेपर हाथ रखकर यदि कह दो —'भैया, रामदास; तुम इस रूपमें ?'

'दोस्त, तनिक रुक जा। यह तो नाटक है। मैं पर्देके पीछे तुझसे अभी मिलूँगा।' रामदास यही कहेंगे या कुछ और ?

जगतके इस नाटक में पर्दा भी नहीं है। पर्दा तो केवल अविद्याका है। पहिचान लिया तो अविद्या कैसी। अतः पहिचान लेनेपर नाटक वहीं परिर्वतित हो जाता है। तब तो पहिचानने वालेके साथ उसके जैसा व्यवहार करना पड़ता है।

'यह कैसे हो गया ? शेरका स्वभाव कहाँ चला गया ? क्या वह सम्मोहित हो गया था ?' एक बार एक मित्रने पूछा।

सम्मोहित तो वह सदा रहता है। संसारके सब प्राणी सदासे अविद्या मोहित हैं और इस सम्मोहमें ही इनके सब व्यवहार चल रहे हैं। जब कोई इस सम्मोहनसे मुक्त व्यक्ति सामने आ जाता है तो सम्भव हो जाता है कि उसके प्रभावसे सम्मोहित जीवका भी कुछ क्षणोंके लिए सम्मोहन दूर हो जाय।

आप क्या सोचते हैं—शेर पहिले शेर है और पीछे भावकी प्रबलतासे उसमें नृसिंह भगवान जागृत हुए ? अथवा शेर पहिले भगवान है। उसमें पशुत्व, हिंसकपना अविद्याका आरोप है ? कोई अविद्याके आरोपसे मुक्त पुरुष उसमें वस्तु-दर्शन करने लगेगा तो वहाँ भी वस्तु सत्य ही प्रकट होगा ?

संसारका यह रूप जो हम-आप देखते हैं, जिससे व्यवहार करते हैं, जिसके सम्बन्धमें हमारी स्थिर धारणाएँ हैं, यह सब आरोपित है। यह सब नाटक है। नाटकमें रावण दीख रहा है; किन्तु पहिले वह रामदास है या रावण ? रावणका तो मुखौटा मात्र है। रावणका सम्वाद वह रट-रटाकर बोलता है। वह वस्तुतः रामदास है। रामदासका रूप, गुण, शील-स्वभाव ही उसका अपना है।

यह सम्पूर्ण जगत, इसके सब रूप कन्हाईकी ही क्रीड़ा है। यह सत्य होनेपर भी तब तक समझमें नहीं आता, जब तक कन्हाई जीवन नहीं बन पाता। जब कन्हाई जीवन बन जाता है, तब जगत जगत नहीं रह जाता। तब तो—

जित देखौं तित स्याममयी है।

तभी सत्यका साक्षात्कार करके कहा जा सकता है—

'त्वमेवेदं सर्वम्।'

कन्हाईसे—

कुछ कहना है ?

आपको कन्हाईसे कुछ कहना है ? क्या कहना है, इससे कोई सम्बन्ध नहीं। कुछ भी कहना हो, आप कहते क्यों नहीं। हिचक क्या है ? इस नन्दतनयसे भी हिचक ? इससे भी संकोच ? इसके समीप तो यह सब चला नहीं करता।

यह बात स्मरण रखिये कि आपको जो कहना है, वह आपको स्वयं कहना पड़ेगा। आपकी ओरसे कोई दूसरा यह काम नहीं करेगा। श्यामके समीप मध्यस्थता या सिफारिश नहीं चलती। इसलिए नहीं चलती; क्योंकि उसे चलाना सम्भव नहीं है।

'मेरे लिए भी प्रार्थना कर देंगे ?' एक श्रद्धालुने उन सत्पुरुषसे कहा, जिनके प्रति उनकी बहुत श्रद्धा थी।

'यह सम्भव कैसे होगा ?' उन सत्पुरुषका उत्तर आपको भली प्रकार समझ लेना है—'जब यशोदाका लाड़ला मनमें होता है, तब अपनी भी सुध-बुध नहीं रहती। वह सम्मुख हो तो तन-मन कुछ स्मृतिमें नहीं आता और जब वह सम्मुख नहीं, मनमें भी नहीं तो कहा किससे जाय ?'

'महापुरुष भगवानसे अपने जनोंकी सिफारिश कर देते हैं ?' उस श्रद्धालुने तर्क दिया।

'नारायण ! जो सिफारिश कर देनेका आश्वासन देते हैं, उनसे सावधान रहना।' सत्पुरुषने समझाया—'उनको स्वयं श्यामके मनमें भी आनेकी स्थितिका अनुभव नहीं है।'

'महापुरुषकी कृपासे········' वे श्रद्धालु पुनः तर्क देने लगे; किन्तु सत्पुरुषने उन्हें बीचमें ही रोक दिया।

'अब तुम भिन्न बात कहने लगे हो।' उन्होंने समझाया—'किसी महापुरुषकी किसीपर कृपा हो, किसीको वह स्वजन तो मानेगा नहीं; क्योंकि वह महापुरुष है तो भगवानके अतिरिक्त उसका कोई रह ही नहीं गया है और वह किसीमें आसक्ति करेगा नहीं। कोई उसमें दृढ़ आसक्ति

करले, उसे सचमुच स्वजन मान ले तो भगवान स्वयं उसे अपना मान लेते हैं। भगवान स्वयं उसपर कृपा करते हैं।'

'भगवान् भक्तभक्तिमान्।'

भगवान तो भक्तकी भक्ति करते हैं। भक्तके स्वजनको अपना मानते हैं। उसके लिए उन्हें सिफारिश आवश्यक नहीं होती।

आपको कन्हाईसे कुछ कहना है तो स्वयं कहना चाहिये। श्यामके सम्मुख प्रतिनिधि नहीं जाया करता। आपको कोई सकाम (निष्काम भी) अनुष्ठान करना है तो योग्य ब्राह्मण अथवा शास्त्र-विहित सम्बन्धी प्रतिनिधि होकर आपकी ओरसे वह अनुष्ठान कर दे सकता है; किन्तु श्रीव्रजराजकुमार कोई न्यायाधीश या प्रशासनाधिकारी नहीं है कि उसके सम्मुख आपका कोई आवेदन लेकर आपका वकील उपस्थित होगा।

'श्रीदाऊजी ? श्रीराधा ? कोई सखा ? कोई अन्तरङ्गा सखी ?'

आपका प्रश्न तो ठीक है; किन्तु इनमें-से किसी तक आपकी पहुँच है ? इन तक पहुँच हो और कन्हाई तक न हो, सम्भव है ? ये सबके सब श्यामसे सर्वथा अभिन्न हैं। इनसे कुछ कह देनेका अर्थ कन्हाईसे ही कह देना है। ये उस बातको नन्दनन्दनसे कहें, यह कहाँ आवश्यक रह जाता है। इन्होंने सुना तो कृष्णने सुन लिया; क्योंकि इनमें-से भी किसीको अपना स्मरण नहीं रहता। इनका तन-मन कृष्णमय। इनके चिन्तनका एकमात्र विषय व्रजनवयुवराज। इनको कहना ही पड़ता हो—कभी स्मरण आवेगा इन्हें ?

'कन्हाई मेरी नहीं सुनता।' आपकी यह बात ठीक हो सकती है। अनेक यही बात कहते हैं।

'क्यों नहीं सुनता ?' आपने कभी यह भी सोचा है ? कृष्णसे कुछ कहा जाय और वह अनसुनी कर दे, यह उसका स्वभाव तो है नहीं। अतः कुछ कारण तो होना चाहिये।

कन्हाई गोपकुमार है। बहुत भोला है। बहुत चपल है। इससे कुछ कहना हो तो यह स्मरण रखना पड़ता है। आप बहुत लच्छेदार आलङ्कारिक भाषामें स्तोत्र पढ़ते हैं, प्रार्थना करते हैं तो यह ताली बजाकर हँसकर भाग जाता है। इसे बहुत विद्वत्तामें अभिरुचि नहीं है। ऋषि-मुनि, देवता आदि

वेदमन्त्रोंसे इसका स्तवन करते हैं, तब यह मौनी बाबा बन जाता है, यह आपने सुना नहीं ? आप भी ऐसा ही कुछ करते हैं तो कैसे आशा करते हैं कि यह नटखट आपकी बात सुन लेगा ?

श्रीनन्दबाबाने अपने लालको पढ़ाया नहीं। आपका प्रयोजन नन्दनन्दनसे न हो, भगवान वासुदेवसे हो, परमपुरुष श्रीनारायणसे हो तो उनकी बात मैं नहीं करता। वैसे सुना मैंने यही है कि उनपर भी इस कन्हाईकी छाया पड़ गयी है। वे भी लम्बे क्लिष्ट स्तोत्र प्रायः सुना नहीं करते।

एक बात सबके अनुभवकी है। कोई अनेक भाषाओंका उद्भट विद्वान हो, उदार हो तो उससे उसकी जानकारीकी किसी भी भाषामें कुछ कहनेपर सहानुभूतिपूर्वक सुन लेता है; किन्तु उसके हृदयका उमंग, उसकी सच्ची प्रीति जगती है तब, जब उससे उसकी भाषामें कुछ कहा जाता है।

'कन्हाईकी कौन-सी भाषा ?'

कन्हाईकी ही क्यों--परमपुरुष परमात्माका आप कोई नाम लें, एक ही भाषा है उनकी अपनी। वे हृषीकेश अधोक्षज अन्तर्यामी हैं या नहीं ? तब उनकी भाषा है हृदयकी भाषा। मुखसे शब्द क्या बोले गये, शुद्ध-अशुद्ध कैसे बोले गये, किस भाषाके बोले गये, इस सबसे कोई प्रयोजन नहीं है। प्रयोजन इतना है कि उन शब्दोंके साथ आपका हृदय भी बोल रहा है या नहीं ?

कन्हाई तो गायोंकी हुंकार भी समझ लेता है। उनके हुंकार करनेपर उनके पास दौड़ जाता है। उन्हें सहलाता है, अपने पटुकेसे पोंछता है या वे प्यासी हों तो उन्हें जल पिलाने ले जाता है।

'कन्हाईसे क्या कहा जाय ? कब कहा जाय ? कैसे कहा जाय ?'

यह सब कुछ नहीं। आपको जो कहना हो, जब कहना हो, उसे तभी अपने ढंगसे कह लीजिये। गोपकुमार चाहे जब दौड़ते आते हैं या समीप हुए तो इसके कन्धेपर भुजा रख देते हैं। कोई दूरसे पुकार कर उच्च स्वरसे कुछ कहता है और कोई इसके कानसे ही मुख लगा लेता है। कोई नहीं देखता कि यह स्नान कर रहा है, भोजन कर रहा है अथवा खेलमें लगा है। जिसके जब मनमें आवेगी, पुकार बैठेगा—'कनूँ!' और इसे तो उपेक्षा करना, अनसुनी करना आता नहीं।

'कन्हाई सामने हो तब तो……… ।'

सामने नहीं है तो भी क्या हानि है ? विश्वास रखिये कि यह आपके समीप ही है। इसे छिपकर सुननेका व्यसन है। आपका अन्तर्यामी आपसे कहीं दूर जा सकता है ? अतः इससे जो कहना है, निःसङ्कोच कहिये ; किन्तु ऐसे कहिये कि आपका हृदय भी बोलता हो।

पद्य, श्लोक आप मत बोलिये, यह मैं नहीं कहता। यदि आपका हृदय उनके माध्यमसे बोलता है तो आप उन्हें बोलिये ; किन्तु जब हृदय जो कहना चाहे, वह कहिये।

एक महत्वकी बात—अच्छा है कि कन्हाई सामने नहीं है। यह सामने नहीं है, इसीलिए आप अपनी बात कह सकते हैं। इसीलिए आपको अपना, अपनी स्थितिका, अपनी आवश्यकताका स्मरण है। अभी आप भली प्रकार अपनी बात कह सकते हैं।

कन्हाई सामने होता है तो अपना स्मरण ही नहीं रहता। अपनी परिस्थिति, अपने तन-मनका भान ही पता नहीं कहाँ चला जाता है। तब केवल कन्हाई रह जाता है। रह जाता है कन्हाईको प्रसन्न करने, इसे सुख देनेका स्मरण।

'गोपियाँ, गोपकुमार इससे अपनी बात कहते हैं ?'

बहुत कहते हैं, बार-बार कहते हैं। कहते ही नहीं, रूठते, झगड़ते भी हैं ; किन्तु उनकी बात उनकी अपनी होती है ? वह होती ही इसलिए है कि उससे कन्हाईको प्रसन्न करने, सुख देनेकी भावना उनके मनमें है।

आपको कन्हाईसे कुछ कहना है तो अभी कह लीजिये। तब तक कह लीजिये, जब तक यह आपसे छिपा है। इसके सम्मुख होनेपर कुछ कहा नहीं जा सकेगा। यह भी नहीं कि—'तू समीप रह !' तब तो यह जैसे प्रसन्न रहे, वही आपकी बात होगी।

आप भाग्यशाली हैं, आपके जन्म-जन्मके पुण्य जागे हैं यदि आपको कन्हाईसे कुछ कहना है। कहिये अपनी बात। इस गोपतनयसे सङ्कोच कैसा ?



मन लगाना है ?

मुझे बहुत दिनों तक यह भ्रम रहा कि किसी चित्र, मूर्ति, शब्द (नाम या मन्त्र) प्रकाश-बिन्दु आदिमें मन लगाना चाहिये और यह मन पट्ठा ऐसा कि कहीं लगकर ही नहीं देता था। मन लगा नहीं करता, यह मैं नहीं कह रहा हूँ। मन न लगे, वृत्तिरोध न हो तो योग कैसा ? लेकिन भूल यह कि मुझे योगी नहीं बनना था और मैं मन लगाना चाहता था। आपको योगी बनना है या नहीं, आप विचार कर लो।

मेरे पास एक बड़े नगरसे एक अच्छे विद्वानका पत्र आया। 'बहुत प्रयत्न करता हूँ; किन्तु ध्यान लगता नहीं। कोई उपाय बताइये।'

मैंने उन्हें लिखा—'मेरी भी एक समस्या है। आप इतने बड़े नगरमें रहते हैं। प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। बहुत-से लोगोंसे आपका परिचय होगा। उनमें अवश्य कोई अच्छे इञ्जीनियर होंगे। आप मेरी समस्या सुलझा दें, मैं आपकी समस्या सुलझा दूँगा। मेरी समस्या स्थूल है और आपकी सूक्ष्म। आपके कार्यसे मेरा कार्य बहुत सरल होना चाहिये।'

मैंने स्पष्ट किया—'मैं एक कुटिया बनाना चाहता हूँ। भले वह दस फुट लम्बी और आठ फुट चौड़ी ही हो; किन्तु दूसरी मञ्जिलकी ऊँचाईसे प्रारम्भ हो। भूमिसे उसका किसी प्रकारका सम्पर्क न हो। भूमिसे सम्पर्क होनेसे कीड़े आ जाते हैं। भूमि खरीदने, टैक्स देनेका झगड़ा रहता है। अनेक कायदे-कानून मानने पड़ते हैं। योगके आठ अङ्ग हैं—१. यम, २. नियम ३. आसन, ४. प्राणायाम, ५. प्रत्याहार, ६. धारण, ७ ध्यान, ८. समाधि। इनमें-से आप सीधे सातवीं मञ्जिलमें स्थिति चाहते हैं और मैं तो केवल दूसरी मंजिलकी कुटिया बनाना चाहता हूँ। आप मेरी सहायता करेंगे ?'

उनका बहुत छोटा उत्तर आया—'समझ गया।'

आप न समझे हों तो समझ लें कि यदि आपको योगी बनना है—चित्तवृत्ति निरोध करना है तो पहिली मञ्जिलसे निर्माण करना पड़ेगा। यम नींव हैं योगकी। १. अहिंसा, २. सत्य, ३. अस्तेय, ४. ब्रह्मचर्य और ५. अपरिग्रह। इनमें कोई दुर्बल होगा तो योगका भवन बनेगा नहीं। यदि किसी प्रकार बन भी गया तो ढह पड़ेगा।

मुझे योगी नहीं बनना था और कन्हाई न प्रकाश-बिन्दु है, न अनहद नाद और न चित्र या मूर्ति। यह परम चपल स्वयं कदाचित ही कहीं थोड़ी देर एक भंगीसे बैठता या खड़ा रहता है। मैया यशोदाका लाल भला चित्र या मूर्ति क्यों बनने लगा। अतएव मेरे उस प्रकारके प्रयत्नको न सफल होना था, न हुआ।

बात बहुत सीधी है; किन्तु बहुत देरसे समझमें आयी। आप बहुत भाग्यवान होंगे, यदि आपकी समझमें बात शीघ्र आगयी हो या आ जाय। बात इतनी है कि मन लगाया नहीं जाता, मन हटाया जाता है। ऐसा कोई मनुष्य कभी नहीं होता जिसका मन कहीं लगता न हो। निरवलम्ब मन यदि आपका रहता हो तो आप परमज्ञानी। निरवलम्ब मन तो ब्रह्म ही है। मनको मन कहते ही तब हैं जब उसमें संकल्प-विकल्प चलते रहते हैं।

सबका मन कहीं-न-कहीं लगता है। जहाँ लगता है, घूम फिरकर बार-बार वहीं पहुँच जाता है। गोस्वामी तुलसीदास इसीलिए भगवत्प्रीति-की प्रार्थना करते हुए सर्वथा लौकिक उदाहरण देते हैं—

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर, प्रिय लागहु मोहि राम॥

—श्रीरामचरितमानस

अतः मनको लगानेके प्रश्नके साथ यह प्रश्न लगा है कि मनको हटाना है। यही हुआ अभ्यास और वैराग्य। कन्हाईमें मन लगाना है, यह अभ्यास, और जहाँ मन लगता है वहाँसे हटाना वैराग्य।

आपका मन कहाँ-किसमें लगता है, यह पहिले देखिये। अपने मनका अध्ययन कीजिये भली प्रकार और वह जहाँ लगता हो, उसी आधार-में यदि कन्हाईको किसी प्रकार बैठाया जा सकता हो तो बैठा दीजिये।

मन स्वभावसे चञ्चल है; किन्तु आप क्या समझते हैं कि नन्दनन्दन आपके मनसे कम चञ्चल है? यह इतना चपल है कि इसके साथ दौड़ते-दौड़ते मनीरामका भी दम फूलने लगता है। मन देवता भी हाँफकर थक जाते हैं। आप अपने मनको इस चपल कन्हाईके साथ तो कर देखिये।

आप चित्र या मूर्तिका ध्यान करेंगे तो मन नहीं लगेगा; किन्तु जड़, निश्चल चित्र या मूर्ति तो कन्हाई नहीं है। यह ब्रजराजकुमार हँसता, खेलता, दौड़ता-भागता रहता है। किसीकी मनुहार करता है तो किसीको

चिढ़ाता है। किसीकी सेवा लेता है तो किसीको स्वयं सजाता है। इसके सखा कोई दो-चार हैं ? सहस्रों गायें, वृषभ, बछड़े-बछड़ियाँ, मयूर, कपि तथा दूसरे पशु-पक्षी। सहस्रों गोपकुमार, गोप, गोपियाँ तो हैं ही; किन्तु कृष्ण तो लताओं, वृक्षों, क्षुपों, वीरुधों और तृणों तकसे बात करने लगता है। सब इसके अपने सखा-सखी ही हैं।

'आपके श्यामसुन्दर कैसा तिलक लगाते हैं ? उनका मुकुट दाहिने झुकता है या बायें ?' एक भावुक सज्जनने मुझसे एक बार पूछा।

'तिलक तो कन्हाईको लगाना ही नहीं आता। इसके प्रशस्त भाल-पर मैयासे लेकर गोप बालकों तक सभीको तिलक लगाना ठहरा।' मैंने उन्हें कहा—'गोबरसे लेकर गोरोचन, कस्तूरी, रोली, चन्दन, खड़िया, गेरू, रामरज आदि अनेक धातुएँ हैं तिलक करनेकी। कोई बिन्दु लगा देता है और कोई खड़ी या आड़ी रेखाएँ खींच देता है। कोई एक तिलक हो तो कुछ कहा भी जाय। घड़ी-दो घड़ी एक तिलक बना रहे तो बहुत है। एक साथ कई-कई तिलक इसके भालपर और कभी भी यह मुख पोंछ लेगा, किसीकी अलकों या भुजापर कपोल या भाल रगड़ लेगा अथवा स्नान करने यमुनामें जा कूदेगा। इसके भालपर सबके सब तिलक शोभा देते हैं। आपको कोई तिलक बहुत प्रिय है तो आप भी अपना तिलक लगा दो; किन्तु यह आशा मत करो कि इसके भालपर वह अकेला तिलक देर तक टिक पायेगा।'

'मुकुट ?' उन्होंने बड़े संकोचसे अबकी बार पूछा।

'मुकुट कैसा ? यह केशोंमें जो पुष्पगुच्छ और मयूरपिच्छ खुरस लेता है, उसे आप मुकुट कहते हो ? उस मुकुटका भी कुछ ठिकाना नहीं है। दाहिने-बायेंकी कोई विशेष धुन कन्हाई को लगती नहीं। यह अपने हाथसे भी पुष्पगुच्छ लगाता तो है केशोंमें और मयूरपिच्छ भी अटका लेता है; किन्तु अधिकतर यह काम गोपकुमार ही करते हैं।'

'मैया प्रायः मयूरपिच्छ लगी रत्नखचित कलंगी इसके केशोंमें लगा देती है; किन्तु वह भी कभी दायें टेढ़ी लगती है और कभी बायें। उस कलंगीको भी कन्हाई या कोई गोपकुमार इधर-से-उधर नहीं करेगा, ऐसा कोई नियम नहीं है, घड़ी-घड़ी वह भी इधर-से-उधर होती रहती है।'

यह तिलक-मुकुटकी चर्चा ही यहाँ इसलिए कि आप एक नियम बनाकर चलेंगे तो मन लगेगा नहीं। कृष्ण किसी नियममें बँधकर नहीं

चलता। कभी इसके सर्वाङ्गपर रङ्ग-बिरङ्गे चित्र बने हैं। यह सर्वाभरण भूषित है। सम्पूर्ण केशराशि कुसुमों एवं मुक्ता-प्रवालसे सुसज्ज है। लेकिन कभी यह धूलि-धूसर है, अलकें बिखरी हैं और कन्धेका पटुका तक फेंककर भाग रहा है।

कन्हाईके आचरणोंमें स्थायी केवल कण्ठकी कौस्तुभ मणि है और वक्षपर जो श्रीवत्स है, वह तो अङ्ग-लक्षण है। लेकिन अनेक बार कौस्तुभ मालाओंके पीछे हो जाता है। श्रीवत्सको वन-धातुओंका चित्राङ्कन ढक देता है।

कन्हाईमें मन लगाना है तो उछलते-कूदते, हँसते-खेलते कन्हाईमें मन लगाइये। गायों, गोपों, गोपियों, गोपकुमारोंके मध्यमें क्रीड़ा करते कृष्णका चिन्तन कीजिये और इसकी एक-एक भंगीको देखनेका प्रयत्न कीजिये।

मयूरपिच्छ लहराता है, अलकें हिलती हैं, वनमाला वक्षपर हिलोरें लेती हैं। श्रीब्रजराजकुमार कभी भौहें मटकाता है, कभी अँगूठा दिखाता है, कभी मटकता है और कभी दौड़ता पास आता है। इसके अधर हिलते हैं, नेत्रकी पुतलियाँ चलती हैं, पतली सुकुमार अँगुलियाँ अनेक मुद्राएँ बनाती हैं। केवल मुरली ही नहीं बजती, कंकण, किंकिणी, नूपुर भी बजते हैं और सखाओंकी तालियाँ भी बजती हैं।

आपका मन जहाँ संसारमें अधिक लगता है, वहाँ जब लगे तब सावधानीसे वहाँसे हटाकर कन्हाईकी किसी क्रीड़ामें उसे लगा देना है। समस्या मनको हटाते रहने-की है। कन्हाईकी—हँसते-खेलते चपल कन्हाईकी क्रीड़ामें इसे लगाते रहेंगे तो मन कन्हाईमें लगने लगेगा।

'यह तो सब कल्पना है।' एक अच्छे साधकने मेरी बात सुनकर कहा—'इससे तो मनोराज्य बढ़ता ही जायगा।'

'जो ब्रह्म वृत्त्यारूढ़ होता है, वह अकल्पित होता होगा।' मैंने उनसे कहा तो सिर झुकाकर वे गम्भीर चिन्तनमें लग गये। ऐसे गम्भीर चिन्तकोंको कन्हाई भी हाथ ही जोड़ता है। आपको ऐसा गम्भीर बनना है तो क्षमा करें, यह सब बात आपके लिए नहीं है।

आपको कन्हाईमें मन लगाना है तो उसके सम्बन्धका मनोराज्य हो—यह परम अभीष्ट है। इसीका नाम लीला-चिन्तन है। यह भावराज्य परमपावन है।

मिलना है ?—

मिलने और दर्शन होनेमें थोड़ा-सा अन्तर है। दर्शन दूरसे भी हो सकता है और मिलना समीपसे ही होता है। लेकिन इन दोनोंकी कई श्रेणियाँ हैं। दोनों मुख्यतः दो प्रकारसे—स्वप्नमें और जागृतमें। वैसे एक तीसरी स्थिति भी है जिसे न स्वप्न कह सकते और न ठीक जागृति कहते ही बनता। व्यक्ति जाग गया है, पर अभी नेत्र खुले नहीं हैं। तन्द्रा भी नहीं; क्योंकि पूरा सावधान है, बाहरकी सब हलचलें सुनता-जानता है। इतनेपर भी नेत्र नहीं खुले हैं। कहना यह ठीक है कि चाहकर भी खोल नहीं पाता है और देख ऐसे रहा है जैसे खुले नेत्रोंसे देखता हो। उनकी बात सुनता है, पर बोल नहीं पाता।

एक और मुख्य भेद आपके ध्यानमें भी हैं—द्वेषसे, शत्रु भावसे भी मिलना होता है किसीसे और प्रीतिसे मिलना तो होता ही है। 'मैं तुम्हें देख लूँगा।' इस वाक्यसे आप परिचित हैं और इसका तात्पर्य भी समझते हैं। अन्ततः कन्हाई भी तो मामा कंससे मिला ही था। ऐसे मिलनेकी बात कन्हाईसे सोची नहीं जा सकती।

कोई दूरसे एक झलक दीख जाय या समीपसे निकल जाय, यह चलते-चलते मिलना—अचानक मिलना भी होता ही है। ऐसा दर्शन और मिलना भी स्वप्न-जागृति दोनोंमें होता है। इतना क्षणिक न हो तो भी क्षणिक जैसा ही है कि मिले सही, पर दोमें-से कोई बोला नहीं। बोलनेको नहीं मिला अथवा बोलनेकी सुधि-बुधि ही नहीं रही। यह दूसरी बात कन्हाईसे मिलनेमें प्रायः होती है। यह भले देर तक समीप खड़ा रहे, हँसता रहे, ठुमकता रहे; किन्तु देखने वाला ठगा रह जाता है। उसकी वाणी खुलती ही नहीं।

कन्हाई ही मिला कि इसके मिलनेका भ्रम हो गया, यह निर्णय भी सरल नहीं है। भ्रम भी होता ही है, कभी स्वयं हो जाता है और कभी कोई उत्पन्न कर देता है। आप जानते हैं कि सम्मोहन (हिप्नोटिज्म) एक विद्या है। व्यक्ति स्वयं भी सम्मोहित हो सकता है इच्छा, भय, क्रोधादिके प्रबल आवेगमें। भयकी अधिकतामें भूत दीखने लगता है और क्रोध शत्रुको

प्रत्यक्ष दिखा देता है। दूसरा व्यक्ति दूसरेको सम्मोहित करके अपनी इच्छानुसार दृश्य दिखा दे, यह बहुत साधारण बात है।

मनुष्यको ठग लेनेमें देवताओंको, सिद्धोंको, यक्ष-गन्धर्व आदि तथा भूत-प्रेतोंको भी पता नहीं क्यों आनन्द आता है और ये सब कामरूप होते हैं। इच्छानुसार रूप धारण कर सकते हैं। कन्हाई पहिले तो मिला नहीं है। अब उसका रूप धारण करके कोई आ जाय तो आप कैसे पहिचानेंगे ?

यह बात असम्भव तो क्या कठिन भी नहीं है। मुझे पता है कि अनेक चमत्कार दिखाने वाले महात्मा आजकल इसीलिए भगवान बन गये हैं; क्योंकि अपने भक्तोंको वे यदा-कदा किसी भगवद्रूपमें अपनेको दिखा देते हैं। आप कुछ प्रसिद्ध चमत्कारी संतोंका चरित पढ़ें तो यह तथ्य आपको मिल जायगा।

बहुत प्रबल एवं व्यापक है इस भ्रान्तिकी शक्ति। श्रीराम-लक्ष्मणकी उपस्थितिमें रावणने लंकाके रणाङ्गनमें अपनी मायासे सैकड़ों राम प्रकट करके दिखला दिये और सुग्रीव, विभीषण, अंगद आदि ही नहीं, हनुमान तक भौचक्के रह गये। वे भी वास्तविक और मायिक श्रीराम-रूपोंका निर्णय करनेमें असमर्थ हो गये। अतः हमारे आपके साथ ऐसा कुछ होना सम्भव नहीं है, यह कैसे कहा जा सकता है।

इस भ्रमसे बचनेका एक ही उपाय है—कन्हाई ही बचा सकता है और जो केवल उसीपर निर्भर है, किसी और शक्तिका भरोसा नहीं करता, उसे कन्हाई बचाता ही है। उसकी रक्षाका—भ्रान्त होनेसे भी रक्षाका दायित्व श्यामने ले रखा है।

पहिले मिलनेकी ही बात—यह नटखट मिला, आपने किसी प्रकार कुछ कहा भी, अपनी बात कह गये, यद्यपि इसके मिलनेपर यह बहुत कठिन काम है—पर यह मौनी बाबा बना रहा। इसने कुछ नहीं कहा। हँसकर या बिना हँसे भाग गया अथवा छिप गया (अदृश्य हो गया) यह भी मिलना तो हो गया।

आप बोले या नहीं बोले, यह बोला—दो शब्द या खूब सारी बातें की इसने और चला गया। मिलना नहीं हुआ, यह तो कह नहीं सकते; लेकिन कहने दीजिये कि मिलनेकी ऊपर कही सब दशाएँ मिलना होकर भी मिलना नहीं हैं। मिलना है—'**भुज भरि भेंटिबौ नन्दलाल।**'

यह तो है, परन्तु कहने दीजिये कि सचमुच कन्हाई जब मिलता है—यदि दर्शनका भ्रम ही नहीं है तो मिलनेपर भी इसका दर्शन नहीं

होता। दर्शनके भ्रममें तो पूरी श्रीमूर्ति ठीक-ठीक दीख सकती है, पर जब यह सौन्दर्य-सिन्धु स्वयं सामने आता है, तब नेत्र जहाँ इसके जिस अङ्गपर पहिले पड़े—वहींके हो गये। उस अङ्गके अतिरिक्त कुछ दीखता नहीं। श्रीभरतलाल इसीसे कहते हैं—

'महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कही न बैन।
दरसन तृपित न आजु लगि पेम पिआसे नैन॥'

—मानस, अयोध्या. २६०

सगे भाईकी यह अवस्था है। श्रीराधाकी और इस रसिक शेखरकी भी इससे कुछ अधिक अच्छी स्थिति नहीं है—

'न आदि न अंत बिहार करैं दोउ लाल-प्रियामें भई न चिन्हारी।'

पहिचान तो तब हो जब दोनों एक दूसरेको ठीक देख सकें; किन्तु इनके असीम, अनन्त, अकल्पनीय सौन्दर्यका दुर्गुण ही यह है कि वह अपनेको ठीक-ठीक देखने ही नहीं देता। अतः मिलकर-घुल मिलकर भी यह कन्हाई नित्य नवीन, सदा अनदेखा, अनपहिचाना बना रहता है।

आपको इस श्रीव्रजेन्द्रनन्दनसे मिलना है तो एक बात और भली प्रकार समझ लें कि यह अतिशय चपल है। मैया भले अपने केश-ग्रन्थनकी रज्जुसे इसे ऊखलमें बाँध दे, दूसरा कोई बन्धन इसे स्पर्श ही नहीं करता।

'श्रीकृष्णका दर्शन किस मन्त्रके अनुष्ठानसे होगा?' मुझसे कई बार कई साधकोंने पूछा है। यह भी पूछा है—'कितना जप या पुरश्चरण करना पड़ेगा?'

ऐसे मन्त्रानुष्ठान शास्त्रोंमें लिखे हैं और उनका फल होता है; किन्तु पूर्वमीमांसाके परमाचार्य श्रीकुमारिल भट्टकी बातको अस्वीकार करनेका साहस आपमें भले हो, मुझमें नहीं है। भगवान आदि शंकराचार्य भी अपने ग्रन्थोंमें उन्हें आचार्यपाद ही कहते हैं। उनका मत है—'यज्ञ या मन्त्रानुष्ठानसे उस क्रिया द्वारा देवताकी (देवशक्तिकी) उत्पत्ति होती है और कर्ताके संकल्पकी पूर्ति करके वह लुप्त हो जाती है।' आपको ऐसे मन्त्रोद्भव श्रीकृष्ण-दर्शनसे सन्तोष होता हो तो अवश्य अनुष्ठान करें।

मैं मन्त्रोद्भव श्रीकृष्णकी बात नहीं कहता। मैं कहता हूँ नित्य श्रीब्रजराजकुमार अपने चपल कन्हाईकी बात और सब भक्तिशास्त्र, सब भक्ताचार्य एवं भक्त-महापुरुष इसमें एक मत हैं कि मैया यशोदाका लाडला साधनसाध्य नहीं है। यह केवल कृपासाध्य है। कोई कितना भी सविधि

किया गया यज्ञ, मन्त्रानुष्ठानोंकी अविच्छिन्न परम्परा अथवा दीर्घकालीन उग्र तप इस गोपकुमारको विवश नहीं कर पाता।

मनुष्यके द्वारा किये गये कितने भी श्रम, कष्ट आदिको कन्हाईके दर्शनका मूल्य बनाया जा सकेगा, यह आशा दुराशा नहीं है? इसके सफल होनेकी कोई सम्भावना आपको थोड़ी भी लगती है?

कन्हाई बँधता है—खूब बँधता है, बार-बार बँधता है; किन्तु केवल प्रेमकी रज्जुसे बँधता है। ब्रजकी गायें हुंकार करके इसे बुला लेती थीं। गोपकुमार चाहे जब पुकार लेते थे और तब यह भले उनके समीप सदा दौड़ न जाता हो, कहीं मौन छिपा भी नहीं रह पाता था। वहाँसे भी उच्चस्वरमें 'कू' की ध्वनि इसके मुखसे निकल ही जाती थी।

कन्हाई मिलता है—तीव्र व्याकुलतासे मिलता है। अनन्याश्रयसे मिलता है। जब अपने जप-तप, योग-यज्ञ, ध्यान-ज्ञान, अनुष्ठानादिका सब अभिमान—सब आश्रय छूट जाता है—गलित हो जाता है और कोई सब ओरसे निराश होकर गिर पड़ता है; किन्तु निराश होकर लौटता नहीं, निराश होकर विमुख नहीं होता, निराश होकर उसके प्राण छटपटा उठते हैं। निराश होकर यह अवस्था हो जाती है कि अब प्राण नहीं रहेंगे, बस अन्तिम क्षण—केवल एक क्षण और तब वही क्षण धन्य हो जाता है। तब कन्हाई दौड़ा आता है—आये बिना रह नहीं पाता।

मत कहिये कि इस तीव्रतम व्याकुलतामें आत्म सम्मोहन (सेल्फ हिप्नोटिज्म) जाग सकता है। कोई दूसरा सम्मोहित कर दे सकता है। कोई सिद्ध, भूत-प्रेत, यक्ष-गन्धर्व, देवता—किसीका साहस नहीं। ऐसे क्षणमें जो आड़े आवेगा, कन्हाई क्षमा कर सकेगा उसे? जो सब आश्रय त्यागकर इसीको पुकार रहा है, उसे भटकानेकी शक्ति है त्रिभुवनमें कहीं किसीके समीप? उसकी रक्षामें श्याम नित्य सावधान—उसे अपनानेको सदा तत्पर। अतः वह तो कन्हाईसे मिलेगा ही। स्वयं कन्हाई उससे मिले बिना नहीं रह सकता।

कन्हाईसे मिलना है तो कन्हाईके मनमें ही उत्सुकता जगानी होगी कि वह आपसे मिलना चाहे। वह स्वयं मिलना चाहे तभी मिल सकता है। यही कृपा-साध्यका तात्पर्य है और वह मिलना चाहे, इसके लिए आपके प्राणोंमें तीव्रतम प्यास—अभीप्सा जागनी चाहिये उससे मिलनेकी।

यह प्यास—यह अभीप्सा कन्हाईके गुण, चरित श्रवण-चिन्तन पठनसे, बार-बार मननसे जागा करती है या किसी भगवज्जनकी अनुकम्पासे। कन्हाईसे मिलना है तो मुझे तीसरा कोई मार्ग स्मरण नहीं।

प्रेम करना है—

श्रुति कहती है—

न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवति ।
आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति ॥

सावधान, दूसरे सबके लिए सब प्रिय नहीं होते, अपने—आत्माके लिए सब प्रिय होते हैं।

श्री मद्‌भागवतमें शुकदेवजीने समझाया—

कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम् ।
जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया ॥ १०.१४.५५

इस कृष्णको ही समस्त प्राणियोंकी आत्मा समझो। यह यहाँ (व्रजमें) जगत्‌के परमकल्याणके लिए शरीरधारीकी भाँति अपनी मायासे प्रतीत हो रहा है।

इसी सन्दर्भमें स्वयं श्रीकृष्णकी गीतामें कही गयी बात भी स्मरण कर लेने योग्य है—

येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥ ९. २२

अर्जुन ! जो श्रद्धापूर्वक दूसरे देवताओंके भक्त उनका यजन-पूजन करते हैं, वे भी मेरा ही यजन करते हैं; किन्तु अविधिपूर्वक करते हैं।

इस अविधिपूर्वक पूजनका ही फल होता है कि—'देवान् देवयजो यान्ति।' देवताओंका पूजन करनेवाले देवताओंको ही प्राप्त होते हैं।

इस प्रेमके प्रसंगमें इतनी भारी-भरकम बातके प्रारम्भका प्रयोजन है। प्रेम किया ही केवल कन्हाईसे जाता है। कन्हाईको छोड़कर अन्य किसीसे प्रेम किया ही नहीं जा सकता और कन्हाई तो है ही प्रेम करनेके लिए।

आप इस श्यामसुन्दरसे प्रेम करते हैं। चौंकिये मत, ऐसा कोई प्राणी संसारमें नहीं है जो प्रेम न करता हो। सबका किसी-न-किसीसे प्रेम है। दूसरे किसीसे नहीं होगा तो अपने शरीरसे होगा; किन्तु यह भ्रम है कि दूसरेसे प्रेम किया जा रहा है। जैसे दूसरे देवताओंके भक्त समझते हैं कि वे उन-उन देवताओंका भजनकर रहे हैं, वैसे ही लोग भी इस भ्रममें

ही हैं कि वे तन , धन , स्त्री-पुत्र या पद-प्रतिष्ठासे प्रेम करते हैं। प्रेम तो वे कन्हाईसे ही करते हैं; किन्तु अविधिपूर्वक करते हैं। दूसरे माध्यमोंसे करते है । इस अविधिपूर्वक प्रेमके कारण—प्रेमास्पदकी भ्रान्त धारणाके कारण भवाटवीमें भटक रहे हैं । अन्यथा—

प्रेम हरी को रूप है, सो हरि प्रेम स्वरूप।

प्रेम तो कन्हाईका ही रूप है । कन्हाई ही प्रेम है ।

प्रेममयी श्रीराधिका, प्रेम सिन्धु गोपाल ।
प्रेमभूमि वृन्दाविपिन, प्रेम रूप ब्रज बाल ।।

आपको कन्हाईसे प्रेम करना है अतः यह जान लें कि प्रेम किया नहीं जाता , प्रेम होता है—हो जाता है । यह प्रेम कहीं आकाशसे टपका नहीं करता । यह आपके हृदयमें है । पहिले यह देखिये कि 'आपकी प्रीति कहाँ है । संसारमें प्रीति स्थिर और अनन्य नहीं होती । वह बिखरी-बिखरी रहती है । हृदयकी रागात्मिका वृत्तिका नाम ही प्रेम है और जब संसारमें राग होता है, तब उसमें दो दोष अवश्य आ जाते हैं--१. वह बिखर जाता है । अनेकोंसे होता है । कुछ तनसे , कुछ धनसे , कुछ मान-प्रतिष्ठासे , कुछ एक सम्बन्धीसे और कुछ दूसरेसे । २. वह स्थायी नहीं होता । जहाँ स्वार्थ या सम्मानपर आघात लगा या आघात लगनेकी शङ्का हुई, उसे द्वेषमें परिवर्तित होते भी देर नहीं लगती ।

कुछ थोड़े अपवाद होते हैं । अतीतमें हुए हैं और कभी भी हो सकते हैं । लैलाके प्रति मजनूका प्रेम—लेकिन ऐसा प्रेम जब स्थायी और अनन्य हो जाता है , दिव्य हो जाता है । वह जिसमें होता है , उसकी देहासक्ति तथा समस्त क्षुद्र दुर्बलताओंको समाप्त कर देता है । उसमें केवल अविधि-पूर्वक भ्रान्ति रहती है जो किसी भी क्षण किसी संत-सत्पुरुषका अनुग्रह मिलते ही नष्ट हो जाती है । इसीलिए सूफी संत मतमें स्थिर लौकिक प्रेमकी बहुत महत्ता है। उसे लगभग प्राथमिक आवश्यकता मान लिया गया है ।

कन्हाईसे प्रेम करना है तो लोकमें कहीं , किसीसे भी प्रीति की कैसे जा सकती है । एक ही समय , एक साथ आप पूर्व और पश्चिम कैसे चल सकते हैं । स्वार्थ और परमार्थ एक साथ सधा नहीं करता ।

'मुझे लोकमें उन्नति-सफलता भी चाहिये और परमार्थ भी ।' एकने लिखा । उनको उत्तर भला मैं क्या देता । जो एक साथ ऊपर-नीचे दोनों ओर दौड़ना चाहता है , वह गिरेगा । उसके नीचे ही लुढ़कनेकी सम्भावना अधिक है ।

मैं नहीं कहता कि संसारका सुख-वैभव और कन्हाईकी प्रीति एक व्यक्तिको प्राप्त नहीं होती। सुदामाको स्वयं श्रीकृष्णने अपार वैभव दिया। महाराज जनक, चक्रवर्ती महाराज दशरथ अथवा व्रजराज नन्दबाबाके पास ऐश्वर्य कम नहीं था और इनमें प्रीति कम थी, यह तो सोचा भी नहीं जा सकता।

बाहरकी स्थिति क्या है, यह महत्वकी बात नहीं है। बाहर कोई चक्रवर्ती सम्राट् भी हो सकता है और नितान्त कंगाल भी। महत्वकी बात यह है कि उसके हृदयका राग कहाँ है। आप चाहते क्या हैं? कन्हाईका प्रेम और लौकिक वस्तु या स्थिति एक साथ चाही नहीं जा सकती। जब कोई दोनोंको चाहता है तो इसका अर्थ होता है कि वस्तुतः उसे संसार ही चाहिये। श्यामके प्रेमको चाहना मात्र औपचारिकता है।

एक परिचित प्रसिद्ध विद्वान कहा करते हैं—'लोग तो चाहते हैं कि संसारका सब सुख-सम्मान बना रहे और एक जेबमें भगवान भी आ जायँ। वे भगवानको—भगवत्प्रेमको भी अपने अहंकारका आभूषण बनाना चाहते हैं और भगवान आभूषण बना नहीं करते।'

कन्हाईका--कन्हाईके प्रेमका भी एक स्वभाव है कि जब ये आते हैं, संसारको नीरस कर देते हैं। तब भले सम्पत्ति, परिवार, प्रतिष्ठा बनी रहे, इनके रहनेमें कोई रस--कोई सुख नहीं रह जाता। ये रहें ही, ऐसा थोड़ा भी आग्रह नहीं रहता।

श्रीरघुनाथके वनमें चले जानेपर महाराज दशरथ प्राण ही नहीं रख सके। कन्हाईके मथुरा जानेपर ब्रजके लोगोंकी क्या दशा हुई? किसे भगवत्प्रेम प्राप्त हुआ जिसकी तनिक भी रुचि-प्रीति संसारके वैभव या भोगोंमें थी? संसारका चाहे जितना वैभव प्राप्त हो, कन्हाईका प्रेम आवेगा तो सबको नीरस बना ही देगा।

कन्हाईसे प्रेम करना है? तब संसारसे निरपेक्ष हो जाना पड़ेगा। तब यह रहे– यह न रहे, यह मिले--यह न मिले, अमुक सुखी-सन्तुष्ट रहे--अमुक दूर बना रहे, जीवनमें ऐसी परिस्थिति रहे--ऐसी न रहे, यह सब आग्रह सर्वथा छोड़ देना होगा।

बात यह है कि कन्हाई हृषीकेश है, अन्तर्यामी है और संसार बाहर है। अन्तर्मुख और बहिर्मुख एक साथ हुआ नहीं जा सकता। अतः संसार तथा संसारकी स्थितिके सम्बन्धमें हृदयके पूरे बलसे कहना पड़ता है--

'बाकी न मैं रहूँ, न मेरी आरज़ू रहे।'

तब यह कहना सार्थक होता है--

'मालिक तेरी रजा रहे और तू ही तू रहे।'

'कन्हाईसे प्रेम करना है--करना ही है। संसारका सुख-वैभव रहना हो तो रहे और न रहना हो तो कल जानेके बदले भले आज ही चला जाय; किन्तु यह प्रेम कैसे प्राप्त हो? यह कैसे जागे?'

आपके मुखमें घी-शक्कर। आप अब भी कहते हैं कि आपमें कन्हाईका प्रेम नहीं है? जो संसारमें सब ओरसे निरपेक्ष हो गया, उसका प्रेम कहाँ है? प्रेमहीन कोई प्राणी होता नहीं और संसारमें कहीं उसका प्रेम रहा नहीं, तब उसका प्रेम गया कहाँ?

'लेकिन मुझमें प्रेम तो नहीं है।'

आपकी यह अनुभूति धन्य है। प्यास ही प्रेमका स्वरूप है। प्रेममें तृप्ति तो है ही नहीं। 'मुझमें प्रेम है' यह अनुभूति किसी प्रेमीको कभी होती नहीं। यदि किसीको अनुभव होता है कि मुझमें प्रेम है, तो समझना होगा कि यह पतनोन्मुख है। इसका रहा-सहा प्रेम भी अब टिकनेवाला नहीं है।

प्रेमकी पहिचान एक दूसरा ही अनुभव है। जिसमें प्रेम है, उसका क्षण-क्षणका, नित्य-नित्यका अनुभव बन जाता है कि--'मुझमें तो प्रेमका लेश भी नहीं है और न मैं कन्हाईका अनुग्रह पानेका अधिकारी हूँ। मुझ जैसेकी तो उन्हें अत्यन्त उपेक्षा करनी चाहिये; किन्तु ये व्रजराजकुमार इतने भोले हैं कि इन्हें नीरस व्यक्तिकी भी परख नहीं। ये मुझसे अतिशय प्रेम करते हैं। इनका मेरे प्रति बहुत अधिक पक्षपात है।'

प्रेमका पिता है विश्वास और माता है निरपेक्षता। संसारमें सब ओरसे निरपेक्ष होकर जो कन्हाईपर ही विश्वास करता है, उसे कन्हाईका प्रेम प्राप्त होता है और कन्हाईका प्रेम तो कन्हाईके मिलनेसे बहुत-बहुत अधिक महान है।

एक सहायक साधनकी बात और। हमारे मनमें राग या द्वेष बहुत कुछ सुन-सुनकर उत्पन्न होता है। अतः कन्हाईका प्रेम पाना है तो इसके गुण, इसके चरित, इसके माहात्म्यका, इसकी कथाका बार-बार श्रवण करना चाहिये। यह श्रवण जब सुलभ न हो, इस प्रकारके ग्रन्थोंका नियमित पाठ--अध्ययन करना चाहिये। पुस्तक पढ़ना भी श्रवणका विषय ही माना जाता है और प्रेम गुण-श्रवणकी बार-बार आवृत्तिसे जागृत होता है, यह सब शास्त्र, सन्त कहते-मानते हैं।

सम्बन्ध जोड़ना है ?

आपने यह लोकोक्ति सुनी होगी—'अपना काना-कुरूप लड़का भी माँको सुन्दर लगता है।'

एक विद्वानने अपने प्रवचनोंमें कहा—'चन्द्रमा सबको अच्छा लगता है। सबको सुन्दर और सुखद लगता है; किन्तु कोई चन्द्रमासे प्रेम नहीं करता; क्योंकि कोई चन्द्रमाको अपना अनुभव नहीं कर पाता।'

इसका अर्थ हुआ कि प्रेमके लिए अपनत्व होना आवश्यक है। प्रेमके लिए सौन्दर्य, सद्गुण होना उतना आवश्यक नहीं है। प्रतिवर्ष ही प्रायः विश्व-सुन्दरीका चुनाव होता है। आप भले उनमें किसीको देखते न हों, चित्र देखनेको मिल जाते हैं। वासनात्मक उत्तेजनाकी बात छोड़ दी जाय तो क्या कभी इनमें कोई आपको अपनी पुत्री या बहिनके समान प्रिय लगी ? यही बात गुणोंके सम्बन्धमें भी है।

प्रेमकी परिभाषा करते हुए देवर्षि नारदने अपने भक्ति-दर्शनमें कहा—

'गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणं वर्द्धमानम्।'

सौन्दर्य और गुण आवश्यक भले न हों, ये प्रेमकी अभिवृद्धिमें सहायक होते हैं—ठीक बात; किन्तु कब ? जब उससे अपनत्व हो। आपके शत्रुमें या शत्रुके सहायकमें सौन्दर्य या गुण हों तो प्रेम बढ़ावेंगे या वितृष्णा—असूया उत्पन्न करेंगे ?

यह सब न भी कहा जाय तो कुछ हानि नहीं; क्योंकि परम सौन्दर्यैकराशि, निखिल सद्गुणगणैकधाम कन्हाईसे अधिक सुन्दर, अधिक गुणवान तो त्रिभुवनमें कभी कोई न हुआ, न होना सम्भव है। इस सौंदर्य सौकुमार्य महासिन्धुके सीकरका प्रसाद ही सृष्टिमें सौन्दर्य बनकर फैला है। इस गुणगणैकधामके गुणोंकी छायामात्रसे त्रिलोकीमें अनादि-कालसे प्राणियोंको सद्गुरु मिलते रहे हैं।

इतनेपर भी कन्हाईसे प्रेम नहीं है या अल्प है तो इसका कारण होना चाहिये। कारण केवल यह कि इस नन्द-तनयसे अपनत्व नहीं है या शिथिल है, अल्प है।

अपनत्व सहज भी होता है और स्थापित भी किया जाता है। इसमें सहज अपनत्व सुदृढ़ होता है। कदाचित ही कभी किसीमें सहज अपनत्वके प्रति शैथिल्य दीखता है और जहाँ ऐसा है, वे हीन प्रकृति लोग हैं। माता-पुत्र, पिता-पुत्र, भाई-भाई, बहिन-भाई आदिका अपनत्व सहज है, नैसर्गिक है। इसमें स्वार्थ या कोई दुर्गुण ही शिथिलता लाता है।

स्थापित अपनत्व सुदृढ़ नहीं ही होगा, ऐसी कोई बात नहीं है। यदि दोनों सत्पुरुष हैं तो स्थापित सम्बन्ध भी सुदृढ़ अपनत्व उत्पन्न करनेमें पूरा समर्थ है। पाश्चात्य सभ्यताका रङ्ग भारतीयोंपर चढ़ने लगा है और गाढ़ा ही होता जा रहा है, यह हमारे समाजका दुर्भाग्य। अन्यथा भारतमें केवल सगाई होनेके पश्चात् भी पतिका शरीर न रहनेपर सती हो जाने वाली भुवनपावनी कन्याएँ कम नहीं हुई हैं। इस अपने देशमें विवाह-सम्बन्ध केवल इसी जीवन तक नहीं माना जाता था। यह सम्बन्ध लोकान्तर-जन्मान्तरमें भी बना रहे, यह आकांक्षा की जाती थी, अब भी की जाती है और इसके बने रहनेका विश्वास किया जाता है।

अनेक नारियोंने विपत्तिमें किसीको राखी भेज दी और जिसे भेजी, उसने अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया उस बहिनकी रक्षाके लिए। दत्तक पुत्र बनानेका तो शास्त्रीय विधान ही है। इस प्रकार धर्म भाई, धर्म बहिन, मित्र, पुत्र या पुत्री बनानेकी --अपनत्व स्थापित करनेकी परम्परा समाजमें खूब प्रचलित है। यद्यपि ऐसे सम्बन्धोंमें आजकल बहुत दोष आने लगे हैं, किन्तु यह दोष कुपुरुषोंमें आते हैं। सत्पुरुष तो एक बार जिसे पुत्री कह देते हैं, उसके साथ पुत्रीका व्यवहार जीवनभर निभाते हैं।

कन्हाईको सम्बन्ध निभाना बहुत अच्छा आता है। इससे आप आशा नहीं कर सकते कि यह अपने साथ स्थापित सम्बन्धको अस्वीकार करेगा या उसके अनुसार व्यवहारमें शिथिलता लावेगा। केवल आपकी ओरसे शिथिलता नहीं आनी चाहिये। आपके भीतर सम्बन्धके प्रति उपेक्षा या उदासीनता नहीं होना चाहिये।

कृत्रिम सम्बन्ध सम्बन्ध ही नहीं होता। अनेकोंसे लोग कहते हैं— 'मैं तो आपका बालक हूँ।' ऐसा केवल मुखसे कहना कोई भी शिष्टाचार ही मानता है। तब कन्हाई ही कैसे उसे स्वीकार कर लेगा?

'कन्हाईसे क्या सम्बन्ध बनाया जाय?'

व्यर्थ प्रश्न है। ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं, जो इससे न बनाया जा

सके और जिसे यह स्वीकार न करे।* सम्बन्ध सच्चा बने आपके मनमें, केवल यह आवश्यक है।

सम्बन्ध सच्चा बननेके लिए आवश्यक है कि आपके मनमें, आपके जीवनमें उस सम्बन्धकी माँग हो। सुन-सुनाकर, यह जानकर कि अमुक सम्बन्ध सर्वश्रेष्ठ है, सम्बन्ध बनानेसे बनता नहीं। वह कृत्रिम होकर रह जाता है।

एक विद्वान सत्पुरुषने सखी-भाव अपनाया। मधुर-भाव सर्वश्रेष्ठ है, यह सुनकर एक बहुत बड़ा समुदाय इसे अपना लेता है। मैं उनसे मिला तो उन्होंने अपने शिशुपुत्रका परिचय दिया--'यह आपका बालक है।'

'आप तो श्यामसुन्दरके प्रति सखी भाव रखते हैं?' मैंने पूछा।

'जी हाँ! यह उन रसिकशेखरका ही अनुग्रह है।' उन्होंने कहा।

'मेरी एक जिज्ञासा है।' मैंने स्पष्ट पूछा--'एक ही मनमें अपने प्रति स्त्रीभाव और पुरुषभाव एक साथ कैसे रह सकते हैं? यदि नहीं रह सकते तो जिसमें सखी भाव है, वह अपनी पत्नीसे भी पुत्रोत्पादन कैसे कर सकता है?'

वे रुष्ट हुए। उन्होंने अनेक लोकपूजित महापुरुषोंके नाम गिनाने प्रारम्भ कर दिये। मैं हाथ जोड़कर, क्षमा माँगकर चला आया; किन्तु मेरा समाधान नहीं हुआ।

एक लड़कीके कोई भाई नहीं था। राखी पूर्णिमाको उसने अपनी माताके कहनेपर गोपालको राखी बाँध दी और गोपाल उसका भाई बन गया; क्योंकि बहिनको सचमुच भाईकी आवश्यकता अनुभव हो रही थी। उसके एक भी दूसरा भाई होता तो कहा नहीं जा सकता कि कन्हाईमें उसका भ्रातृत्व सुदृढ़ होता या नहीं।

एक माताका इकलौता पुत्र मर गया। उसके दुःखकी सीमा नहीं। किसी सन्तने कह दिया—'यह कृष्ण तेरा पुत्र है।' उसने सन्तकी बात पकड़ ली। उसे तो पुत्र चाहिये ही था। उसने कृष्णको पुत्र बनाया। कृष्णमें दम है कि उसे मैया नहीं मानेगा? इस प्रकार अनेक स्त्री-पुरुष जो

* 'श्यामका स्वभाव' नामकी पुस्तकमें इस विषयको विस्तारसे समझाया गया है।

सन्तानहीन थे, कन्हाईके मैया-बाबा बन गये। श्यामको किसीका पुत्र बननेमें सङ्कोच कहाँ।

अनेक विधवाओंने श्यामको पति बना लिया। अनेक अविवाहित कुमारियोंने कन्हाईको पति स्वीकार किया। कृष्णको 'ना' करना नहीं आता। सम्बन्ध जोड़ने वाला सच्चा है तो सम्बन्ध सुदृढ़। सम्बन्ध सुदृढ़ तो प्रेमकी प्राप्ति सुनिश्चित।

'मैं व्रजराजकुमारको जीजाजी बनाऊँगा।' पुरुष भी मिले ऐसे और कन्याएँ भी मिलीं। श्रीराधाको कोई बहिन बनाना चाहेगा तो वह भी कहाँ अस्वीकार करना जानती हैं।

'मैं इसे देवर बनाऊँगी।' एकने कहा—'इसे और कीर्तिकुमारीको भी मेरा रौब मानना पड़ेगा।'

किसके मुखमें हाथ भरकी जीभ है जो कह दे—'यह सम्बन्ध नहीं बन सकता।'

कन्हाई पिता भी बननेको प्रस्तुत और पुत्र भी। यह केवल स्वामी ही नहीं बनता, आपमें दमखम हो तो इसे सेवक बननेमें भी आपत्ति नहीं है।

'तोहि मोहि नाते अनेक, मानिये जो भावै।'

यह बात गोस्वामी तुलसीदासकी–एक विनम्र सेवककी। 'जो आपको रुचे सो' यह बात सेवक ही कह सकता है। आवश्यक नहीं कि आप भी यही कहें। आपको जो रुचे वह बनाइये इस गोपकुमारको; किन्तु पहले देखिये कि आपके हृदयमें सचमुच उस सम्बन्धकी माँग है या नहीं। आप उस सम्बन्धके प्रति सच्चे रहेंगे तो कन्हाई भी सच्चा रहेगा।

आप कन्हाईको पुत्र या छोटा भी कहें और मन्दिरमें मत्था टेकें, स्तवन करें, आर्शीवाद देनेमें हिचकें तो आपका सम्बन्ध सच्चा है? कन्हाईको अपना कुछ बना भी लें और चिन्ता, भय, लोभ बचे रहें, सम्भव है?

आपको इससे प्रेम करना है तो इससे सम्बन्ध जोड़िये; पर वह सम्बन्ध जिसे आप जीवनमें सच्चा बना सकें।



निरपेक्ष रहना है ?—

आप जानते हैं कि कन्हाईसे निरपेक्ष कौन रहते हैं ?

१—अज्ञ, जो जानते ही नहीं कि शरीर एवं परिवार-पोषणके अतिरिक्त भी कुछ और करनेकी आवश्यकता है। इस प्रकारके मनुष्य आकृतिसे तो मनुष्य हैं; किन्तु हैं द्विपाद पशु ही।

२—प्रथम श्रेणीसे किञ्चित् भिन्न अरण्यवासी तथा समाजका अशिक्षितप्राय वर्ग जो भूत-प्रेत तथा नाना प्रकारके देवताओंमें आस्था रखता है। उन्हींकी पूजा-अर्चा अपनी श्रद्धाके अनुसार करता है। इस वर्गको पता ही नहीं कि सृष्टिका कोई एक सञ्चालक है। वही सर्वेश्वर है।

३—अनीश्वरवादी-नास्तिक। इनका भी लक्ष्य शरीर-पोषण ही होता है। अवश्य ये अपने साथ समाजके हितकी बात भी कहने-सोचने वाले हो सकते हैं।

४—संसारके उन सब धर्मोंके अनुयायी जिन धर्मोंमें ईश्वरको केवल निराकार माना जाता है। इसमें निर्गुण-निराकार और सगुण-निराकार मानने वाले दोनों आ जाते हैं।

५—उन धर्मोंके अनुयायी जिन धर्मोंमें ईश्वरीय सत्ता तो स्वीकृत नहीं है; किन्तु पुनर्जन्म एवं निर्वाण माना जाता है। ऐसे धर्म हैं बौद्ध एवं जैन।

इन पाँचों श्रेणियोंके लोगोंसे कुछ कहना नहीं है। जिनके लिए सगुण-साकार ईश्वर ही नहीं है, वे भगवानके अवतारोंपर विचार भी करेंगे तो उन्हें या तो इतिहासके आदर्श-पुरुष मानेंगे या आध्यात्मिक रूपकके पात्र।

बात उनसे कहने-सुननेकी है जो ईश्वरकी सगुण-साकार सत्ता स्वीकार करते हैं, अवतारवादमें भी अविश्वास नहीं करते; किन्तु उन्हें इनसे कोई प्रयोजन नहीं है। इनमें भी श्रेणियाँ हैं—

१. पामर—ये मनुष्य योनिमें नरकसे आये प्राणी हैं। इनकी पापमें सहज रुचि है। दूसरोंकी हानि करके, दूसरोंको कष्ट देकर, दूसरोंका अपमान करके ये प्रसन्न होते हैं। इसमें अपना गौरव मानते हैं।

२. विषयी—इनका लक्ष्य धन और भोग प्राप्त करना है। इसमें भी दो वर्ग होते हैं—

(क) जो अपने स्वार्थकी रक्षा या सिद्धिके लिए उचित-अनुचित उपायोंके अवलम्बनमें हिचकते नहीं। अपनी स्वार्थसिद्धिके लिए दूसरोंकी हानि भी करते हैं या कर सकते हैं।

(ख) जो धर्मपूर्वक केवल अपने स्वत्वका उपभोग करते हैं। दूसरोंके स्वत्वका जिन्हें लोभ नहीं होता। जिनका उपार्जन न्यायसंगत है और जिनका भोग संयमित और धर्मसम्मत है।

३. साधक—योगमार्गके और ब्रह्मज्ञानके। अब इस युगमें तप, यज्ञके द्वारा परमार्थ-प्राप्तिके साधक तो मिलने कठिन ही हैं, अतः उनकी चर्चा भी निष्प्रयोजन है।

४. सिद्धपुरुष अथवा अपनेको सिद्ध या भगवान मानने वाले। आजकल तो भारतमें ही अपनेको भगवान घोषित करने वाले बहुत अधिक हैं।

पामरोंकी चर्चा व्यर्थ है। विषयीमें (क) श्रेणीके लिए भी कोई आशा नहीं और (ख) श्रेणी धर्म-पुरुषार्थी है। उसका परम प्राप्य स्वर्ग है। इस श्रेणीके लोग भी आजकल अंगुलियोंपर गिनने योग्य मिलेंगे।

जिनको अपने बलपर परमार्थ करना है, उन्हें किसी गायोंके चरवाहे गोपकुमारसे भला क्या प्रयोजन। कन्हाई भी ऐसे साधकोंको हाथ ही जोड़ सकता है। यह दूसरी बात है कि महर्षि पतञ्जलिने अपने योग-दर्शनमें 'ईश्वर प्रणिधान' को समाधिका साधन माना है। लेकिन नटखट कन्हाई कहाँ किसीका साधन बनता है।

यह भी अद्‌भुत बात है कि ज्ञान-मार्गके ऐसे साधक एवं महापुरुष इसी युगमें होने लगे हैं—बहुत हैं जिन्हें भक्तिसे प्रयोजन नहीं है। उनके पूर्वाचार्योंको यह सुबुद्धि मिली ही नहीं थी। प्राचीन ग्रन्थोंमें एक भी ऐसे महापुरुषका वर्णन नहीं जो ज्ञानी हो और भक्त न हों। ऐसे महापुरुष तो कलियुगकी कृपासे ही होने लगे हैं।

जो स्वयं भगवान घोषित हैं, उनको किसी दूसरे भगवानसे क्या लेना है। कन्हाईको इन भगवानोंसे कोई स्पर्धा नहीं। लेकिन आश्चर्य यही है कि इनमें कोई अपनेको वाराह या नृसिंह नहीं कहता। कोई अपनेको श्रीराम भी घोषित नहीं करता। अधिकांश अपनेको कृष्ण ही घोषित करते

हैं, कुछ अपनेको कल्कि भी कहते हैं। अब यह भिन्न बात है कि अपनेको कृष्ण कहने वालोंमें कमको ही वंशी बजानी आती है। सर्पके फणपर तो दूर, स्टेजपर भी नाचना नहीं आता और युद्धका रथ तो क्या हाँकेंगे, ठिकानेसे ताँगा भी नहीं हाँक सकते। इसी प्रकार जो अपनेको कल्कि कहते हैं, उन्हें तलवार पकड़ना भी नहीं आता।

ऐसे सब लोगोंसे न कन्हाईको कुछ लेना-देना है, न मुझे कुछ कहना है। मुझे कहना है आपसे, इसलिए आपसे; क्योंकि आप इनमें-से कोई नहीं हैं।

आचार्य श्रीरामचन्द्र शुक्लने एक स्थानपर लिखा है—'परमात्माको निर्गुण मान लेनेसे त्राता, पाता कोई हाथ नहीं आता।'

अपने बलपर होनेवाले जितने साधन हैं, उन सबकी एक बड़ी दुर्बलता है कि 'मैंने किया' इस अहङ्कारके उन्मूलनका उनमें उपाय नहीं है और अहङ्कार मिटे बिना पूर्णत्व प्राप्त नहीं होता।

काम-क्रोध, लोभ-मोह आदि विकार कितने प्रबल हैं, यह बात वह समझ नहीं सकता जो इनका दास है, जिसने इनको जीतनेका प्रयत्न ही नहीं किया। भगवान शिव तकके लिए जो अजेय निकलें, उन्हें सृष्टिमें जीतने वाले तो एकमात्र ऋषि नर-नारायण ही हुए हैं। सामान्य मनुष्यका अज्ञानपूर्ण अहङ्कार ही है कि वह इनको अपने बलपर जीत लेनेका विश्वास करता है।

कन्हाईकी बात भिन्न है। वह एक ओर काम (प्रद्युम्न) का पिता है तो दूसरी ओर इन्द्र और ब्रह्माको भी छका देनेमें इसे रस आता है। इसके नटखटपनसे विकारोंके देवता भी हाथ ही जोड़ते हैं।

अघासुर-अरिष्टासुर, नरकासुरका अर्थ जानते हैं आप? ये अघ, अरिष्ट, नरकके साकार अधिदेवता। इन्हें कन्हाईने द्वापरमें ही मार दिया। उसके अपने जनोंके लिए ये अब कभी सप्राण नहीं होंगे।

आपको कन्हाईसे निरपेक्ष रहना है तो कन्हाईको ही भला आपकी अपेक्षा क्यों होने लगी। श्रीव्रजराजकुमारको क्या पड़ी है कि वह आपकी खोज-खबर लेने भागेगा। लेकिन अब आप स्वयं अघ, अरिष्ट, नरकसे निबटते रहनेकी व्यवस्था कीजिये। आपको पता है?

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छती॥

—दुर्गा सप्तशती

गोस्वामी तुलसीदासने इसे स्वीकार किया--

सो ज्ञानिन कर चित अपहरई।
बरियाई बिमोह बस करई ॥

उस महामायाके महाकौशल, महापराक्रम, महाजालसे बा निकलने जितना शौर्य-पराक्रम आपमें है तो ठीक है, अन्यथा वह दया नह जानती। वह केवल त्रिपुर-सुन्दरी ही नहीं है, छिन्नमस्ता, चामुण्डा महाकाली भी वही है और आपपर वह दया करे भी क्यों? उस प्रलयङ्करीसे आपका कोई सम्बन्ध है?

कन्हाईकी तो वह छोटी बहिन है। नन्दात्मजा है वह और जब कन्हाई अपना होता है तो वह स्वयं अपनी हो जाती है। कन्हाई यदि भाई है तो वह बहिन है। बहिन भी कहीं चामुण्डा, उग्ररूपा हुआ करती है। बहिन होती ही स्नेहमयी--वात्सल्यमयी है। नन्दात्मजा कन्हाईकी बहिन है, अत: श्यामके समान ही भोली, सरला है। क्या हुआ जो इसीके समान थोड़ी नटखट है। यह भी तो कभी वाराह बनता है, कभी नृसिंह। ऐसे ही इसकी बहिन भी नटखटपनसे कभी डरानेको मुण्डमालिनी बनती, कभी करालिका; किन्तु है भोली ही। कन्हाईके जो हैं, उनके सम्मुख तो सदा भोली रहती है। उनके लिए विघ्नकारिका तो क्या बनेगी, उनके विघ्न वारणकी चिन्तामें ही इसे कभी निद्रा नहीं आती।

आपको इसकी चिन्ता नहीं है? इस महामायासे भय नहीं है? आप कन्हाईसे निरपेक्ष रहना चाहते हैं तो बने रहिये। नन्दनन्दनने भी व्रत ले रखा है--

'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'

यह निरपेक्ष हुआ तो महामायाको स्वतन्त्रता मिल जाती है कि वह चामुण्डा, मुण्डमालिनी, महाकालीमें-से जो रूपधारण करना चाहे, करले और तब उसके समीप जो उसकी सहचरियाँ एकत्र हो जाती हैं--लेकिन मैं आपको भयभीत नहीं करना चाहता। आप उन सबसे बच निकलनेका महापुरुषार्थ करने लगेंगे तो मैं आपको प्रणाम ही करूँगा।

मुक्त होना है—

'ज्ञानके बिना मुक्ति नहीं होती।' आपने यदि शाङ्कर-वेदान्तियोंका कभी सत्संग किया है तो आपने यह बात बार-बार सुनी होगी।

'भक्तिसे मुक्ति नहीं हुआ करती।' एक बहुत प्रसिद्ध विद्वानने अपने प्रवचनमें कहा।

'ज्ञानसे भी सबकी मुक्ति नहीं होती।' मैंने कहा तो वे चौंक गये। लेकिन उन्हें बोलनेका अवकाश दिये बिना मैंने कहा—'जड़भरत तभी ज्ञानी हो गये थे, जब राजा भरत थे। इतनेपर भी उन्हें मृग बनना पड़ा और फिर जड़भरत हुए, तब मुक्त हुए।'

कहीं भी राग-द्वेष रहेगा तो वह जन्म-मरणका कारण बनेगा। अतः बन्धनके स्वभावको समझे बिना मुक्तिकी बात करना व्यर्थ है।

भक्तका प्रबल राग भगवानसे होता है। अतः भक्त तो अपने भगवानसे बँधा है। भक्ति भगवानके साथ जीवको बाँध देती है। लेकिन भक्त भगवानसे बँधा है तो भगवान भक्तसे अपने आप बँध गया या नहीं? अब कौनसा कर्मशास्त्र है जो भगवानको बन्धनमें बतलावेगा? भगवान जन्म-मरणके बन्धनमें पड़ेगा? भगवान नहीं पड़ेगा तो उसके साथ बँ[illegible] भक्त पड़ जायगा, ऐसा कहनेवाला बुद्धिमान है?

'सरग-नरक अपबरग समाना।
जहँ तहँ दीख धरे धनु बाना॥'

सचमुच जो भक्त है, वह नरकका भय अथवा अपवर्ग—मोक्षकी चिन्ता क्यों करे? मैंने कुछ मित्रोंमें कहा—'मुझे नरक होता हो तो मैं ऐसे ही वहाँ भी रहूँगा, जैसे यहाँ हूँ।'

'ऐसा कैसे सम्भव है?' एकने शङ्का की—'नरक यातना-भूमि है। सृष्टि-सञ्चालकका विधान ही है कि नरकमें कोई सुखी नहीं रह सकता। वहाँ तो प्राणी यातना प्राप्त करने जाता है।'

'सृष्टि-सञ्चालकको अपने विधानकी स्वयं चिन्ता करनी चाहिये।' मैंने कहा—'मैं जानता हूँ कि कन्हाई मेरा है और वह मेरा साथ छोड़ नहीं सकता। मैं नरक गया तो मेरा कन्हाई वहाँ मेरे साथ रहेगा और आनन्दघन कन्हाई साथ रहेगा तो यातना रहेगी या आनन्द? हम दोनों वहाँ भी परमानन्द मनावेंगे।'

'यमराज इतने मूर्ख नहीं हैं कि अपने नरकोंको स्वयं ही नष्ट कर दें।' वे सज्जन हँस पड़े--'आपका कन्हाई जहाँ होगा, वह नरक रहेगा ; या गोलोक बन जायगा ?'

कृष्णचन्द्र कर्मकर्ताके परम न्यायाधीश यमराजका अत्यन्त सम्मान्य है। आपके ध्यानमें यह बात है या नहीं ? इसलिए कि यमराज प्रमुख द्वादश भागवताचार्योंमें-से एक हैं और इसलिए भी कि श्यामसुन्दर उनकी सगी ही नहीं—युग्मज उत्पन्न बहिन यमुनाका पति है।

मुकुति निरादरि भगति लोभाने।

श्रीरामचरितमानसकी यह बात अब भी समझमें न आयी हो तो समझ लें। बन्धनके कारण हैं राग-द्वेष। वेदान्तकी भाषामें बोलूँ तो बन्धनका कारण अविद्या है। जिसमें भक्ति है, उसका राग भगवानमें तो है; किन्तु संसारमें कहीं होना सम्भव नहीं है और द्वेषकी वहाँ दाल ही नहीं गलती--

निज प्रभुमय देखहिं जगत, केहि सन करहिं बिरोध।

अब रही अविद्याकी बात तो आप क्या सोचते हैं कि सूर्यमें भी कभी रात्रिका पदार्पण होता होगा ? कहते हैं कि एक बार अन्धकारने भगवानसे कहा--'प्रभो ! ये सूर्यदेव मेरे पीछे पड़े रहते हैं। मैं जहाँ जाता हूँ, ये वहींसे मुझे भागनेको विवश करते हैं। इन्हें आप रोक दीजिये।'

भगवानने सूर्यसे पूछा--'तुम अन्धकारके पीछे क्यों पड़े हो ?'

सूर्य चौंके--'मेरे स्वामी ! मैं किसके पीछे पड़ा हूँ ? यह कौन है जिसका नाम अन्धकार है ? उसे एक बार मेरे सम्मुख बुला दें तो मैं उसे पहिचान लूँ, जिससे फिर कभी उसका पीछा करनेकी भूल मुझसे न हो।'

अब भगवान भी सूर्यको अन्धकार कैसे दिखला दें ? इसी प्रकार कन्हाईने तो देखा ही नहीं कि अविद्या कैसी है--गोरी है या काली। यह चिद्घन नन्दनन्दन जिस हृदयमें आवेगा, उस हृदयमें अविद्या बैठी रहेगी ? अविद्या तो अन्धकार है और कृष्ण ज्योतिर्घन है। इस व्रजराज-तनयकी स्मृति आती है तो अविद्या नष्ट हो जाती है।

जीव जन्म-मरणके बन्धनमें तब तक है, जब तक उसके हृदयमें श्यामसुन्दर नहीं आता। लेकिन जिसका कृष्णसे राग है, वह उसके साथ तो बँधा रहता ही है। वे विद्वान ठीक कहते थे कि भक्तिसे मुक्ति नहीं

होती। केवल यह बात उन्होंने नहीं कही कि भक्तिसे कर्म-बन्धन भी नहीं रहता।

भक्तिसे बन्धन होता है--मधुर बन्धन। विवाह होता है भारतीय शास्त्रीय पद्धतिसे तो वर-वधूके पल्लेमें गाँठ बाँध दी जाती है। यह ग्रन्थि-बन्धन इस बातकी प्रतीक है कि ये दोनों अब जीवन भरके लिए ही नहीं, जन्म-जन्मान्तरके लिए एक साथ बँधे रहेंगे।

आज तो विवाह-विच्छेदका युग है। लेकिन आपने कभी सुना या आप कल्पना कर सकते हैं कि कोई पतिव्रता पतिसे विच्छिन्न होकर मुक्त होना चाहेगी ?

कोई मित्र अपने मित्रकी मैत्रीसे मुक्त हो जाय, वह सन्मित्र होगा ? आज तो पुत्र पिताकी सेवा तथा आज्ञापालनसे अपनेको मुक्त मानते हैं। शिष्य गुरुको गुरु ही नहीं मानते। आज पितृभक्ति, गुरुभक्ति, पतिभक्तिका अवमूल्यन हो चुका है; किन्तु क्या इन्हें आप सुपुत्र या सच्छिष्य कह सकते हैं ?'

'भक्तको सदा भगवानकी इच्छाके परतन्त्र रहना होगा। भगवान जब चाहेंगे—अपने साथ या पृथक भी उसे संसारमें भेज सकते हैं।' उन विद्वानका कहना ठीक है; किन्तु कन्हाई आवे संसारमें तो उसके साथ आनेमें आपत्ति है या नहीं, यह भी तो सोचनेकी बात है और कन्हाई किसी अपने जनको संसारमें भेजेगा लोक-कल्याणार्थ उसको भूल जायगा या उसकी क्षण-क्षणकी सम्हाल रखेगा ?

आजके युगके ज्ञानी लोग तो सचमुच बहुत अधिक ज्ञानी हैं। इतना विवेक न ब्रह्माजीमें उदय हुआ, न शिवमें और न यमराजमें ही। अन्यथा सृष्टि-निर्माणका इतना झंझट भरा काम ब्रह्माजी क्यों स्वीकार करते ? शंकरजीने भी एक बार भी नहीं कहा कि प्रलय करना बड़ा क्रूर कर्म है। इन दोनोंके समान ही यमराज भी भागवताचार्य हैं। उन्हें धर्मराज भले कहा जाय, उनका काम क्या किसीके पसन्द करने योग्य है ? इन सबने सहर्ष स्वीकार कर लिया अपने आराध्यका आदेश और लग गये—लगे हैं। ये बन्धनमें हैं ?

भगवान शिव ज्ञानियोंकी परम्पराके आद्याचार्य हैं। इन्द्र और विरोचन ज्ञान-प्राप्तिके लिए ब्रह्माजीके समीप गये थे। सनकादि कुमारोंके भी उपदेष्टा ब्रह्मा ही हैं। नचिकेताको ज्ञानोपदेश यमराजने किया। ये परमज्ञानी भी मुक्तिकी कामना न करके भगवदादेशके पालनमें लगे हैं।

ऐसा नहीं है कि भक्तिसे मुक्ति नहीं होती। अवश्य ही मुक्ति बिना ज्ञानके नहीं होती; किन्तु कृष्णचन्द्रने प्रतिज्ञा कर रखी है मोक्ष-कामी भक्तोंको ज्ञान-प्रदान करनेकी।

तेषामेवानुकम्पार्थमहमज्ञानजं तमः।
नाशयाम्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भारत॥ गीता १०-११

हृदयमें ही जो हृषीकेश स्थित है, उसे अन्तरमें ज्ञानदीप जला देनेमें कोई अधिक परिश्रम नहीं करना है। यह तो आपको सोचना है कि आपको यह ज्ञानदीप चाहिये या नहीं।

आपको मुक्त होना है? यह प्रश्न अधूरा है आपके लिए, यदि आप कन्हाईके हैं। यदि आप कृष्णका स्मरण-चिन्तन-भजन करते हैं। भक्तको संसारका बन्धन तो होता नहीं, प्रारब्धका बन्धन भी नहीं होता। कोई कर्म, कोई कर्म-नियन्ता इतना समर्थ नहीं कि श्यामसुन्दरके स्वजनोंपर शासन करनेकी बात भी सोच सके।

मनुष्य जिस दिन कहता है—'श्रीकृष्णः शरणं मम।' उसी दिन उसके कर्म-बन्धन तो ध्वस्त हो गये। अब उसे संसारमें जो सुख-दुःख, मानापमानादि प्राप्त होता है, वह व्रजेन्द्रनन्दनके विधानके अनुसार प्राप्त होता है और इसलिए प्राप्त होता है कि वह उनके द्वारा परिशुद्ध होकर कन्हाईका शाश्वत सान्निध्य प्राप्त कर सके।

अब आपको कन्हाईके इस सान्निध्यसे भी मुक्त होना है? आप कन्हाईसे मुक्त होना चाहते हैं?

यह आपके सोचनेकी बात है। कन्हाई केवल उनके साथ बँधा रहना चाहता है जो उसके साथ बँधे रहनेको उत्सुक हैं, व्याकुल हैं। जो उसके साथ बँधे नहीं रहना चाहते, उन्हें भजनका-भक्तिका पुरस्कार ज्ञान प्रदान करनेमें श्रीनन्दरायजीके लाडलेने कभी कृपणता नहीं की।

कृपणता कोई प्रदीप देनेमें करे भी क्यों? यह तो तब सोचना पड़ता है जब कोई इस नीलमणिको ही अपना बना लेनेका आग्रह करता है। भक्तिके साथ तो भगवानको बँधना पड़ता है। आपको मुक्त होना है—इस परमसुन्दर आनन्दकन्द कन्हाईसे मुक्त होना है?



एक होना है—

मुक्त होने और एक होनेमें जो अन्तर है, उसे समझ लेना ठीक होगा। बौद्ध मत मोक्षके लिए निर्वाण शब्दका उपयोग करता है। निर्वाणका अर्थ है बुझ जाना—जैसे दीपक बुझ गया––क्योंकि बौद्ध मतमें स्थायी सत्ता नहीं है। जैसे दीपककी बत्तीमें नया-नया तेल चढ़ता रहता है और दीपक जलता रहता है, ऐसे ही जीव क्षण-परिणामी है। दीपक बुझ गया तो ज्योतिका निर्वाण हो गया।

शाङ्कर वेदान्तमें मोक्षके लिए कैवल्य तथा निर्वाण दोनों शब्द मान्य है; किन्तु कैवल्यको अधिक उपयुक्त माना जाता है। ब्रह्म निर्गुण, निराकार, निर्विकार, अद्वितीय है। उसमें जीव तथा जगतकी सत्ता अविद्याके कारण प्रतीत हो रही है। अविद्या मिट जाय तो जीव तो अद्वितीय ब्रह्म है ही। यह ऐसा ही है जैसे नमककी डली समुद्रमें डाल दी तो उसकी पृथक सत्ता नहीं रही। यह हुआ उसका मुक्त होना।

वैष्णवाचार्योंने भिन्न प्रकारका मोक्ष माना है। १. सालोक्य, २. सारूप्य, ३. सामीप्य, ४. सार्ष्टि, ५. सायुज्य। इनमें-से प्रत्येक मोक्ष है; क्योंकि जीव कर्म-बन्धनसे तो छूट ही जाता है। सालोक्यका अर्थ है कि भगवानके लोकमें रहना। वहाँ पशु-पक्षी, लता-पादप, भ्रमर आदि कुछ भी होकर रह सकता है। क्योंकि वह दिव्यधाम चिन्मय है, वहाँ जड़ता तो है नहीं। अतः वहाँ तो वृक्ष, पाषाणादि भी चेतन हैं और भगवत्क्रीड़ाका आनन्द ठीक-ठीक अनुभव करते हैं।

सारूपका अर्थ है कि भगवानके दिव्य लोकमें भगवानके प्रायः समान रूपमें ही रहना। इस रूपमें भगवत्पार्षद रहते हैं। जैसे बैकुण्ठके सब पार्षद चतुर्भुज, घनश्याम, पीताम्बरधारी होते हैं। पार्षदोंको सेवाका आनन्द प्राप्त होता है।

सामीप्य दो प्रकारका होता है। एक तो वस्त्र, आभूषण, माला आदि होकर भगवानके श्रीअंगसे ही लगे रहना और दूसरे उनके अन्तरंग परिकरोंमें सम्मिलित हो जाना।

सार्ष्टिका अर्थ है सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति , संहारमें लगे ब्रह्मा , विष्णु , शिव ही नहीं ; वरुण , कुबेर , यम आदिमें-से किसीका पद प्राप्त कर लेना। यह कारक पद आकल्पान्त बना रहता है ।

सायुज्यका अर्थ है पृथक सत्ता बनी न रहे। भगवानके श्रीविग्रहमें एक हो जाना ।

इन सबमें-से सालोक्य , सारूप्य और सामीप्य अपनी इच्छासे प्राप्य नहीं होता। सच बात यह है कि जगत दिव्य भगवल्लोकका प्रतिबिम्ब ही है। अतः यहाँ जो कुछ है उसका मूल बिम्ब वहाँ है। किसीको कुछ होना नहीं है। भक्तिके मार्गमें ज्ञान यही है कि भगवदनुग्रहसे जीव जान ले कि भगवानके नित्यलोकमें उसकी क्या स्थिति है। उस अपने मूल बिम्बसे उसे एक हो जाना है। प्रतिबिम्ब तो मायिक भ्रममात्र है।

ब्रह्म ज्ञानसे कैवल्य होता है। भक्तमें वैभव प्राप्तिकी कामना हो तो भगवान उसे किसी अगले कल्पमें कारक पुरुष बना देते हैं। वह सृष्टिके सञ्चालकोंमें स्थान प्राप्त करलेता है। जो भगवानसे पृथक नहीं रहना चाहते अथवा जिनमें भगवत्ता ही पानेकी इच्छा है, उन्हें सायुज्य मिलता है अर्थात् वे भगवान्‌के सगुण साकार श्रीविग्रहसे एक हो जाते हैं। यह ऐसा है जैसे स्वयं मधु या मिश्री बन जाना। इस प्रकार कैवल्य, सार्ष्टि और सायुज्य ये तीन प्रकारके मोक्ष जीवकी कामना एवं प्रयत्नपर निर्भर हैं।

कैवल्यके सम्बन्धमें इससे पहिले कहा जा चुका। सृष्टिके कारक पुरुषोंमें-से कोई पद दे देना कन्हाईके लिए बहुत सुगम है। ब्रह्माण्ड अनन्त हैं और उनमें-से असंख्य प्रलयके गर्भमें जा रहे हैं तो असंख्योंका निर्माण हो रहा है। इसलिए किसीको किसी कारक पुरुषका पद देना हो तो कन्हाईको कालकी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी।

सायुज्यकी बात—इसमें भी कोई अड़चन नहीं है। यह तो आपके ही सोचनेकी बात है कि आप मिश्री या मधुका रसास्वादन करना चाहते हैं या स्वयं मिश्री या मधु बन जाना चाहते हैं। कन्हाईको अपने-से एक कर लेनेमें तो कोई असुविधा ही नहीं है। समस्त ब्रह्माण्ड उसीसे व्यक्त हुए हैं, उसीमें स्थित हैं और उसीमें लीन हो जाते हैं। अतः किसी जीवको उसके श्रीविग्रहमें लीन होनेमें क्या कठिनाई होनी है। पानीकी बूँद समुद्रमें पड़े तो उसे आत्मसात् करनेमें समुद्रको कोई कठिनाई होगी ? पानी तो समुद्रसे वाष्प बनकर निकला था। वह उसीका अभिन्न अंग है।

यह ज्ञानकी बड़ी गम्भीर बातें छोड़ दीजिये। साँवला, सुकुमार, परम सुन्दर नन्दनन्दन चपल है। आप इसके श्रीअंगमें घुल-मिल जाना चाहते हैं? ऐसा होता तो है। उस बड़े बगुलेको इसने चीर फेंका तो उसके शरीरसे निकली ज्योति इसीमें लीन हो गयी। बड़ा भारी अजगर (अघासुर) मारा इसने तो उसके शरीरसे निकली ज्योति इसमें—इसके चरणोंमें समा गयी, यह तो सृष्टिकर्ता ब्रह्मा तथा देवताओंने भी देखा। देखा तो सहस्रों ऋषियोंने, राजाओंने और दूसरे लोगोंने भी कि शिशुपालका मस्तक चक्रने काटा तो उसकी ज्योति श्रीकृष्णमें विलीन हुई।

आप बगुला बनेंगे या अजगर? शिशुपाल बनना है या दन्तवक्र? कंस बननेसे भी काम चल जायगा। डरिये मत, ऐसा कुछ न बनना हो तो ऋषि-मुनि भी बननेसे काम चलता है। कन्हाईका ध्यान करते जो शरीर छोड़ता है, वह इसीमें लीन हो जाता है, यदि उसके मनमें पहिलेसे दूसरा कोई सुदृढ़ भाव न हो।

गोपों, गोपियों, गोपकुमारोंकी बात छोड़िये। ब्रजके तो गाय-बैल ही नहीं, वनपशु, पक्षी, भृङ्गादि भी कन्हाईसे एक होना नहीं चाहते। वहाँके पादप, लताएँ, तृण, शिलाएँ भी यदि बोलें—उन्हें वाणी मिल जाय तो चिल्ला चिल्लाकर कहेंगे—'हम जो हैं, वही रहना है हमें। हमको दूसरा कुछ बनना नहीं। हमें तो यही परमानन्द मिलता रहे कि श्रीब्रजराजकुमार हमारे मध्य क्रीड़ा करते रहें। इनकी सेवाका, इनके और इनकी अंग-गन्ध लेकर आते वायुका स्पर्श मिलता रहे हमें।'

सार्ष्टि मोक्ष तो उसी दिन तुच्छ हो गया जब सृष्टिकर्ताने गिड़गिड़ाकर इन मैया यशोदाके लालसे प्रार्थना की—'मुझे अपने इस ब्रजमें तृण-शिला-तरु कुछ बना दीजिये, जिससे आपके इन मित्रोंकी अथवा गाय-बैल या वनपशुओंकी चरणरज तो मुझपर पड़े।' इतनी स्तुति भी व्यर्थ गयी। ब्रह्माको माँगनेपर भी यह वरदान नहीं मिला।

अब आप सोच लीजिये कि सार्ष्टिका कितना महत्त्व है और वह आपको चाहिये अथवा नहीं। सायुज्यकी बात; किन्तु स्वयं कन्हाई ब्रजमें कोई बहुत बड़ा नहीं है। यह सबसे दुर्बल है, सबसे सुकुमार है और सबसे भोला है। गोपियाँ इसे चुल्लू भर छाछ अथवा बूँद बराबर माखनका लालच देकर नचाती हैं या गोबरके टोकरे उठवाती हैं।

'हमें तेरे साथ नहीं खेलना। कर अपनी गायें हम सबकी गायोंसे अलग और अपना स्थान पृथक बना। हम नहीं बोलेंगे तुझसे।' चाहे जब कोई गोपकुमार फटकार देता है इसे और यह रूठनेके स्थानपर गिड़गिड़ाता है। हाथ जोड़ता है। रो-रोकर शपथें करता है सदा अनुकूल बने रहनेकी। खेलमें प्रायः हारता है और बालक इसकी पीठपर चढ्ढी कसते हैं।

यह नवघनसुन्दर सबकी सेवा करता है। सबको सजाना चाहता है। गोपकुमार ताली बजावे या लाठी खटकावे, यह उसकी प्रशंसा करते थकता नहीं। गायें तक तो इससे झगड़ लेती हैं और कोई झगड़े, सुनिश्चित है कि हारेगा यही। इससे तो झगड़कर कपि, शशक, गिलहरी तक जीत जाते हैं और इसकी गोदमें जमकर बैठे रहते हैं अथवा इसका पटुक, छीका या मयूरपिच्छ ले भागते हैं।

आपको इस सुकुमार कन्हाईसे एक होना है? क्या लोभ है आपको? गोपियाँ-गोप, बाबा-मैया इससे बहुत प्यार करते हैं? प्यार तो इससे पशु-पक्षी सब करते हैं--प्राणसे भी प्रिय मानते हैं; किन्तु यह कम प्यार करता है किसीको? दूसरी बात--इससे एक होकर सबका प्यार पानेमें आनन्द है अथवा इसे प्यार करनेमें, इससे लड़ने-झगड़नेमें?

मैं जानता हूँ कि रुचिके लिए कारण नहीं हुआ करता। लोगोंको लाल मिर्च ही नहीं, अफीम भी प्रिय होती है--वह अफीम जो नीमके पत्तोसे कई गुना अधिक कड़वी है। संसारमें धूम्रपान करने वालोंकी संख्या बढ़ती जा रही है। मैंने अघोरियोंको देखा है। मैंने नारियोंके ऐसे कर्णाभरण देखे हैं, जिससे कानका निचला भाग फटकर कन्धे तक लटक आया था। पूरे शरीर और मुखपर गोदना गोदवाकर गर्व करने वाली नारियोंका अभाव नहीं है। लोग भिन्न रुचि है—अद्‌भुत-अद्‌भुत रुचि होती है लोगोंकी। अतः आपकी रुचिके सम्बन्धमें मुझे कुछ कहना नहीं है।

सायुज्यमें एक बात तो है कि यह निर्वाणके समान निरवलम्ब नहीं है। केवल अपने बलपर ही सब कुछ करना है—ऐसा भी कुछ नहीं है। इसमें कन्हाईका अवलम्ब है और श्याम सदा सदय है। इसे निष्ठुर होना आता नहीं है। अतः आपके सफल होनेमें सन्देहका कारण नहीं है। यह तो आपकी रुचि, आपके सोचनेकी बात है कि आपको सायुज्य चाहिये या नहीं। आपको इस कन्हाईसे एक होना है?



सेवा लेनी है—

'मन मन भावै, मूँड़ हिलावै' की बात है कन्हाईसे सेवा लेनेकी बात सुनकर चौंकना। कन्हाई सेवा नहीं करेगा तो आप करेंगे? आपने कभी सोचा भी है कि सेवा कौन कर सकता है। शक्तिहीन, आतुर, रोगग्रस्त मरियल सेवक आप रखना चाहेंगे? सेवा करके निहाल करेगा वह? दरिद्र सेवा करेगा? जो अपना ही स्वार्थ सदा देखता है, जिसे अपनी ही सुख-सुविधा सदा अपेक्षित है, उससे सेवा बनेगी? जो चिड़चिड़ा है—बात-बातपर झुँझलाता है और जो आपमें दोष-ही-दोष देखता है, ऐसा सेवक मिल जाय आपको तो?

हम आप सब ऐसे ही हैं। जीव कबसे सशक्त और सम्पन्न हो गया? अपनी ही सुख-सुविधापर दृष्टि और दूसरोंके दोष निकालते रहना हमारी प्रकृति है। हम-आपसे सेवा बनेगी? सेवा करने जाकर हम कुसेवा ही तो करेंगे।

आपको कुछ चाहिये या नहीं? कुछ नहीं चाहिये तो आप पूर्णपुरुष; किन्तु होता यही है कि प्रार्थनाका अर्थ ही कुछ माँगना और लोग मन्दिरमें जाकर, घरमें और दूसरे स्थानोंपर भी भगवानसे माँगते ही माँगते हैं।

'मेरा रोग मिटा दीजिये!'

'मुझे सन्तान दे दीजिये—सुन्दर सद्गुणी सन्तान।'

'यह मुकदमा तो मुझे जिता ही दीजिये।'

'इस व्यापारमें मुझे लाभ करा दीजिये।'

'इस उद्योगमें सफल बना दीजिये।'

ऐसी सहस्र-सहस्र कामनाएँ लेकर मनुष्य भगवानके सम्मुख जाता है। बहुत नम्र शब्दोंमें सही; किन्तु वह आज्ञा-आदेश नहीं देता तो अनुरोध तो करता ही है या और कुछ?

मैं कहाँ कहता हूँ कि आप ऐसा मत कीजिये। मनमें कामनाएँ हैं और उनकी पूर्तिके बिना बेचैनी है तो सकाम प्रार्थना, सकाम आराधना, सकाम अनुष्ठान होनेमें बुराई नहीं है। इसे छोड़ देनेका कोई आग्रह करे तो उसका अर्थ है कि वह लोगोंको उचित-अनुचित उद्योगमें लगा रहा है; क्योंकि सन्तोष, संयम, निष्कामता केवल उपदेशसे नहीं आती।

गोप भी कहते थे कन्हाईसे—'लाल ! तनिक पादपीठ तो उठा ला।'

गोपियाँ कहती थीं—'लाला ! मेरा गोबर उठवा दे।'

गोपकुमार तो कभी गायें घेरनेको और कभी कुछ लानेको इसे कहते ही रहते थे।

'मेरा लड़का अच्छा हो जाय तो मैं आपको सवा रुपयेका भोग लगाऊँगा।' ऐसी या इससे मिलती-जुलती मनौतियोंमें और गोपियोंकी इस मनुहारमें—'नीलमणि ! मेरा बछड़ा पकड़ ला तो तुझे आजका छाछ पिलाऊँ। आज बहुत मीठा छाछ बनाया है मैंने।' क्या अन्तर है ?

कन्हाई बहुत भोला है। इसे कोई भी प्रलोभन दे लेता है और इससे कुछ भी करा लेता है। यह सोच ही नहीं पाता कि जो कुछ इसे देनेको कहा जा रहा है, उसकी कोई महत्ता या उपयोगिता भी है या नहीं।

सेवा करना कन्हाईको खूब आता है। सच बात तो यह है कि सेवा करना इसीको ही आता है। गोपियोंका शृङ्गार कर देना हो या गोप-बालकोंका, अर्जुनका रथ हाँकना हो या युधिष्ठिरके यज्ञमें अतिथियोंके चरण धोने हों, नन्दानाई बनकर किसीके चरण दबाने हों या सखूबाईके साथ चक्की चलानी हो—ऐसा काम नहीं जो इसे न आता हो।

कोई कला ऐसी नहीं जो ब्रज-नवयुवराजके लिए अज्ञात हो। कोई काम नहीं जो कृष्णके लिए अशक्य हो और कमला स्वयं जिसकी चरण-सेविका है, उसके लिए दुर्लभ कुछ कैसे हो सकता है।

अपनी सुख-सुविधा, अपना मान और अपना स्वार्थ—यह तो अपूर्ण जीवके विषय हैं। परिपूर्ण सच्चिदानन्द आनन्दकन्द क्यों इस ओर देखेगा ? और दूसरोंके दोष, दूसरोंकी त्रुटि देखना आता भी है क्या इस भोले गोपकिशोरको ? यह उत्तमश्लोक कहा ही इसलिए जाता है कि इसे सबके उत्तम गुण ही दीखते हैं।

इसके कपोलपर कालिख लगा दो तो प्रफुल्ल—'इसने मुझे डिढौना लगाया।'

सखा कोई गोबर पोत दें तो सबको दिखाता फिरेगा—'परमपावन गोमयसे मेरे मित्रने मुझे अलंकृत किया।'

इसके कन्धेसे पटुका उतार लो या कण्ठसे वनमाल निकाल लो तो भी कूदेगा—'मुझे इस व्यर्थ भारसे इसने छुट्टी दी।'

कन्हाईको किसीका कोई व्यवहार बुरा लगता ही नहीं। असुर युद्ध करते हैं और आप उन्हें मारकर अपना धाम प्रदान करके अनुभव करते हैं—'पुरस्कार पर्याप्त नहीं बना। इसने तो आज अच्छा व्यायाम कराया। ऐसा उत्तम व्यायाम तो मल्लशालाके महामल्लको उसके शिष्य भी नहीं करा पाते।'

कन्हाई सर्वश्रेष्ठ सेवक है, आपको यह सत्य स्वीकार है ? श्रुति-संत सब कहते हैं कि यह मैया यशोदाका लाल पूर्ण पुरुष है। पूर्णका अर्थ ही होता है कि वह सब ओरसे, सब दृष्टिकोणसे पूर्ण हो। कृष्ण पूर्ण पुरुषोत्तम ही इसलिए है कि जिस दृष्टिकोणसे इसे देखा जायगा, उसीसे यह सर्वश्रेष्ठ दीखेगा।

आपको कोई ऐसा सेवक कभी मिलेगा जो आपको या आपके बच्चेको जो पढ़ना हो, वही पढ़ा दे। आपको गाकर, नाचकर रिझा भी दे और रोगी होनेपर आपकी चिकित्सा भी कर दे। आप जो चाहें, उसे चाहे जहाँसे जुटा भी लावे और आप उसके भरोसे निश्चित लम्बी तानकर सो भी सकें। संसारमें इन सब कामोंके लिए कितने सेवक रखने होंगे ? लेकिन कन्हाई तो इतने ही नहीं, दूसरे सहस्रों और कार्य भी करता रहता है।

दैत्येश्वर बलिने वामनको द्वारपाल बना लिया। अब वामन भले गदापाणि द्वारपर ही खड़े रहें; किन्तु नन्हें दैत्य बालक तक भी जानते हैं कि दैत्यराजके असम्मानकी बात सोचते ही उन श्रीहरिका चक्र मस्तकको शरीरसे काट फेंकता है।

दुर्भाग्य जागा था दुर्दम दशग्रीवका कि वह दिग्विजय करते सुतल पहुँच गया। वामनने वामपादाङ्गुष्ठसे उसे उपेक्षापूर्वक फेंक दिया और वह दस सहस्र योजन दूर जा गिरा। दुराग्रही था दशानन, इतनेपर भी उसने कुछ सीखा नहीं। फिर सुतल जा धमका। वामन भले कभी विराट् बने हों, हैं तो इस नटखट नन्दलालके ही अंश। उन्हें नटखटपन सूझ गया। दैत्य बालकोंको उभाड़ दिया उन्होंने—'यह मानवाकार दशसिर अश्व आगया है। इसे भागने मत देना।'

बालकोंको एक क्रीड़ा मिल गयी। सबोंने घेर-घारकर रावणक पकड़ा और अश्वशालामें बाँध दिया। त्रिलोकजयी राक्षसेश्वर पशुकी भाँति बाँधा गया। दैत्य बालक उसके कन्धोंपर धमा चौकड़ी करने लगे। यह तो बलिकी उदारता कि उन्होंने उसे पाशमुक्त किया, अन्यथा आयु बीत जाती वहाँ राक्षसराजको दाना-भूसा खाते।

केवल द्वारपाल बनाया था बलिने और द्वार-रक्षा भी नहीं दी थी। कहा यह था कि—'मैं प्रातः उठूँ तो मुझे द्वारपर आप गदाधरके दर्शन हों।'

वामन हों या नन्दतनय, इन्हें अधूरा काम करना नहीं आता।' अब आप देखिये कि आपकी सब सेवा कन्हाई ही करता है या कोई और? यह रहनेको पृथ्वी, पीनेको जल, भोजन बनानेको अग्नि, श्वास लेनेको वायु और घूमने-फिरनेको आकाश आपने जुटाये हैं? ये सूर्य, चन्द्र, तारक, नदियाँ, वन-पर्वत आपके निर्माण हैं? इन तरु-तृण, पुष्प-फल, अन्न, पशु-पक्षियोंके बिना आपका काम चल जाता?

आपत्ति आनेपर कोई छिपे रहकर आपको बचा लेता है। सचमुच आवश्यकता होनेपर कोई उसे पूरी कर देता है अकस्मात्, क्या ऐसा अनुभव जीवन में कभी आपने नहीं किया?

कन्हाई बहुत संकोची है। यह करके भी अपनेको प्रकट नहीं करता। यह अनन्त-अनन्त उपहार देकर भी दिखलाता यही है कि इसने कुछ नहीं दिया। आप जानते हैं न कि द्वारिकाके समान सुदामापुरी बन चुकी थी और तब भी सुदामाको इसने अपने यहाँसे उनकी फटी लँगोटीमें पैदल ही विदा कर दिया था, जबकि उनको रथपर भेजना कुछ कठिन नहीं था।

यह नटखट भी एक ही है। गोपियाँ कुछ करनेको कहें या गोपकुमार, यह पहिले अँगूठा ही नचाता है। थोड़ा खिझावेगा, मटकेगा, हँसेगा, कूदेगा। यह तो इसका स्वभाव है; किन्तु जो कहा गया है, उससे भी अधिक और सर्वोत्तम ढंगसे करेगा।

भले संत-श्रुति कहती हो कि परमात्मा स्वामी है और जीव उसका दास है; किन्तु सेवा कौन करता है सचमुच, यह सोचकर ठीक-ठीक देखिये। आप सेवा करेंगे? है इतनी क्षमता आपमें? नहीं है तो क्या आपको सेवक चाहिये? आप कन्हाईसे सेवा लेंगे?



निराश होना है ?

आपसे कहा किसने कि आप जो चाहते रहेंगे, उसे कन्हाई पूरा करता रहेगा ? श्रीव्रजेन्द्रनन्दन कोई भूत-प्रेत तो नहीं है कि आप इसे अपने अनुष्ठानादिसे वशमें कर लेंगे और इससे अपनी आज्ञाका पालन कराते रहेंगे।

मनुष्यकी कामनाओंका तो कोई ठिकाना नहीं है । एक पूरी हुई और दूसरी सिर उठा लेती है। संसारमें किसीकी भी सब कामनाएँ पूरी नहीं हुआ करतीं और सकाम व्यक्तिका प्रयोजन अपनी कामनापूर्तिसे होता है। वह जप-तप, आराधना भो करता है तो कामना पूरी करनेके लिए। इस प्रकारकी आराधनामें निष्ठा नहीं हुआ करती। कामना पूरी नहीं हुई तो निष्ठा हवा हो गयी। निराशाका एक कठोर धक्का सब आशा-विश्वास धूलिमें मिला देता है। व्यक्ति एकको छोड़कर दूसरेका आश्रय लेता भटकता रहता है।

आपने कामनापूर्तिके लिए कन्हाईका आश्रय पकड़ा है तो अच्छा है कि अभीसे निराश हो जायँ और किसी औरका पल्ला पकड़ें। इसने तो घोषणा कर रखी है—

'यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।'

—श्रीम०भा० १०.८८.८

'जिसपर मैं अनुग्रह करता हूँ, उसके धनका धीरे-धीरे हरण कर लेता हूँ।'

धन, सुख, स्वास्थ्य, सम्मान, पद पाना ही है तो इस गोपकुमारके पीछे आप क्यों पड़ते हैं ? यह उसका नहीं होता, जिसे संसारमें या परलोकमें भी इसके अतिरिक्त और कुछ चाहिये। यह तो उसका होता है जो गोस्वामी तुलसीदासकी भाँति कह सके—

'बनै तो रघुबर ते बनै, बिगरै तौ भरपूर।
तुलसी औरनि तें बनै, वा बनिबे में धूर॥

—दोहावली

इसे अपना बनानेके लिए भगवती पार्वतीके समान पहाड़ जैसी दृढ़ निष्ठा चाहिये—

'बरउँ शम्भु न त रहउँ कुमारी।'

देवी रुक्मिणीने पत्र भेजा तो उसमें स्पष्ट लिख दिया था—

'जह्यामसून् व्रतकृशान् शतजन्मभिः स्यात् ।'

—श्रीम० भा० १०. ५२. ४३

'श्यामसुन्दर ! यदि तुम मुझे नहीं अपनाते हो तो मैं अनशन करके बार-बार, जन्म-जन्ममें प्राण त्याग करती रहूँगी। सौ जन्ममें भी तो तुम मिलोगे।'

रुक्मिणीका हरण करने द्वारिकानाथ अकेले रथ लेकर चल पड़े थे; किन्तु यों ही नहीं चल पड़े थे। रुक्मिणीके समर्पणने, दृढ़ निश्चयने उन्हें विवश कर दिया था। इतना दृढ़ निश्चय न हो तो इसका द्वार व्यर्थ मत खटखटाइये।

आप यह भी मत सोचिये कि एक बार कन्हाई मिल जाय तो यही आपकी सब व्यवस्था करता रहेगा। यह अहीरका लड़का बहुत अटपटा है। इसके अत्यन्त प्रिय होनेपर भी और इसीपर निर्भर रहने वाले भी पाण्डवोंको चौदह वर्ष वन-वन भटकना पड़ा। महाराज विराटके यहाँ सेवक बनकर रहना पड़ा और अन्तमें भी वे हिमालयमें देहत्याग करने गये, जहाँ उनके शरीरकी अन्त्येष्टि करनेवाला भी नहीं पहुँचा।

जिस द्रुपदराज-तनयाको यह सखी कहता था और इसीपर जिसका भरोसा था, वह बेचारी भरी सभामें अपमानित की गयी। उसका वस्त्र इसने बढ़ाया सही; किन्तु कितने अपमानके पश्चात्? और विराटनगरमें ही क्या उसे कम कष्ट हुआ?

बात यह है कि कन्हाईका स्वभाव किसीके दस-बीस वर्षके कष्ट देखना नहीं है और न किसीकी कामना पूरी करते रहना है। इसे भीष्म इतने प्रिय कि एकान्तमें उनका ध्यान करता था और उन भीष्मको शर-शैय्या प्राप्त हुई। उनके अङ्ग-अङ्ग बाण-विद्ध हुए। यह इसके सामने ही हुआ। इतना ही नहीं, अर्जुनको उकसाकर स्वयं इसने कराया।

गोपियोंके प्रेमकी तुलना नहीं। प्रेमकी ध्वजा गोपियाँ और उन्हें इसने सौ वर्षका वियोग दिया। बहुत चर्चा की जाती है सुदामापर इसकी अनुकम्पा की; किन्तु सुदामा अपरिचित तो नहीं था। वह तो पढ़ते समयका मित्र था। कृष्ण सर्वज्ञ नहीं है? सुदामाने जो लम्बे वर्षों तक दरिद्रता भोगी, उसका पता द्वारिकानाथको नहीं था?

इसके विपरीत भगवान भोलेनाथका स्वभाव । वृकासुरने अपने शरीरका माँस काट-काट कर हवन किया था और जब सिर काटने लगा, धूर्जटि प्रकट हो गये । उन विश्वनाथके स्पर्शसे असुरका सर्वाङ्ग वज्रके समान हो गया—ठीक था । उसने शरीरका माँस चढ़ाया था, उसे अत्यन्त पुष्ट शरीर मिला ।

'वरं ब्रूहि !' भगवान नीलकण्ठने उस असुरसे न पूछा होता तो कुछ बिगड़ जाता । असुरने जब वरदान माँगा—'मैं जिस-जिसके मस्तकपर हाथ रखूँ, वह तत्काल भस्म हो जाय !' तब योगीश्वर सदाशिवको पता नहीं था कि इस दुष्टकी कुदृष्टि पार्वतीपर पड़ चुकी है और यह वरदानका प्रयोग पहिले मुझपर ही करने वाला है ?

'एवमस्तु !' शिवने सहज ही कह दिया और ऐसे संकटमें पड़ गये कि उससे भगवान विष्णुको उन्हें कौशलपूर्वक मुक्त करना पड़ा । क्या यह नहीं किया जा सकता था कि वे नीलकण्ठ प्रभु कह देते—'मेरे अतिरिक्त जिस-जिसके सिरपर हाथ रखोगे, वह भस्म हो जायगा ।'

इस प्रकारके वरदानको कोई भी अनुचित कह सकता था ? लेकिन त्रिलोचनको किसीकी मनोवृत्तिकी ओर ध्यान देनेका अवकाश ही नहीं रहता । सदा इतने अन्तर्मुख रहते हैं कि कौन क्या चाहता है, क्यों चाहता है, यह कुछ नहीं देखते । ऐसे 'एवमस्तु' कहकर पिण्ड छुड़ाते हैं जैसे आप किसी महत्वके काममें लगे हों और कोई जिद्दी भिखारी आ टपके । उसे पाँच-दस पैसेका सिक्का फेंककर आप पिण्ड छुड़ा लिया करते हो ।

भगवान शिवको तो दूसरेकी ओर ध्यान देनेका ही अवकाश नहीं और जो दूसरे देवी-देवता हैं, स्वभावके सम्बन्धमें वे भूत-प्रेतोंसे कुछ अधिक उदार नहीं हैं । आराधकको ठीक आराधना करना चाहिये, इतना ही वे देखते हैं । इसके पश्चात् आराधक क्या वरदान माँगता है, यह उनमें कोई नहीं देखता । उस वरदानके फलस्वरूप उसे नरक भी अन्तमें मिलने वाला हो तो देवता प्रायः रोकते नहीं । आराधकको ही ठीक निर्णय करना चाहिये ।

इससे उलटी प्रकृति है भगवान नारायणकी, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामकी और इस कन्हाईकी । ये यह देखते ही नहीं कि व्यक्ति कितना आतुर है, कितना गिड़गिड़ा रहा है और कितने कठोर जप-तप, अनुष्ठानमें

लगा है । कोई एक बार इनका आश्रय ले तो इनका हो गया । उसे ये अपना मान लेते हैं ।

'कृष्ण तवास्मि' एक बार किसीने कहा तो कन्हाई झट कहता है—'हाँ, तू मेरा है ।'

अब हो गया । अब आप क्या चाहते हैं और क्या करते हैं, इसका कुछ अर्थ नहीं रहा । आपका परम हित किसमें है, कन्हाई केवल यह देखेगा और उसके अनुकूल ही व्यवस्था करेगा । भले इसमें आपको कितना भी कष्ट हो और आप कितना भी छटपटाओ ।

छोटा बालक अग्नि या सर्प पकड़नेको मचल पड़े, रोये या हाथ-पैर पीटे, माता उसे ऐसा करने देगी ? उसे रोकनेके लिए दो थप्पड़ मारना आवश्यक हो तो माता मारेगी नहीं ? जीव तो अज्ञ है, अपना हित-अहित समझता ही नहीं । यह इसे सुन-समझकर भी समझना नहीं चाहता कि कामना विष हैं । भोग रोग एवं बन्धन देते हैं । वह तो इनको पानेके लिए ही हाथ-पैर मारता है ।

आपने कन्हाईका आश्रय पकड़ा तभी सोच लेना था ; क्योंकि यह पकड़कर छोड़ना नहीं जानता । अब आप इससे निराश हो रहे हैं । यह आपका अभीष्ट पूरा नहीं करता । आपके साथ मेरी सहानुभूति है ; किन्तु इस नटखटपर किसीका कोई वश तो है नहीं । अब आपके सब सकाम अनुष्ठान—भली प्रकार सावधानीसे किये गये अनुष्ठान, जप-तप, देवाराधनकी सफलता सन्दिग्ध हो चुकी है । यह जितना उसे सफल होने देना चाहेगा, बस उतना । यह जिसमें आपकी कोई बड़ी हानि, बहुत बाधा नहीं देखेगा, केवल उतनेको पूरा होने देगा । यह जिसे पूरा नहीं होने देना चाहता, इसकी सुकुमार अँगुलियोंके संकेतकी उपेक्षा करना किसी देवी-देवताके वशकी बात है ? वह कितना भी आराधित करके प्रसन्न किया जाय, विवश है वह ।

आपको कन्हाईसे निराश होना है तो इसकी ओर आइये ही मत । आगये तो भूल हो गयी और अब तो हो गयी । यह न निराश होना जानता, न छोड़ना जानता । अब बात आपके वशमें नहीं रही ।



आशा करना है—

आशा करनेका भी कारण होता है। अकस्मात् कोई किसीसे आशा नहीं करता। किसीने सहायता की है संकटमें, कोई किसी अवसरपर काम आया है। किसीने वचन दिया है। ये सब या इनमें-से कोई एक कारण न भी हो तो भी आशा की जाती है या हो जाती है, जिसकी प्रशंसा सुनी हो, जिसकी उदारतापर दूसरोंकी आस्था हो, सत्पुरुष जिसका विश्वास दिलाते हों।

श्रीव्रजेन्द्रनन्दनके सम्बन्धमें तो ये सबकी सब बातें हैं। शास्त्र और संत इसे उदारचक्रचूड़ामणि कहते हैं। इसने स्वयं वचन दे रखा है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

बा. रा. यु. १८. ३३

एक बार भी शरणागत होकर जो कह देता है—'मैं तुम्हारा हूँ, उसे समस्त प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ—यह मेरा व्रत है।'

क्या हुआ कि यह वात मर्यादा पुरुषोत्तम रूपमें कही गयी। इससे तो इसकी और पुष्टि ही हुई। इसमें आपका नटखटपन नहीं है, यह और स्पष्ट हो गया और इस मयूरमुकुटी वेशमें भी तो इसने कहा—

कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।

आप सचमुच हृदयपर हाथ रखकर ईमानदारीसे कह सकते हैं कि कृष्णचन्द्रने संकटमें कभी आपकी सहायता नहीं की? अथवा यह कभी आपके काम आया ही नहीं?

संसारमें जितने प्राणी हैं, उनमें कोई ऐसा नहीं जो संकटमें पड़ा हो और असहाय हो गया हो तब उसकी सहायता करने इसके अलक्ष्य कर न पहुँच गये हों। पशु-पक्षी, कीट-पतंग सबकी सहायता करता है यह; किन्तु पशु-पक्षी आदि तो अनुभवकी स्मृति कम ही रखते हैं। मनुष्य भी प्रायः द्विपाद पशु ही बना रहता है। उसका विवेक कम ही जागता है। संकटसे

उबर आनेके थोड़ी ही देर पश्चात् भूल जाता है कि किसीने अदृश्य रहकर उसकी सहायता न की होती तो पता नहीं उसकी कितनी दयनीय दशा हो जाती। उसका जीवन बच भी पाता या नहीं।

इस प्रकार आशा करनेके जितने कारण हैं, सबके सब विद्यमान हैं कि आप कन्हाईसे आशा करें। आप इससे आशा करते हैं तो आपकी आशा अनुचित है, ऐसा कहनेका साहस किसीमें नहीं है। सच्ची बात तो यह है कि आशा करनी ही इसीसे चाहिये, दूसरे किसीसे की गयी आशा सफल ही होगी, सदा सन्देह रहेगा।

किसीसे भी की गयी आशा सदा सफल नहीं हुआ करती। सगे पिता या वात्सल्यमयी मातासे की गयी आशा भी विफल हो जा सकती है; क्योंकि मनुष्य अल्पशक्ति है। उसके पास जिसने साधनकी कल्पना आपने की है, उतने साधन नहीं भी हो सकते हैं। देवताओं तककी शक्ति-सीमा होती है।

एक प्रख्यात कथावक्ता उदाहरण देते हैं कि एक सकाम साधकने देवी शीतलाकी आराधना की। देवी प्रसन्न होकर प्रकट हुईं। वरदान माँगनेको कहा। साधकने माँगा—'मुझे एक उत्तम घोड़ा दे दीजिये।'

शीतलाने डाँट दिया—'मूर्ख! मेरे पास घोड़ा होता तो मैं गधेपर बैठा करती?'

व्यक्तिकी—वह मनुष्य हो या देवता, शक्ति-सीमा होती है। यह शक्ति-सीमा घटती-बढ़ती रहती है। जो आज कई सहस्र दान कर सकता है, वह किसी दिन अर्थ-संकटमें भी हो सकता है और यह बड़े मजेसे सम्भव है कि आपको उसकी विपन्नताका तनिक भी अनुमान न हो। यही अवस्था बल तथा दूसरे साधनोंकी है।

व्यक्तिकी परिस्थिति परिवर्तित होती रहती है। एक व्यक्ति उदार है, उच्च पदपर है; किन्तु ऐसा भी समय हो सकता है जब वह अपनी ही स्थिति संशयग्रस्त समझे और चाहकर भी किसीकी कोई सहायता न कर सके।

व्यक्तिका मनोभाव सदा एक जैसा नहीं रहता। जो व्यक्ति आग्रह करके आज आपको कई सहस्र दे रहा है, वही किसी अवसरपर माँगनेपर भी दस-पाँच देना अस्वीकार कर दे सकता है, भले उसकी स्थिति अच्छी

ही हो । सगी माता अनेक बार शिशुके मचलनेपर भी छोटी-मोटी वस्तुएँ तक देना अस्वीकार कर देती है । पीछे भले स्वयं ही इसके लिए पश्चाताप करे ।

इस प्रकार व्यक्ति सहायता करनेकी स्थितिमें नहीं भी हो सकता है । वह स्वयं संकटापन्न या अर्थहीन हो सकता है । रोगी-दुर्बल हो सकता है । वह कभी आपके प्रति अनुदार-निष्ठुर हो जा सकता है और यह सब न हो तो भी यह सम्भव है कि जब वह आपसे दूर हो, आपकी स्थितिका उसे पता न लगे । आपके सन्देश या पत्र उस तक न पहुँचें । मुझे पता है कि एक सज्जनके नाम आये पत्र उनकी पत्नी खोल लेती थीं और किसीने आर्थिक सहायता माँगी हो तो पत्र अपने पतिको देती ही नहीं थी । एक बार तो एक सज्जनको पत्र मिला तो वे ऐसे काममें लगे थे कि पत्र खोला ही नहीं और फिर भूल ही गये कि उन्हें कोई पत्र मिला है । दो महीने पत्र उनकी मेजकी दराजमें ही पड़ा रहा ।

मनुष्यसे आशा करनेपर यह सब बाधाएँ आती हैं और देवताओंसे की गयी आशामें बहुधा रुकावटें आया करती हैं । देवता रुष्ट-तुष्ट होते ही रहते हैं ।

आप क्या सोचते हैं कि कन्हाई भी कभी रोगी या दुर्बल होता होगा ? रोग, दुःख, दुर्बलता इसके स्मरणसे नष्ट हो जाती हैं । इसके कभी कंगाल होनेकी सम्भावना करे वह मूर्ख । कमला इसके नेत्रोंका संकेत देखती ही रहती हैं और यह चाहे जितना खेलनेमें निमग्न रहे, इसकी सर्वज्ञतापर आवरण डालने वाली शक्ति कोई है ? इस अशरण-शरण, अनाथनाथ, दीनबन्धु, आर्तत्राताको निष्ठुर होना आता नहीं । ऐसी अवस्थामें कन्हाईसे की गयी आशाके असफल होनेकी कोई सम्भावना है ?

कन्हाईसे की गयी आशा भी असफल होती है—यदि आशा अनधिकार है अथवा यदि आशाकी पूर्तिमें आपकी हानि है । माता भले आश्वासन दे दे अपने रोगी पुत्रको कि वह उसे सायंकाल खीर-पूड़ी खिला देगी ; किन्तु पुत्रकी यह आशा वह पूरी करेगी ? हम आप ऐसी ही आशाएँ करते रहते हैं और उन्हें असफल ही होना है ।

किसी विश्वविद्यालयके कुलपतिका पुत्र मचल जाय कि पिता उसे सर्वोच्च उपाधिका प्रमाणपत्र दे दें, कोई कुलपति पुत्रकी ऐसी माँग, ऐसी आशा पूरी कर देगा ? आप कन्हाईसे दर्शन देने, मनको एकाग्र कर देने या

ऐसी ही किसी बातकी प्रार्थना करते हो और आशा करते हो कि वह इसे पूरी कर देगा। आपको अपनी माँग निर्दोष लगती है ; किन्तु आप देखते ही नहीं हो कि आप उस स्थितिको प्राप्त करनेके अधिकारी भी हो या नहीं।

एक साधकके आग्रहपर एक संतने उन्हें हनुमानजीका दर्शन करा दिया ; किन्तु उसके पश्चात् वे साधक पागल हो गये। मन-मस्तिष्ककी एक स्थिति होती है। वह धीरे-धीरे अभ्याससे उच्च स्थितिमें पहुँचता है। रसस-तमसमें स्थित मस्तिष्क या मनमें विशुद्ध सत्त्वका प्रकाश बलात् करा भी दिया जाय तो उसका सन्तुलन नष्ट हो जानेका भय बना रहता है।

आजकल फलोंको बलात् कार्बाइड डालकर पका देते हैं, इससे फल देखनेमें भले सुन्दर लगें, उनका रस बिगड़ जाता है। वे स्वादहीन ही नहीं होते, स्वास्थ्यके लिए भी हानिकर हो जाते हैं।

आप कैसे आशा करते हैं कि कन्हाई ऐसी कोई भूल करेगा। लेकिन आशा करने योग्य दूसरा कोई है नहीं। अतः आप यदि इन घनसुन्दरसे आशा करते हैं तो ठीक करते हैं। केवल एक बात और—वह यह कि इससे आशा करनी है तो केवल इसीसे आशा कीजिये। दूसरे किसीसे —अपनी भी शक्तिकी आशा करेंगे तो यह निष्क्रिय बनकर बैठ जायगा। यही इसका नटखटपन है।



कुछ लेना है ?—

आपको क्या लेना है—यह कौन पूछता है। परमपदकी आवश्यकता होगी तो हम कन्हाईको ढूँढ़ेंगे और काँटा निकालने या फटा वस्त्र सीनेके लिए सुईकी आवश्यकता होगी तो किसी भिखारीदासके पास जायँगे ? बुरी बात है, निष्काम-सकामकी विवेचना व्यर्थ है। कहा किसने कि निष्काम भक्त होता है और सकाम भक्त नहीं हुआ करता। कृष्णने तो आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थीको भी भक्त ही कहा है और कह दिया—

'उदाराः सर्व एवैते।' —गीता

जो बड़े भक्त हैं, निष्काम हैं, उन्हें प्रणाम कर लीजिये। बड़े बननेकी आवश्यकता क्या है ? बड़ोंसे कन्हाईकी पटती नहीं, यह आपको पता है या नहीं ? यह स्वयं कहाँ बहुत बड़ा है। क्या हुआ कि गोपकुमारोंमें तोक, अंशु, देवप्रस्थ, तेजस्वी जैसे दस-बीस बालक इससे छोटे हैं। अधिकांश तो इससे बड़े या समवयस्क ही हैं। यह स्वयं छोटा-सा सुकुमार गोपकुमार है। अतः इसके समीप क्या बड़प्पन लेकर जाया जा सकता है।

पतिव्रता स्त्री कौन है—निष्काम या सकाम ? जो पतिकी निष्काम सेवा करेगी और रोटी, कपड़ा पड़ोसियोंसे माँगती फिरेगी, वह पतिका यश समुज्ज्वल करेगी ? क्या कहेंगे उसके पतिको दूसरे लोग ?

एक भक्तराजको मैं जानता था। आप भी ऐसे अनेकोंको जानते होंगे। निष्काम जप, निष्काम पाठ-पूजन, निष्काम भावसे नियम पूर्वक मन्दिर-दर्शन चलता था उनका। कथा-सत्संगका कोई अवसर चूकते नहीं थे; किन्तु प्रशासनके अधिकारियोंकी सेवामें उपस्थित रहनेमें, उनको पत्र-पुष्प चढ़ाते रहनेमें भी प्रमाद नहीं करते थे; क्योंकि बड़े व्यापारी थे और वड़े व्यापारमें मिलावट, काला-बाजारी नहीं चलेगी, यह वे सोच भी नहीं सकते थे। यह सब निष्काम भावसे करते होंगे ?

पूजा, जप, प्रार्थना निष्काम; और दूकानपर तो काला-सफेद, सच-झूठ चलता ही है। ऐसे निष्कामकी बात कन्हाई सुनेगा या ताली बजाकर हँसेगा ?

आपसे कोई मित्र, पत्नी, भाई या पुत्र कह सकता है—'आज जो आपकी जेबमें या तिजोरीमें हो, सब दे दीजिये!' बहुत सम्भव है कि आप उसकी बात न टाल सकें; क्योंकि वह तो दस-पाँच पैसेसे लेकर सैकड़ों तक आपसे लेता है। बार-बार लेता है और आप जानते हैं कि वह दूसरे किसीके सामने हाथ नहीं फैलाता।

कलको कोई सड़कके किनारे बैठने वाला भिखारी आकर कहे—'लालाजी! मैं प्रतिदिन नियमसे निष्काम भावसे आपको हाथ जोड़ता हूँ। अव अपनी तिजोरीकी चाबी मुझे दे दीजिये!'

आपकी प्रतिक्रिया क्या होगी? ये आजकलके निष्काम भक्तराज मोक्ष न भी चाहते होंगे तो भक्ति चाहते होंगे या नहीं? यह तिजोरीकी चाबीसे अधिक चाहना है या कम? कुशल यही है कि कन्हाईको क्रोध करना नहीं आता। लेकिन यह ताली बजाकर हँसेगा या और कुछ करेगा?

निष्काम भजन बहुत बहुत श्रेष्ठ है, इसमें दो मत नहीं। लेकिन निष्काम भजन निष्काम व्यक्तिके द्वारा ही होता है। मनमें कामनाएँ भरी हों तो भजन निष्काम हुआ नहीं करता। केवल निष्कामताकी विडम्बना होती है।

मोर दास कहाइ नर आसा।
करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा॥–श्रीरा. च. मा. उत्तर, ४५.३

सम्राट्का—अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड-नायकका शरणागत और जिस-तिसके सामने हाथ फैलाता फिरेगा, जहाँ-तहाँ भयसे काँपता रहेगा, उसकी शरणागति सच्ची है? शरणागतिकी छायाने भी उसे स्पर्श किया है?

व्रजमें निष्काम भक्त आपको ढूँढ़े नहीं मिलेंगे। गोपकुमारोंने तो द्विजातिके लिए निषिद्ध तालफलोंके लिए माँग की—'दाऊ दादा! कनूँ! यह पके ताल फलोंकी सुगन्धि आ रही है। हमारे मुँहमें पानी आ रहा है। इनके खानेकी बहुत इच्छा है; किन्तु दुरात्मा धेनुक और उसके परिवारके गधे बहुत हिंसक हैं। तालवनमें वे किसीको घुसने ही नहीं देते। तुम दोनों हमें ताल नहीं दोगे? तुम्हें भी उन राक्षस गधोंका डर लगता है?'

न दाऊने और न कन्हाईने ही कहा—'बुरी बात है। तुम सब ताल खाओगे ?' दोनों भाई तो मित्रोंकी बात सुनते ही उठ खड़े हुए।

यह दूसरी बात है कि धेनुक और उसके परिवारकी मृत्युके पश्चात् किसी बालकने तालफलोंको सूँघा तक नहीं। आपने सुना नहीं है—

'जहाँ राम तहँ काम नहिं।'

कन्हाई भी रहेगा और कामना भी रहेगी ? रहे कामना तो रहने दीजिये। काम ही प्रद्युम्न बना था और बाप-बेटे क्या कभी साथ नहीं रहते ? लेकिन कृष्ण रहे तो कामना कृष्ण-कामना बनकर ही रहती है। स्वसुखकी कामना तब तक है, जब तक कन्हाई नहीं है।

तालफलोंकी सुगन्धि आयी और भली लगी। बालकोंको लगा कि कदाचित इन दोनों भाइयोंको ये फल प्रिय लगेंगे। अतः प्रेमकी रीति ही यह कि—'फल हमको चाहिये। हमारी जीभपर पानी आ रहा है। हमें दो ये फल।' लेकिन जब दोनों भाइयोंने फलोंके प्रति कोई कुतूहल नहीं दिखाया तो गोपकुमारोंको ही कहाँ ताल-भक्षण करना था।

'कनूँ ! बड़ी भूख लगी है। कहींसे भोजनकी व्यवस्था कर।' एक दिन वनमें बालकोंने यह भी कहा था। सचमुच बालक अपनी क्षुधासे व्याकुल थे ? जब विप्र-पत्नियाँ स्वादिष्ट पक्वान्नोंके थाल सजाकर ले आयीं, कोई झपटा ? कोई आतुर हुआ ? बालक जानते हैं—ठीक जानते हैं कि कन्हाई सबसे सुकुमार है। इसे क्षुधा शीघ्र लगती है। इसके अधर सूखते-से लगे, मुख कुम्हलाने लगा तो क्या इससे यह कहते कि तू भूखा है ? ऐसी बात यह सुनता ?

कन्हाई मिल जाता है, इसकी प्रीति मिल जाती है तो अपनी इन्द्रिय-प्रीति सूझती ही नहीं। शरीरके इस गन्दे चिथड़ेका मोह पता नहीं कहाँ हवा हो जाता है। लोकमान्य तिलकने 'गीता-रहस्य' में तुकाराम-जीकी दो पंक्तियाँ उद्धृत कीं। 'गीता-रहस्य' के अनुवादकने उन पंक्तियोंका पद्यानुवाद प्रस्तुत किया है—

चतुराई चेतना सभी चूल्हेमें जावे।
बस मेरा मन एक कृष्ण-चरणाश्रय पावे।।

लेकिन जब तक कन्हाई मिल नहीं जाता, इसकी प्रीति भी प्राप्त नहीं है और कामनाएँ मनमें हैं, तब तक निष्कामताकी ध्वजा उड़ सकेगी? जब अन्तर निष्काम नहीं है तो निष्काम बननेका बाह्य-प्रयत्न दम्भ रहेगा या और कुछ?

हमें चाहिये सब कुछ श्याम!
मनमें मेरे शत-शत काम॥
किन्तु तुम्हारे करका दान--
रहे हमारा इतना मान॥
भले विपन्न बनावे भाग्य।
जगके उपकारोंमें आग॥

कामना धन्य बनती है यदि वह केवल कृष्ण-निष्ठा है। कामना तो इसके समीप तक पहुँचा देती है और वहाँ पहुँचकर स्वयं लुप्त हो जाती है। कामना है, यह न अपराध है, न दोष। लेकिन एक दृढ़ निश्चय चाहिये कामनाके साथ—' कामना पूरी हो या न हो अथवा ठीक विपरीत परिणाम आ जाय; किन्तु दूसरा कोई हमारी कामना पूरी करता हो तो वह पूर्ति हमें नहीं चाहिये। हमें कामनाकी पूर्ति तो चाहिये; किन्तु कन्हाईके करोंसे ही पूर्ति चाहिये।'

आपको कन्हाईसे कुछ लेना है तो ठीक है; किन्तु इसीसे लेना है। दूसरा कोई हाथ जोड़कर, पैर पकड़कर भी दे तो नहीं लेना। जमे रहिये इसपर और फिर क्या लेना है, इसकी चर्चा व्यर्थ है।



कुछ नहीं लेना–

आपको केवल कन्हाईसे ही कुछ नहीं लेना या किसीसे कुछ नहीं लेना ? यदि आपको किसीसे कुछ नहीं लेना है तो आप वन्दनीय हैं। जिसको किसीसे कोई अपेक्षा नहीं है, वह तो पूर्णकाम है। ऐसे आत्माराम पूर्णकाम पुरुष तो देवताओंके भी वन्दनीय हैं।

चाहिये तो बहुत कुछ ; किन्तु कन्हाईसे नहीं चाहिये। अपने पौरुषसे जो प्राप्त हो, उसीमें सन्तुष्ट रहना है या प्रारब्धसे जो प्राप्त हो, उसीसे निर्वाह करना है ? प्रारब्ध-प्राप्तमें सन्तुष्ट रहने वाले भी वन्दनीय ही हैं ; क्योंकि उन्होंने असन्तोषपर तो विजय प्राप्त ही कर ली है और कामनाओं-पर भी नियन्त्रण कर लिया है।

अपने पौरुषसे प्राप्त करनेकी बात करने वाले अज्ञ हैं। दया करने योग्य हैं वे। वे यह भी नहीं जानते कि पौरुषका अधिकांश फल इस जन्ममें नहीं मिलता। वे तो चटनी बनाकर रोटी खानेके लिए इमलीका वृक्ष रोपित करने वाले लोगोंमें हैं। आपको पता है कि इमलीका वृक्ष साठ वर्षमें फल देना प्रारम्भ करता है ? कर्मका फल बीज-वृक्ष न्यायसे मिलता है। वृक्ष लगा दीजिये। यदि सब परिस्थितियाँ अनुकूल बनी रहीं तो समय आनेपर वृक्ष खूब फल देगा। बहुत वर्षों तक देता रहेगा। लेकिन बीज सड़ जाय, अंकुरित होकर सूख जाय, कोई चर जाय या उखाड़ दे तो ? कर्मके साथ बहुत-से 'तो' लगे हैं।

कन्हाईसे कुछ नहीं लेना है, इसलिए कि आप कन्हाईको ही नहीं मानते। आप ईश्वरका सगुण-निर्गुण, साकार–निराकार कोई रूप मानते हैं, तब तो कृष्णको ही मानते हैं। सब नाम, सब रूप इसीके हैं। किसी एक नाम या रूपमें आपकी रुचि नहीं तो कोई बात नहीं।

आप ईश्वरकी ही सत्ता नहीं मानते ? धन्यवाद ! बहुत बुद्धिमान हैं आप ; क्योंकि आप मृत्यु, अज्ञान और दुःख चाहते हैं। भला और भी कोई आपको अपना साथी मिला, जो मरना, मूर्ख बने रहना और बराबर दुःख पाना चाहता हो ? मरना न चाहनेका अर्थ है सत्—सत्ता चाहना। बेवकूफ बनना न चाहनेका तात्पर्य है ज्ञान—चित् चाहना और दुःख न चाहना--

आनन्द चाहना है, यह सीधी बात। सत्+चित्+आनन्द=सच्चिदानन्दको आप चाहेंगे भी और कहेंगे कि वह है ही नहीं ? ऐसे बुद्धिमान आप कि जो तथ्य ही नहीं, उसकी चाह छोड़ नहीं सकते ?

अपनेको अनीश्वरवादी कहना या मानना अज्ञतापूर्ण अहंकारके अतिरिक्त कुछ नहीं है ; क्योंकि अनीश्वरवादी कोई होता नहीं। कोई प्राणी नहीं जो अपनी सत्ता न चाहे, ज्ञान न चाहे और सुख न चाहे। इनमें-से भी कोई एक या दो नहीं, तीनों चाहिये ; क्योंकि सत्ता नहीं होगी तो ज्ञान या सुख किसे होगा ? ज्ञान नहीं होगा तो सुखका पता लगेगा ? सत्ता, ज्ञान, आनन्द परस्पर सदा सम्बद्ध हैं और इनकी चाह प्राणधारी छोड़ नहीं सकता। यह सच्चिदानन्द ही तो ईश्वर है। अब दूसरा कोई नाम आप दे लें, कुछ अन्तर पड़ेगा ?

कुछ नहीं लेना और कुछ नहीं चाहना, ये दोनों भिन्न-भिन्न स्थितियाँ हैं। कुछ नहीं लेना सम्भव नहीं है और कुछ नहीं चाहना बहुत उत्तम स्थिति है। कुछ नहीं लेना यदि प्रेमका निर्णय है तो ऐसा रूठना भी उत्तम। यह तो मान है। आप कन्हाईसे रूठे हैं तो यह मना लेगा। इसे मनाना बहुत अच्छा आता है। एक नियम है कि प्रेममें विवाद हो तो वह हारता है, जिसमें प्रीति अधिक होती है और अनन्त प्रेमार्णव कन्हाईसे अधिक प्रीति प्राणीमें कहाँसे आवेगी।

गोपबालक रूठते थे, गोपियाँ रूठती थीं और श्रीकीर्तिकुमारीका मान तो प्रसिद्ध ही है। रूठता नहीं केवल श्रीव्रजेन्द्र-नन्दन। इसे रूठना—मान करना आता ही नहीं। यही रूठ जाय तो जीवको शरण कौन देगा ? इसे तो मनाना ही आता है और खूब आता है। सखाओंके, गोपियोंके भी हाथ जोड़ता था, पैर पड़ता था, हा हा खाता था। इसके कमलदल विशाल लोचनोंमें अश्रु देखना तो किसीके वशकी बात नहीं। अतः जब यह नेत्र भर लेता है, किसीका मान टिक सकेगा।

यह बहुत नटखट है। चिढ़ाता है, खिझाता है। स्वयं ही रूठनेका निमित्त उपस्थित करता है। रूठेको मनानेमें, बड़ोंसे डाँट खानेमें पता नहीं इसे क्या आनन्द आता है ; अन्यथा मैया इसे बाँधकर सुखी हुई होगी ? लेकिन यह ऊधमी जब तंग ही कर लेता है ·····।

आपको इससे कुछ नहीं लेना। आप रूठे हो ? क्यों रूठे हो, यह मैं नहीं पूछूँगा। मैं कहाँ इसकी मध्यस्थता (दलाली) करने चला हूँ। इसने

छेड़ा होगा, तंग किया होगा। यह इसका स्वभाव है। आपको कोई कैसे दोष देगा। आपने बहुत आर्तभावसे, बहुत ललकसे कुछ माँगा होगा। पूरे विश्वाससे माँगा होगा और इसने अँगूठा दिखा दिया। कोई रुष्ट नहीं होगा?

देवर्षि नारद विवाह करना चाहते थे। कोई अधर्म तो नहीं करने जा रहे थे। देवर्षि संन्यासी तो हैं नहीं। वे तो ब्रह्मचारी ही हैं। विश्व-मोहिनीपर मन मुग्ध हो गया, यह क्या देवर्षिका दोष था? यह किसकी मायाकी कारस्तानी थी? कितने आतुर, कितने उत्सुक थे देवर्षि। कितना अपनापन मानकर उन्होंने पुकार की? क्या बिगड़ जाता यदि देवर्षिका विवाह हो जाता? विश्वमोहिनी राजकन्या ही तो थी। क्या राजकन्याओंसे ऋषियोंने विवाह नहीं किया है? क्या यह कोई नियम है कि भक्तोंको अविवाहित ही रहना पड़ेगा? लेकिन कोई अपने स्वभावका क्या करे? शेषशायी भी इसी नटखटके अंश हैं। उन्हें भी देवर्षिको छेड़नेकी सूझ गयी। न देते सौन्दर्य; किन्तु सुरासुर वन्दनीय देवर्षिको बन्दरमुहाँ बना दिया। देवर्षि क्रुद्ध हुए, शाप दिया—क्या अनुचित किया? रही बात मनानेकी, सो मनाना तो कोई इससे सीखे।

अब आप रूठे हैं तो बिना खोजबीन कहा जा सकता है कि दोष आपका हो नहीं सकता। दोष कन्हाईका ही होगा। अतः डटकर रूठे रहिये। यह कितना भी मनावे, मानिये मत। लेकिन कब तक रूठे रहेंगे आप? सचमुच यह मनावेगा तो मान टिकेगा?

नन्दनन्दन बहुत सुकुमार है। लोग इसे दौड़ा-दौड़ा कर थका देते हैं। यह इतना भोला है कि किसीको अस्वीकार नहीं कर पाता। क्या हुआ कि सिर हिला देता है, अँगूठा दिखा देता है, तनिक मटक लेता है; किन्तु करता है, कर ही देता है सबका काम। लोग तो रात-दिन 'यह चाहिये, वह चाहिये' कहते ही रहते हैं। आवश्यकतावश ही कहते हों सो नहीं, अनावश्यक भी कहते हैं। कृत्रिम आवश्यकता बनाते रहते हैं। अनावश्यक माँगें करते रहते हैं और यह परमसुकुमार थकता रहता है।

कृष्णसे कुछ कराना निष्ठुरता है। इससे कुछ लेना निर्दयता है। इसे तो दिया ही दिया जाना चाहिये। इसकी सेवा की जानी चाहिये। इससे प्रार्थना क्यों? इसे तो आशीर्वाद दिया जाना चाहिये। क्या हुआ जो कष्ट आया है, क्या बिगड़ता है जो अभाव उत्पन्न हुआ। कष्ट और अभाव—

रोग और मृत्यु अविनाशीका कुछ बिगाड़ लेंगे ? शरीरकी ही तो इनसे क्षति होनी है। शरीर अमर बना रहेगा ? यह जर्जर नहीं होगा और मरेगा नहीं ? जब इसे नष्ट होना ही है, इसके पीछे कन्हाईको कष्ट दिया जाय ?

क्यों लेना है कुछ कन्हाईसे ? यह ब्रज-जीवन-सर्वस्व खेलता-कूदता आनन्द मनाता अच्छा नहीं लगता ? इसकी क्रीड़ामें बाधक बनना क्या कोई अच्छी बात है ? इससे कुछ लेनेकी बात की जायगी तो इसकी क्रीड़ामें बाधा नहीं पड़ेगी ? यह बाधा भी किसके सुख-सम्मान-सुविधाके लिए ? शरीर, शरीरके सम्बन्धी, शरीरका नाम—इनमें-से किसीके लिए ? छिः !

लेना है, लेना है—की तो धुन चढ़ी ही है। इससे लेना है—उससे लेना है। लेना ही है या देना भी है कुछ ? कन्हाईको कुछ देना है, यह पुनीत संकल्प क्यों मनमें नहीं उठता ? सबसे तो लेना-लेना है ही, इस नन्हें, भोले, सुकुमारसे कुछ न लेना हो, इससे कोई माँग न की जाय तो क्या काम नहीं चलता ?

कन्हाईसे कुछ लेना नहीं है। क्या कन्हाई कृपण हो गया है ? क्या अनुदार हो गया है ? क्या यह स्वयं हमारी आवश्यकता देखता-जानता नहीं ? क्या हमारी आवश्यकता पूरी करते रहनेकी इसे धुन नहीं चढ़ी रहती ? यह केवल अपथ्य नहीं देता। यह वह नहीं देता, जिसे पाकर हमारी हानि हो। कोई दोष है इसमें ?

इसे तो देते रहनेकी धुन चढ़ी रहती है। यह कहाँ हमारे आपके अस्वीकारको सुनता है। अब इतनेपर भी इससे माँग की जाय—तुच्छताकी हद हो गयी।

कन्हाईसे कुछ नहीं लेना है, यह तो ठीक; किन्तु क्यों कुछ नहीं लेना है, यह आप देख लें। इस न लेनेमें भी बहुत-बहुत अन्तर है और यह अन्तर व्यक्तिको पतनोन्मुख भी कर सकता है, परम पावन भी बना सकता है।



सम्बन्ध नहीं रखना ?—

'मुझे आपके इस नटखट कन्हाईसे कोई सम्बन्ध नहीं रखना।' वे बहुत रुष्ट थे। पता नहीं इसने उन्हें कैसे चिढ़ा दिया था।

'आपके मुखमें घी-चक्कर!' मुझे उनके रोषमें आनन्द आया। मैं उठा और थोड़ी मोम उठा लाया—'इसे झटपट नाक-कानमें भर लीजिये। नेत्र बन्द कीजिये। मैं शेष व्यवस्था करने जाता हूँ।'

'क्यों? नाक-कानमें मोम क्यों?' वे मित्र थे, इसलिए उनसे मैं खुलकर परिहास कर सकता था। वे चौंककर पूछने लगे—'तुम किस शेष व्यवस्थाकी बात करते हो?'

'तुम पता नहीं कब सिद्ध योगी हो गये। मुझे तुमने कुछ कभी बतलाया ही नहीं।' मैंने उनकी बातपर ध्यान नहीं दिया—'अब तुम निर्बीज निर्विकल्प समाधिमें बैठने जा रहे हो तो फिर उठनेसे रहे; किन्तु मुझे यह गौरव तो लेना है कि तुम्हारे इस भुवन-पावन शरीरको सुरक्षित रखनेकी व्यवस्था कर दूँ। चिन्ता तुम्हें तो क्या होगी, केवल सूचना देता हूँ कि अभी तुम्हारी छोटी समाधि झटपट बनवा दूँगा। उसके ऊपर भव्य-भवन पीछे बनता रहेगा।'

'तुमने कोई नशा सेवन किया है?' वे झुँझलाये—'ये बे-सिर-पैरकी बातें क्यों कर रहे हो?'

'तुम जानते हो कि नशेकी गन्धसे भी मुझे अरुचि है और बातोंके सिर-पैर मैंने कभी देखे नहीं।' मैंने अब तनिक स्पष्ट किया—'लेकिन तुमको कन्हाईसे कोई सम्बन्ध नहीं रखना है न?'

'इसका तुम्हारी इन बातोंसे सम्बन्ध?' वे पूछने लगे।

'पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश—ये पाँच ही महाभूत हैं। छठा कोई हो तो मैं जानता नहीं। ये सब कन्हाईके हैं, उसीके निर्माण हैं और वह इनमें व्याप्त है।' मैंने बात पूरी स्पष्ट की—'जीवन रहते तुम इन सबसे सम्बन्ध त्याग सकोगे? मानलो कि आत्मघात कर लो, तो भी अपने अन्तर्यामीसे पिण्ड छूटेगा। नहीं जानता कि निर्विकल्प समाधिमें क्या होता है; किन्तु सम्भव है 'स्वस्वरूपावस्थान' होनेपर इस गोपकुमारसे सम्बन्ध छूट जाता हो।'

'तो यह बात है।' वे खुलकर हँसे। जब कोई हँस पड़ता है, तब उसका क्रोध भाग जाता है। उन्होंने स्वस्थ स्वरमें कहा—'एक ओर तुम इसे गोपकुमार भी कहते हो और दूसरी ओर समस्त ब्रह्माण्ड विधायक भी?'

'यही तो बात है' मैंने उन्हें समझाया—'यह इतना भोला न होता तो इन ब्रह्माण्डोंको बनाने-बिगाड़नेकी खटपटमें पड़ता? सब जानते हैं कि इसके करोंमें मुरली ही अच्छी लगती है; किन्तु कभी फरसा लेता है, कभी कोदण्ड। कभी वामन बनता है, कभी विराट्। कभी सिंह और कभी सुअर। मछली-कछुआ भी बना करता है। बहुत खिलाड़ी है, तरह-तरहके खेल करता ही रहता हैं। इसके साथ खेलनेमें तो आनन्द है; किन्तु इससे रूठकर, लड़कर कोई कैसे.......।'

वे तो मित्र थे, समझदार थे। हँसकर चले गये; किन्तु आप यह सब न भी समझना चाहो तो यह स्पष्ट है कि कन्हाईसे कोई सम्बन्ध न रखनेका अर्थ है केवल शरीर और संसारसे सम्बन्ध रखना। इससे क्या मिलने वाला है? न शरीर और न संसार ही आपकी इच्छानुसार चलेगा। शरीर विकारी है, शीर्ण होने वाला है, रोगमन्दिर है। आपको देवमन्दिरमें बैठना नहीं रुचता? रोगमन्दिर प्रिय लगता है? इसीमें बैठे रहना है? बैठे रहिये; पर समझ रखिये कि आपकी बहुत अधिक सावधानी और सेवाका कोई मूल्य नहीं है। शरीर तो नश्वर है—जानेवाला है और जब तक रहेगा, दुःखके अतिरिक्त कुछ नहीं देगा। दूसरा कुछ देनेको इसके पास है ही नहीं।

संसारकी बात—संसार कोई आपका है कि आपकी इच्छानुसार चलेगा। आपका मन आपकी इच्छानुसार चलता है? आपका तन आपकी इच्छानुसार रहता है? जब यही आपके चाहे अनुसार व्यवहार नहीं करते तो स्त्री, पुत्र, मित्र, स्वजन, परिचित आपके अनुसार रहेंगे? आप क्या समझते हो कि वे जड़ हैं? पेपरवेटके समान जहाँ चाहोगे रख दोगे उन्हें? अपनी इच्छाके प्रतिकूल व्यवहार और स्थितिका प्राप्त होना ही दुःख है या और कुछ? संसार दुःखरूप है, यह अकेले बुद्धका अनुभव नहीं है। सभी विवेकशील सत्पुरुषोंका यही अनुभव है।

कन्हाई नटखट है। मनमानी करता है। आपकी सुनता ही नहीं। यह सब ठीक हैं; किन्तु कन्हाई आनन्दघन है या नहीं? यह मनमें आता

है तो संसार वहाँ टिकता है ? इसके खिझानेमें आनन्द नहीं है ? इसके वियोगके अनुभवमें भी जो विषाद है, वह अत्यन्त विषम होनेपर भी मिठाससे ओतप्रोत है, यह कोई अस्वीकार कैसे कर देगा।

मैंने कब कहा कि कृष्णसे प्रीति कीजिये। इसपर क्रोध करने वाले, इससे द्वेष करने वालोंको भी इसने सद्‌गति दी। इससे सम्बन्ध तो चाहिये--चाहिये; ही और इस चिद्‌घनसे सम्बन्ध हो तो अचित्-मायाका विनाश अवश्यम्भावी है। अग्निको आप प्रणाम करके उसमें आदरपूर्वक समिधा हवन करेंगे, तभी वह जलेगी? अग्निको पवित्र समिधाकी अपेक्षा है या आपके आदरकी? अशुद्ध काष्ठ अनादरपूर्वक अग्निमें फेंकेंगे तो जलेगा नहीं ?

अग्नि शीतको नष्ट करता ही है। अनादरपूर्वक या अनजानमें भी आप अग्निकी समीपता प्राप्त करेंगे तो आपकी ठण्ड दूर ही होगी। आप नहीं मानते हैं कि आपको शीत सता रहा है, इसका मैं क्या करूँ; किन्तु यह भाग-दौड़, यह अतृप्ति-असन्तोष, यह कामना-कलुष, यह सब अविद्याके शीतका कम्पन है। यह सब मायाके अन्धकारमें भटकना है और आप हैं कि कहते हैं कि चिन्मय ज्योति, परमज्ञान स्वरूपसे आपको कोई सम्बन्ध ही नहीं रखना है।

अंगूर खट्टे हैं? आपकी यह कठिनाई समझमें आती है। बात यह है कि संसार भी रहे और श्याम भी मिले, यह हुआ नहीं करता। ब्रजेन्द्र-नन्दन न अधूरा कुछ लेता और न अधूरा अपनाता। आपका पुराना अभ्यास है विषयोंकी ओर बहते रहनेका। पुराना अफीमची अनजानमें भी अफीमकी डिबिया ही ढूँढ़ता है। शराबीके पैर कलियारीकी दूकानकी ओर उसे ले जाते हैं। लेकिन इसमें दोष किसका है ? अभ्यास जिसने डाला, दोष उसका। अभ्याससे संघर्ष उसके लिए कोई दूसरा नहीं करेगा। अभ्यास चाहे जितना प्रबल हो, पुराना हो, उसे स्वयंको ही छोड़ना पड़ेगा।

शरीरपर मैलकी बहुत पक्की पर्त चढ़ गयी है, अतः आप जलसे ही उदासीन हो जाना चाहते हैं? कन्हाई तो जल है मायामलको प्रक्षालित करने वाला। ठीक है कि अभी उसका स्मरण प्रिय नहीं लगता; किन्तु उससे उदासीन-तटस्थ हो जानेका अर्थ ? यह तो विपत्तिको बढ़ाते जानेका मार्ग है।

कृष्णसे कोई सम्बन्ध नहीं रखना आपको, इसका अर्थ आपने क्या कभी सोचा है ? इसका अर्थ है जीवनसे, ज्योतिसे, जागरणसे, आनन्दसे कोई सम्बन्ध नहीं रखना। आप पुकारनेको प्रस्तुत हैं--' ओ अन्धकार ! आ। मैं तेरा स्वागत करना चाहता हूँ। ओ पतन और नरक ! मैं तेरा निवाला हूँ। मुझे निगल ले ! ओ अज्ञान ! मैं भी तेरा भाई हूँ। तू मुझे अपने साथ रख !' यह सब आपको प्रिय लगेंगे ?

मैंने नहीं कहा कि आप मुरली मनोहरको ही प्यार करो। आपको मर्यादापुरुषोत्तम अच्छे लगें तो आपका सौभाग्य। आप मुण्डमाली, व्योमकेश, कपर्दी, धूर्जटिका ध्यान करना चाहें तो परम पुण्यात्मा। आपमें श्मशानीका स्मरण वैराग्य बढ़ावेगा। सिंहवाहिनी अष्टभुजा हों या षोडशभुजा अथवा शवालीढ़ा काली, चामुण्डा—कोई हानि नहीं इनमें-से किसीका चरणाश्रय लेनेमें। पुत्रके लिए माता सदा स्नेहमयी होती हैं। उनका उग्ररूप सन्तानकी सुरक्षाका साधनमात्र है।

यह कन्हाई लीलामय है। इसे मुखौटे लगानेमें आनन्द आता है। इसे न गोपी बननेमें लज्जा, न पशु-पक्षी बननेमें सङ्कोच। आप मानें या न मानें, आपकी मान्यताकी इसे अपेक्षा नहीं है। लेकिन आप किसी भगवदीय रूपका आश्रयण करते हैं तो कन्हाईका ही आश्रय लिये हैं। आप मजेसे कह सकते हैं--' मुझे इस ग्वारियेसे कोई सम्बन्ध नहीं रखना।'

कृष्णको न चिढ़ होती और न ईर्ष्या। बालक जब मातासे कहता है--' मैं तेरा पुत्र नहीं रहूँगा। मैं बाबाका पुत्र रहूँगा।' माँको हँसी आती है या क्रोध ? अन्ततः अज्ञ बालकको दूध तो माताके अंकमें ही मिलता है।

यह सब कुछ नहीं है ? सचमुच आपको कन्हाईसे कोई सम्बन्ध नहीं रखना है ? यह आपका प्रेम-कलह नहीं, वास्तविक निर्णय है ? तब मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ। ऐसे विद्वान, बुद्धिमानोंसे मुझे भय लगता है। आप बहुत-बहुत कृपा करेंगे कि मुझे दर्शन न दें। आपको समझानेकी शक्ति मुझमें नहीं है।



कुट्टी करनी है ?—

अनिवार्य हो जाता है कभी-कभी कुट्टी करना भी ; किन्तु कन्हाईसे कुट्टी करना बहुत कठिन है। वास्तविक कुट्टी तो इससे की ही नहीं जा सकती, केवल कुट्टी करनेका नाटक सम्भव है और वह भी कितनी देर ? हृदय हाहाकार करता है। खाने-पीनेकी तो बात ही छोड़िये, एकान्तमें बैठे भी नहीं रहा जाता और उठते-बैठते भी नहीं बनता।

कृष्ण ही कहाँ किसीका रूठना सह पाता है। यह खेलना-दौड़ना, हँसना-बोलना सब छोड़कर दौड़ा आवेगा और मनुहार करने लगेगा। इसकी ओर न देखो तो अनेक प्रकारके ढंग बनावेगा। गुदगुदाता ही नहीं, चिटकी भी काट दे सकता है। गोदमें सिर रखेगा या अपने दोनों करोंसे मुख पकड़-कर और उठावेगा, कहा नहीं जा सकता।

ऐसा कोई जीव है जो इसका सखा न हो ? हाँ, इसे तो जीव-जन्तुओंसे भी मित्रता कर लेना आता है। इस कालातीतके लिए असंख्य वर्षोंका भी कोई मूल्य नहीं है। जीव इससे कुट्टी करके ही तो जाने कबसे जन्म-मरणके चक्रमें भटक रहे हैं। इससे कुट्टी करके जीवने मुख छिपाया तो मायादेवी मनुहार करने पहुँच गयीं। सम्पूर्ण विश्व-प्रपञ्च उनकी मनुहार क्रीड़ा है। जीव इतना भोला कि उनकी मनुहारमें उलझ गया।

यह माया देवी कौन हैं, आप जानते हैं ? ये वही नन्दतनया हैं। कन्हाईकी छोटी बहिन अपने भैयासे न कम चपल हैं और न कम नटखट। इनकी मनुहार चलने लगी तो कृष्ण कुछ क्षणको रुक गया। अन्ततः उसे भी सोचना पड़ता है कि जब कोई मित्र उससे कुट्टी करके उसकी छोटी बहिनके साथ खेलने लगा है तो उसे बीचमें व्याघात नहीं बनना चाहिये।

श्यामका यह सौजन्य सकारण है। भाई-बहिनमें एक अनकहा समझौता जो ठहरा। कोई कन्हाईकी ओर तनिक सिर झुकाकर नेत्रके कोनेसे भी देखना चाहता है तो बहिन चुपचाप खिसक लेती है। वह भाईके साथ क्रीड़ामें कभी व्याघात नहीं बनती। तब भाई ही क्यों बहिनकी क्रीड़ाका बाधक बने। जो कुट्टी करके भागा है, उसे प्रसन्न रहना चाहिये। उसे रोना नहीं चाहिये। वह कुछ क्षण—कुछ क्षण ही तो, जीवका अनादि-

अनन्तकाल श्यामके समीप कुछ क्षण ही तो होता है, अतः वह कुछ क्षण यदि पृथक् खेलना चाहता है तो ऐसा ही सही।

यह बहिन अपने भाईकी ही छाया है; किन्तु छाया है न, अतः छायाके गुण तो इसमें होने ही हैं। श्याम-सच्चिदानन्द है तो यह माया उसके सत्‌को तमोगुण, चित्‌को रजोगुण और आनन्दको सत्त्वगुणके रूपमें अपनाकर त्रिगुणात्मिका बन गयी है। यह भी क्रीड़ाप्रिय है और इसकी क्रीड़ाका लक्ष्य भी कृष्णके सखा जीवोंका मनोरञ्जन ही है; किन्तु इसका मनोरञ्जन इसके ही ढंगका तो होगा।

आप जानते ही हैं कि छायामें अस्तित्व नहीं होता। कन्हाई अवाङ्-मनसगोचर होनेसे अनिर्वचनीय है तो उसकी छोटी बहिन सदसद्‌भिन्न होनेसे अनिर्वचनीय है। कृष्ण क्रिया है, आकर्षण है तो यह प्रतिक्रिया है— विकर्षण है। इसीलिए उस चिद्‌घनकी यह प्रतिक्रिया अविद्या है।

आपको मेरी बात गले न उतरती हो तो महर्षि कपिलका सांख्य-दर्शन देख लीजिये। वे बतलावेंगे कि 'प्रकृतिका पूरा प्रयत्न पुरुषको प्रसन्न करनेके लिए ही है। पुरुष प्रकृतिसे तादात्म्य करके जन्म-मरणके जञ्जालमें उलझा है। उसे करना केवल यह है कि प्रकृतिसे तटस्थ होकर स्वरूपमें स्थित हो जाय।'

लेकिन प्रकृति किसीको ऐसे ही तटस्थ होने देती है ? तनिक तटस्थ होकर देखिये। यह तो तब संकुचित होकर भागती है, जब कोई इसके भैयाकी ओर मुख करता है।

आपको कन्हाईसे कुट्टी करनी है ? आपको इन मायादेवीके साथ खेलना है ? कोई बात नहीं। ऐसा करनेमें आप स्वतन्त्र हैं; किन्तु इतना स्मरण रखना होगा कि माया देवीके साथ खेलना प्रारम्भ करनेके पश्चात् यह स्वतन्त्रता रहकर भी रह नहीं पाती। फिर तो वे जैसे नचावें ......। आपने अब तक यह अनुभव कर नहीं लिया है ?

न कन्हाईका स्वभाव पकड़ कर छोड़ना है और न मायाका स्वभाव पकड़े रहना है। श्याम अपने रूठे सखाको मना लेना जानता है; किन्तु जब कोई अपने 'स्व' को लेकर कुट्टी करता है, गर्वहारीको यह सह्य नहीं है। यह तो रास-रात्रिमें, गहन-काननके अन्धकारमें श्रीवृषभानुनन्दिनीको भी

एकाकिनी छोड़कर अदृश्य हो गया, जब उनमें किञ्चित् गर्व आया अपने सौभाग्यका।

यह अदृश्य हुआ, किन्तु हो नहीं सका। इसकी वे नित्य अभिन्ना—उन आह्लादिनीके समीप उनका रञ्जन करनेके लिए भी तो जानेका साहस मायामें नहीं है। उनमें तो वियोग जागा—तीव्रतम वियोग और सब किसीमें भी कन्हाईकी पृथकताका वियोग जागता है, इस वियोगके जागरणसे पूर्व ही मायादेवी अपना सब प्रस्तार समेट कर जाती हैं। प्रकाशके पदार्पणसे पूर्व ही छाया चली जाती है या नहीं? जब वियोग आया तो स्मृति आयी। बिना स्मृतिके वियोग कैसा? यह सम्भव है कि आप रोये-तड़पे चले जारहे हैं और आपको ही पता नहीं कि किसके लिये रो-तड़प रहे हैं? कृष्णकी स्मृति भी अन्तरमें रहे और मायाका प्रस्तार भी रहे, यह सम्भव नहीं है। सूर्य भी आ रहा हो और अन्धकार भी बना रहे, आपने कभी सुना है?

कन्हाईसे कुट्टी करनी है—अवश्य कीजिये। यह है ही इतना नटखट कि इससे कुट्टी कर लेनी चाहिये यदि सम्भव हो। सम्भव नहीं है, इसलिए कुट्टीका नाटक तो किया ही जा सकता है। इसमें एक सुविधा है, जब कुट्टी न करके कुट्टीका नाटक किया जाता है तो मायादेवी मनुहार करने नहीं आतीं। वे दूसरोंको सम्मोहित करने वाली हैं। उन्हें भुलावेमें डाला जा सकता है। उन्हें पता है कि कोई सखा जब कुट्टीका नाटक करता है, उसकी मनुहार करने ब्रजराजका लाड़ला दौड़ आने ही वाला है।

कुट्टी और कुट्टीके नाटकमें अन्तर तो होना ही ठहरा। कुट्टी होती है 'स्व' को स्वीकार करके और कुट्टीका नाटक तो कृष्णके लिए होता है। यह तो श्यामसे उदासीनता नहीं है। इसमें विस्मृति कैसी। यह तो प्रेमाधिक्य है। इसमें स्मृति की अत्यधिक प्रगाढ़ता है। अतः इस नाटक में मायादेवीका प्रवेश ही अशक्य हैं।

कुट्टीका नाटक ही क्यों? यह प्रश्न निरर्थक है। प्रश्न सार्थक यह है कि कुट्टीका नाटक क्यों नहीं? कन्हाई नटखट है या नहीं? यह क्या कम हठी है? यह खेलनेमें लगता है तो न छाया देखता, न धूप। न स्थल देखता, न कुस्थल। न श्रान्ति देखता, न क्षुधा। अब इसको कहो—'धूपमें मत खेल!' यह सहज सुन लेगा?

'तू थक गया है। अब थोड़ा विश्राम कर ले।' यह कह देखिये।

'तू थक गया है तो जाकर सो रह।' यह ऐसी बात करेगा कि शरीरका रक्त जलने लगे।

'कनूँ ! मुझे भूख लगी है।' कोई बड़े दुलारसे कहे, इसलिए कहे कि उसे लगे कि उसका सुकुमार सखा भूखा है, इस बहाने भोजन करने बैठेगा और उसे उत्तर मिले —'वह कदम्बपर छीका टँगा है। उतारकर भोग लगा।'

ऐसी असंख्य बातें हैं। कभी वर्षामें भीगता रहेगा और कभी कण्टक-तरुके पुष्प तोड़ने भागेगा। इन अवस्थाओंमें भी जब किसी सखाके अनुरोधकी उपेक्षा करेगा, इससे रूठा नहीं जायगा? इससे कुट्टी करनेकी बात नहीं की जायगी?

खेलमें साथ खेलेगा भी और दाव नहीं देगा, यह भी कोई बात हुई? खेलमें इसी-इसी की जीत होती रहे तो इसे खेलमें रस आनेगा? जय-पराजय न हो तो खेलमें रस रहेगा? यह अपने खेलके रसको स्वयं नष्ट करनेपर उतारू होगा तो इसके साथ खेला जा सकेगा?

इस प्रकारकी कुट्टी करनी है आपको कन्हाईके सङ्ग तो अवश्य कीजिये। अन्ततः कोई विरोधी या उदासीन तो कुट्टी कर नहीं सकता। कुट्टी तो वही कर सकता है जो पहिलेसे मित्रता जोड़ चुका हो और आप इससे मित्रता जोड़ चुके हैं तो दो मित्रोंके मध्य बोलनेकी दूसरेको क्यों धृष्टता करनी चाहिये। करिये कुट्टी इससे।



मिले ही रहना है—

अन्तिम सत्य है यह और अविस्मरणीय है कि कन्हाई-से पृथक हुआ नहीं जा सकता। यह जीवनका जीवन है, प्राणोंका प्राण है। अतः इससे मिले ही रहनेका निश्चय ही उचित एवं वास्तविक निश्चय है। यही निश्चय है जो टिका रह सकता है। दूसरे सबके सब निश्चय तो मनकी तरङ्गें हैं और मनकी तरङ्गोंमें कोई स्थिरता हुआ नहीं करती।

कन्हाईसे कैसे मिले रहना है, इस सम्बन्धमें कोई भी नियम नहीं किया जा सकता। सबकी रुचि पृथक, सबके भाव पृथक, सबका सम्बन्ध पृथक; लेकिन मिले रहना है—मिले ही रहना है, सब प्रकारसे मिले रहना है।

ऐसा नहीं है कि इससे खटपट होगी ही नहीं। इस नटखटको खटपट किये बिना चैन नहीं पड़ता; किन्तु खटपटमें भी यह मिला ही रहता है। अधिक मिला रहता है, यह भी कहें तो कोई दोष नहीं है।

वैसे खटपट क्षणिक—जैसे जीवनमें स्वप्न। कौन स्वप्न नहीं देखता? लेकिन स्वप्नको कोई जीवन मानता है? स्वप्न तो एक क्षणिक अवस्था है। स्वप्नका कोई निश्चय है कि कब, किस दिन, किस समय, कैसा स्वप्न आवेगा? कभी कुछ और कभी कुछ। ऐसे ही इस गोपकुमारसे कब कैसी खटपट हो जाय, क्या पहिलेसे निश्चय किया जा सकता है? यदि निश्चय ही किया जा सके तो खटपटकी नौबत ही क्यों आवे? जो पहिलेसे निश्चित नहीं, जिसमें स्थिरता नहीं, उसमें तथ्य कितना? उसकी चिन्ता व्यर्थ है।

तथ्य यह है कि कन्हाईसे मिले ही रहना है। यह भी ऐसे नहीं—सच बात यह कि इससे सब मिले ही हैं। इस नित्य मिलनमें वियोग है ही नहीं। वियोगकी सम्भावना भी नहीं है; क्योंकि वियोग या तो देशमें होता है या कालमें और देश-काल इस मयूरमुकुटीका स्पर्श ही नहीं करते।

इस मिलनमें वियोग नहीं है, वियोगका भ्रम है। जैसे स्वप्नमें आपको भ्रम होता है घरमें शैय्यापर सोते हुए भी कि आप घोर काननमें,

भयानक पशुओंसे घिरे हुए भटक रहे हैं, भाग रहे हैं। भ्रम है स्वप्न देखने तक और भ्रमका भय, दुःख भी तभी तक है। बड़ी कठिनाई यह है कि स्वप्न देखते समय नहीं लगता कि स्वप्न क्षणिक है, स्वप्नके दुःख, भय ही अपार दीखते हैं। श्यामसे वियोगका भ्रम भी ऐसा ही है।

ज्ञानियोंकी बात छोड़ दें। भक्तोंमें भी एक वर्गने कहा—'हम उसके हैं।' देवर्षि नारदने स्तुति कर दी अपने भक्ति दर्शनमें इस वर्गकी—

'यतस्तदीयाः।'

इसीलिए बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने नारदभक्तिसूत्रकी अपनी टीकाका नाम ही 'तदीय सर्वस्व' रख दिया।

यहाँ मुझे मानस संघके संस्थापक बाबू शारदाप्रसादजीका स्मरण आता है। किसीने उनसे सतनामें कहा—'आप बच्चा बाबूके घर रहते हैं?'

बच्चा बाबू श्रीशारदाप्रसादजीके भतीजे। शारदा प्रसादजी तो रामवन रहते थे। सतनाके लोग बच्चा बाबूको ही जानते थे। शारदाप्रसादजीने हँसकर कहा—'मैं बच्चा बाबूके घर नहीं रहता, बच्चा बाबू मेरे घर रहते हैं।'

अब आप बाबासे ऐसे ही पूछो—'आप कन्हाईके हैं?'

बाबा यही तो कहेंगे—'वह मेरा लाला है।'

मैया और बाबा बहुत शालीन हैं; किन्तु सखाओंमें, गोपियोंमें ऐसी बात नहीं मिलेगी। किसीसे पूछ देखिये—'तुम कन्हाईके हो?'

वह डाँट देगा—'चल! कन्हाई मेरा है।'

लेकिन इस 'तदीय' और 'मदीय' में कोई झगड़ा नहीं है। झगड़ा तो अज्ञोंका मतिभ्रम उठाता है। कन्हाईसे ही पूछ देखिये—'दाऊ तेरा है या तू दाऊका है?'

श्याम उल्लाससे उछलकर कहेगा—'दाऊ मेरा दादा है और मैं उसका छोटा भैया हूँ।'

'लेकिन वह तेरा है या तू उसका है?'

'तू मूर्ख है या धूर्त?' श्याम डाँट देगा—'दादा मेरा है और मैं दादाका हूँ, इतनी सीधी बात भी तेरी समझमें नहीं आती?'

सचमुच बात बहुत सीधी है। कोई आपका पुत्र है तो आप उसके पिता हो या नहीं ? आपका सेवक गर्वसे कह सकता है—'ये मेरे स्वामी हैं।' आपको इसमें कोई आपत्ति है ?

हम कन्हाईके और कन्हाई हमारा, यह तदीयत्व सदा मदीयत्वसे मिला ही रहता है। इनको पृथक नहीं किया जा सकता। इसमें तदीयता-पर बल देनेमें विनम्रता अधिक है। 'हम उनके' इसमें समर्पण है, शरणागति है, भरोसा हैं।

कन्हाई हमारा—यह मदीयता अधिकार व्यक्त करती है। इसमें किञ्चित् बड़प्पन है और बहुत दृढ़ विश्वास है। हम जिसके हैं, वह हमारे अनुकूल-प्रतिकूल रहनेमें स्वतन्त्र है; किन्तु जो हमारा है, वह हमारे प्रतिकूल हो कैसे सकता है।

तदीयता सेवा चाहती है और मदीयता स्नेहदान। दोनों केवल एक ही सिक्केके दो पहलू हैं। दोनोंके द्वारा ही कन्हाईसे अभिन्नता व्यक्त होती है।

कन्हाई न रुष्ट होता, न वियुक्त होता। इस आनन्दकन्दमें दुःख है ही नहीं तो किसीको देगा कहाँसे ? इसे दूसरेके दोष दीखते ही नहीं ; केवल गुण-ही-गुण दीखते हैं। अतएव यह किसीसे क्यों वियुक्त होगा ?

वियोग है ; और वियोग है, इसीलिए दुःख है, अज्ञान है। संसारमें जो अनेक प्रकारके क्लेश हैं, जन्म-मरण हैं, यह सब कन्हाईके वियोगके ही तो कारण है। यह वियोग वास्तविक नहीं है, भ्रम है, स्वप्न है। मैं यहाँ ज्ञानियोंके द्वारा प्रतिपादित अविद्याकी बात नहीं कह रहा हूँ। लेकिन जो तथ्य है, उसे स्वीकार करनेके अतिरिक्त तो कोई उपाय नहीं। श्रीराम-चरितमानसने कहा—

मोह निसाँ सबु सोवनिहारा।
देखिअ सपन अनेक प्रकारा ॥—अयोध्या० ९२.२

इस स्वप्नसे जागनेका उपाय ही यह है कि कन्हाईसे मिले ही रहनेका निश्चय कर लीजिये। यह निश्चय स्मृति देगा और श्यामकी स्मृति उसे अन्तरमें आकार देगी। वह आपके अन्तरमें क्रीड़ा करता रहेगा तो मोह-निशाका अन्धकार वहाँ कभी प्रवेश नहीं करेगा।

कन्हाईसे खटपट ही करते रहनेके लिए बहुत अधिक मनोबल चाहिये। ऐसा मनोबल सामान्य जीवमें हुआ नहीं करता। यह नटखट जब चाहता है कि थोड़ा लड़-झगड़ लेनेका आनन्द ले, तब अपने ही किसी निज-जनको विशेष मनोबल दे देता है। हिरण्याक्ष-हिरण्यकशिपु, रावण, कंस-शिशुपाल प्रभृति इसके इन रूपोंमें ही पधारे निजजन ही थे।

इस उलझनमें जाकर आपको कुछ मिलना नहीं है। यह हमारे आपके वशकी बात भी नहीं है और इसमें रस तो है ही नहीं। रसराजसे खटपट करनेपर रस कैसा? तब तो जलन, भय, शोक ही सिर पड़ता है। आपको दुःखको निमन्त्रण देना है क्या?

अतएव आपका यही निश्चय परिपूर्ण है, निर्दोष है, परम मंगलायतन है कि नन्दलालसे मिले ही रहना है। यह चाहे जितना चपल हो, चाहे जितना नटखट हो; किन्तु अत्यन्त भोला है। परम सुकुमार है। स्वजनोंको सुख-सम्मान देनेमें ही इसे आनन्द आता है। अतिशय उदार है यही श्रीव्रजेन्द्रनन्दन। अतः इससे पृथक होनेको, इससे सचमुचकी खटपट कर लेनेकी बात ही सोची नहीं जा सकती।

जब हृदय कन्हाईके बिना रह नहीं सकता, तब कन्हाईसे मिले रहना है—मिले ही रहना है।



कन्हाईके लिए–

क्यों ?—

'आप मेरे लिए कुछ करेंगे ?' मैं पूँछू आपसे तो ?'

'क्यों ? आपको कोई शारीरिक कष्ट है या मानसिक ?' आप पूछना चाहेंगे—'आपको कोई अभाव है ? आप कुछ करना या कराना चाहते हैं ?'

यह तो तब आप पूछेंगे जब आपकी मुझसे सहानुभूति हो, मेरे प्रति कुछ स्नेह, आत्मीयता हो। ऐसे तो थोड़े ही व्यक्ति हो सकते हैं। जो अधिकांश व्यक्ति हैं वे ?

'मैं स्वयं बहुत अभावग्रस्त हूँ। मुझे स्वयं शारीरिक तथा मानसिक कष्ट है।' ऐसा ही कुछ उत्तर उनका होना चाहिये—'मैं जो चाहता हूँ, कर नहीं पाता हूँ। मेरे पास कहाँ साधन और समय है। मुझे तो स्वयं सहायता अपेक्षित है।'

संसारके अधिकांश लोग सचमुच अभावग्रस्त हैं। भले वे ऊपरसे देखनेपर सम्पन्न, स्वस्थ, सुखी जान पड़ते हों, बहुत खोखला जीवन है उनका। अपने और अपनोंकी ही चिन्तासे छुटकारेका मार्ग उन्हें नहीं मिल पाता है। तब वे दूसरेके लिए कुछ करनेकी बात सोच कैसे सकते हैं।

जिनमें आत्मीयता है, सहानुभूति है, वे अपनी सब विवशताओंके, सब अभावोंके, सब असमर्थताओंके रहते भी कुछ करना चाहते हैं। आप मेरे लिए कुछ करनेकी बात सोचते हैं तो क्या स्थिति इससे भिन्न है ?

'शारीरिक कष्टको मैं महत्त्व नहीं देता।' यह सुनकर आपको अटपटा लग सकता है। शरीरको प्रारब्ध भोगना ही पड़ता है और मैं स्वयं छोटा-मोटा चिकित्सक हूँ। अनेक चिकित्सक मेरे मित्र हैं। ऐसे मित्रोंका मुझे अभाव नहीं जो मेरे लिए चिकित्सा सुविधा जुटाकर प्रसन्न होंगे।

मानसिक कष्ट मुझे कोई नहीं। जब मेरा किसीसे द्वेष नहीं, कहीं राग नहीं तो मानसिक कष्ट मुझे क्यों होगा ?

अकेले शरीरके निर्वाहके लिए आवश्यकतासे अधिक सुविधाएँ मुझे

प्राप्त हैं, अतः अभावका प्रश्न उठता ही नहीं ।

मैं कुछ विशेष नहीं करना चाहता । मेरी कोई महत्वाकांक्षा नहीं है । जिसने संसार बनाया है, अपने संसारको चलाना, सम्हालना उसे आता है और इसमें वह समर्थ है । उसे मेरी सहायताकी अपेक्षा नहीं है। मुझे भी बलात् उसकी व्यवस्थामें टाँग अड़ानेका सिर दर्द नहीं होता ।

'आप मेरे लिए कुछ करेंगे ?' आपसे --आपसे ही मैं पूछता हूँ ।

'अजीब व्यक्ति है।' आप कहेंगे—'कुछ चाहिये नहीं; कोई अभाव नहीं तो इसके लिए कुछ करनेका प्रश्न कहाँ पैदा होता है।' फिर इसके लिए कोई क्या कर सकता है ?

'आपके लिए हम कुछ क्यों करें ?' आप सीधे यह पूछ सकते हैं, पूछना ही चाहिये आपको । मुझे आपके पूछनेका बुरा लगे तो मैं मूर्ख ।

अब आप बतलाइये कि मेरे लिए ही आप कुछ करनेको उद्यत नहीं तो कन्हाईके लिए कुछ करेंगे, यह आशा मैं आपसे करूँ ?

कन्हाईको कभी कोई कष्ट नहीं होता । कष्ट और अभाव उसके स्मरणसे दूसरोंके दूर होते हैं। श्याम कुछ करना चाहेगा तो उसमें किञ्चित् भी बाधा देनेकी शक्ति कहीं किसीमें है ? श्रीब्रजेन्द्रनन्दन तो परिपूर्ण परमानन्द-पयोधि है, उच्छलित आनन्दाम्बुधि । अब आपकी समझमें आता है कि इसके लिए कुछ करनेकी आवश्यकता कभी किसीको होगी ?

अत्यन्त अमंगल कल्पना । भगवान करें कि आपके लिए कोई कुछ कभी करे, ऐसी आवश्यकता आपको कभी न हो ।

आवश्वकता हो और कुछ किया जाय, यह अल्प-शक्ति, अल्प-प्राण, अभावग्रस्त, विपन्न प्राणीके लिए ही आवश्यक होता है । यह कृपापूर्वक कुछ करना—आप कन्हाईपर कृपा करेंगे, ऐसा सोच सकते हैं ? मैं ही कह दिया करता हूँ—'यदि आपको मुझपर कृपा करना है तो यही कृपा कीजिये कि अपनी कृपा अपनी ही जेबमें रखिये । कभी वह आपके काम आवेगी ।'

आप मन्दिरमें देवतापर कृपा करने जाते हैं ? आप किसी सन्त-सत्पुरुषकी सेवा करते हैं तो उसपर कृपा करते हैं या वह आपपर कृपा

करके आपको सेवाका सौभाग्य देता है ? आप उस सेवासे स्वयं कृतार्थ होते हैं या नहीं ?

कन्हाईके लिए आप कुछ करें, यह क्यों आवश्यक है—यह आप समझ गये ? यह इसलिए आवश्यक है कि आप इससे कृतार्थ होंगे। आप इससे निष्कल्मष होंगे। आप इससे धन्य बनेंगे।

आप आहुति देकर अग्निको प्रज्वलित करते हैं तो शीत आपका दूर होता है या अग्निका ? अग्निदेवको कभी शीतका अनुभव होता होगा ? अग्निकी आवश्यकता आपको है। आपका जीवन अभावसे, पीड़ासे, आकांक्षाओंसे ग्रस्त है और न आप स्वयं और न आपके समस्त सुहृद्-सम्बन्धी सब मिलकर भी आपको इस असन्तोष, इस अभाव, इस पीड़ासे मुक्तकर पा रहे हैं। अनादिकालसे, जन्म-जन्मसे यह अभाव-असन्तोष—पीड़ाकी सेना आपके पीछे पड़ी है। आपको इससे पिण्ड छुड़ाना है या नहीं ?

आप जो प्रयत्न कर रहे हैं, अब तक आपने जो किया है, वह सब सा है—बतलाऊँ ? जाने दीजिये, एक छोटी-सी गाथा सुनिये—

एक बालक एक बड़े दर्पणके सामने पहुँच गया। उसमें अपना ᐧतिबिम्ब देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। उसे लगा, उसे एक मित्र मिल गया। उसने उस मित्रको देखा—भली प्रकार देखा और बोला—'तुम बहुत अच्छे हो। लेकिन तुमने तिलक क्यों नहीं लगाया ? केश सजाये, माला पहिनी और तिलक नहीं। लाओ, मैं तुम्हें चन्दन लगा दूँ।'

बालक दौड़ा गया और पूजाघरसे चन्दन ले आया अपनी नन्हीं अनामिकापर। उसने दर्पणमें स्थित बालकके मस्तकपर चन्दन लगानेके प्रयत्नमें दर्पणपर चन्दन लगाया और दुःखी हो गया —'मित्र, तुमने सिर क्यों हटा लिया ? तुम तिलक क्यों नहीं करने देते ?'

आपके सब प्रयत्न इस बालकके समान हैं। आप दर्पणके प्रतिबिम्बको भूषित करनेके प्रयत्नमें हैं—अथक प्रयत्नमें। आपका यह प्रयत्न जन्म-जन्मान्तरसे चल रहा है; किन्तु क्या इस प्रकार इसके कभी सफल होनेको आशा है ?

दर्पणके प्रतिबिम्बको भूषित करनेका उपाय आप जानते हैं। बिम्बको ही भूषित करना होगा और आपका बिम्ब ? यह शरीर, यह संसार

प्रतिबिम्ब है, इसे बिम्ब मानकर जो भूल चल रही है, उसे अब भी सुधारना है या नहीं ?

कन्हाईको कोई अपेक्षा नहीं कि आप उसके लिए कुछ करें। कृपा करनी है उसपर तो आप अपनी कृपा अपनी जेबमें रखिये; किन्तु कृतार्थ होना है तो दूसरा उपाय नहीं है।

कन्हाईके लिए क्यों ?

इसका उत्तर यह है कि इसके बिना आप अभाव, कष्ट, अपूर्णताके जञ्जालसे कभी मुक्त हो नहीं सकते। आपको चाहिये प्रकाश और आपने सूर्यकी ओर पीठ कर रखी है तो आपको क्या मिलेगा ?

कन्हाई बहुत भोला है। बहुत उदार है। उस परिपूर्णको कोई अपेक्षा नहीं; किन्तु आपको तो अपेक्षा ही अपेक्षा है, अतः आपको श्रीनन्दनन्दनमें अपेक्षा उत्पन्न करना है। आपको कहना है—'तू अभी भली प्रकार सजा नहीं है। तेरे आभूषण रत्नके तो हैं; किन्तु रत्न भले चमकीले हों, पत्थर ही तो हैं। स्वर्ण भी पत्थर जैसा ही कठोर। मैं तुझे पुष्पोंसे, तुलसी-दलसे, दूर्वासे, किसलयसे, गुञ्जासे सजाऊँगा। देखना कि इस सुकुमार शृंगारसे तू कितना सुन्दर लगने लगता है।'

'तू बहुत अच्छा है।' कन्हाई दूसरा कुछ कह नहीं सकता। यह जमकर बैठ जायगा—'तू मुझे सजा।'

यह आपके समीप, आपके हृदयमें ही बैठ जाय—इसकी छायासे भी अभाव, कामना, पीड़ा, अज्ञान, माया कोसों दूर भागती हैं। यह अन्तरमें आ जाय तो आपके परिपूर्ण होनेमें कुछ सन्देह शेष रहेगा ?

अतः मत पूछिये 'क्यों ?' यही आपका वास्तविक बिम्ब है, इसीको अलंकृत करना है। अब आप इस नटखटके लिए कुछ करेंगे ?



अभी कुछ नहीं ?–

अभी कुछ नहीं तो कभी कुछ नहीं। मनुष्यका—कहना चाहिये कि हम-आपका स्वभाव ही है उपस्थित प्रश्नको जितना सम्भव हो, उतना टालते जाना। शरीर और संसारके अतिरिक्त दूसरा कुछ तो सामने है नहीं और जो सामने है, उसीको सम्हालने, सँवारने, बचानेसे अवकाश नहीं है। यह भी देखनेका अवकाश नहीं कि यह सम्हालने, सँवारने, बचानेका प्रयत्न सफल भी हो रहा है या नहीं और व्यर्थ हो रहा है तो क्यों। सोचने-समझनेका ही अवकाश नहीं रहा।

'मेरे पास बड़े-बड़ोंको आना पड़ता है।' जिन्होंने कहा—उनका गर्व उचित था। उनकी बात ठीक थी। उनको सम्पत्ति प्राप्त थी और पर्याप्त अधिक अधिकार भी।

'लेकिन यह तो कोई बहुत अच्छी बात नहीं है।' जिसे किसीसे कुछ लेना नहीं और जिसके पास बिगाड़नेको कुछ बचा नहीं, वह मुँहफट हो जाय तो आश्चर्य क्या। आपने सुना ही होगा 'नंगा खुदासे चंगा।' मैंने उनसे कहा—'इस प्रकार तो किसी भी सार्वजनिक स्थानका मूत्रालय गर्व कर सकता है कि उसके यहाँ आनेको बड़े-बड़े विवश हैं।'

वे हक्के-बक्के मेरा मुख देखने लगे। उनका मुख क्रोधसे लाल हो उठा था। जीवनमें इतनी कठोर बात उनसे भला किसीने क्यों कही होगी। उनको इसलिए भी अधिक क्रोध आया हो सकता है; क्योंकि वे मुझे दो कड़े शब्द भी कहनेका साहस नहीं कर सकते थे।

'गुस्सेको थूक दो और समझदार बननेका प्रयत्न करो।' मैंने उसी ठण्डे स्वरमें कहा—'तुम प्रतिदिन मन्दिर जाते हो, कोई विवशता है? न जाओ तो कुछ बिगड़ जायगा?'

'यह तो मेरी आस्थाका—श्रद्धाका प्रश्न है।' उनका स्वर झुँझलाया था– 'मैं बहुत ही विवश न होऊँ तो मन्दिर जाना कैसे छोड़ सकता हूँ।'

'इसीलिए मन्दिरका गौरव है। मन्दिर पवित्र है, महान है।' मैंने अब स्पष्ट किया–'गौरव उसका है जिसके पास हम श्रद्धासे, प्रेमसे बिना

किसी आवश्यकताके जाते हैं। गौरव उसका नहीं है जिसके पास अपनी किसी आवश्यकतासे विवश होकर व्यक्तिको जाना पड़ता है। शौचालय या मूत्रालय जैसे महत्ताहीन हैं, वैसी ही स्थिति व्यक्ति बनाले अपनी—बुरी बात है। कम-से-कम भारतमें तो यह परम्परा है कि वह वीतराग संत महान माना जाता है जो कहीं एकान्त वृक्षके नीचे दिगम्बर या केवल लँगोटी लगाये पड़ा है। जिसके पास किसीको देनेके लिए दो चुल्लू पानी भी नहीं है।'

'आप ठीक कहते हैं।' वे सज्जन हैं। उनके नेत्र भर आये थे। उन्होंने कुछ क्षण रुककर पूछा —'संतकी इस महत्ताका रहस्य ?'

'उसने कन्हाईके लिए सर्वस्व उत्सर्ग कर दिया है। वह केवल कन्हाईके लिए श्वास लेता है।' मैंने हँसकर कहा—'वह अपने लिए तो कुछ करता ही नहीं। इसीलिए कन्हाईको ही उसके लिए सब कुछ करना पड़ता है—हाथ जोड़कर, पैर पकड़कर, बड़ा बनाकर करना पड़ता है।'

'क्या ?' चौंके वे।

यह समस्त विश्व कन्हाई ही तो है। संत सचमुच जब श्यामके लिए अपने आपको उत्सर्ग कर देता है तो कृष्ण उसकी उपेक्षा कर सकनेमें समर्थ है? विश्वके नाना रूपोंमें जो लीलामय लीला कर रहा है, वह उस संतके सम्मुख झुक जाता है। उसका 'योगक्षेम' तो वहन करता ही है, उसका सत्कार-सम्मान करते भी थका नहीं करता।

'बड़ा कठिन है अपनेको यह उत्सर्ग कर देना।' बहुत धीरेसे, अपने आपसे ही जैसे कह रहे हों, ऐसे कहा उन्होंने।

'कठिन है भी और नहीं भी है।' मैंने कहा —'यदि वर्तमान क्षणको कन्हाईके लिए उत्सर्ग करने—वर्तमानमें उसके लिए जीनेका निश्चय कर लिया जाय तो सरल बन जाय यह और यदि वर्तमानमें संसारको महत्त्व दिया जाय, वर्तमानमें बहुत आवश्यक कार्य जान पड़ते हों और इसे 'अभी नहीं' कहा जाय तो फिर यह बहुत कठिन हो जायगा।'

आप जानते हैं कि कामनाका कोई अन्त नहीं है। यह ऐसी पिशाची है कि इसकी पिपासा कभी तृप्त ही नहीं होती। संसारकी आवश्यकताएँ कभी पूरी होनेकी नहीं हैं। चलने वाले बैलको कोई छुट्टी नहीं देता। उसे घास-दाना अच्छा दिया जा सकता है। पुचकारा-सहलाया भी जा सकता

है ; किन्तु उसे जोते रहना है। छुट्टी तो उसे दी जाती है जो बैठ जाता है और पिटनेपर भी उठनेका नाम नहीं लेता।

आप समझ गये होंगे कि इसमें पिटनेकी—कष्ट पानेकी बात भी है ही। आप संसारकी सेवा नहीं करेंगे तो संसारके लोग आपकी सेवा करेंगे, आपके पैरोंको श्रीचरण कहकर चरणोदक लेंगे ; किन्तु यह तब करेंगे जब पहिले खूब ठोंक-पीट लेंगे। जब देख लेंगे कि आप उनकी उपेक्षा, उनके तिरस्कार, उनके उत्पीड़नसे प्रभावित ही नहीं होते।

कन्हाई चञ्चल है, नटखट है और विश्वरूपमें तो कठोर है, निष्ठुर है। अन्तर्यामी होकर ही यह नन्दतनय नितान्त सदय, सुकुमार है। बाहर तो उसका यह कालरूप है। आपने इसे 'कालोऽस्मि' कहते सुना नहीं है ?

सबकी उपेक्षा करके, सबका तिरस्कार आमन्त्रित करके अभी ही कन्हाईके लिए क्यों लगा जाय ? धीरे-धीरे, समय निकालकर, सबका सन्तोष करते हुए लगा जाय तो ?

तो कभी लगा ही नहीं जा सकेगा, यही तो मैं कह रहा हूँ। यह सबको सन्तुष्ट करनेकी बात आपकी नहीं है। यह वासनाकी बुरी गन्ध है। इसमे मोहका कल्मष है। यह सांसारिक सुख-सुविधा, मान-प्रतिष्ठाको पकड़े रहने और अधिकाधिक उपार्जित करनेका आग्रह है। आप समझते न हों तो समझ लें कि यह कन्हाईके कालरूपसे लिपटे रहनेकी क्रिया है।

अनन्तकालसे प्राणी इसी आग्रहसे ग्रस्त जन्म-मरणके चक्रमें पड़ा है। कालरूप तो मृत्यु ही देगा। उसके दूर हटे बिना अमरत्वकी आकांक्षा मृगमरीचिका मात्र है। अतः आपको इस ओरसे मुख तो मोड़ना ही है।

'मुख तो मोड़ना है ; किन्तु कुछ प्रमुख समस्याएँ सुलझाकर।'

यही मोह है। संसारकी समस्याएँ कभी सुलझती नहीं हैं। प्रत्येक व्यक्तिके सम्मुख सदा कोई-न-कोई समस्या रहती है और अवश्य उनमें कई प्रमुख बनी रहती हैं। इन्हें अनसुलझी ही छोड़ना पड़ता है। आप स्वयं नहीं छोड़ेंगे तो कालस्वरूप भगवान छोड़नेको विवश करेंगे।

समस्याएँ तो आपको अनसुलझी छोड़नी ही हैं—छोड़नी पड़ेंगी। इन सबको एक साथ सदाके लिए सुलझा देनेका उपाय है और वह यह कि इनको यहीं-की-यहीं छोड़कर आप कन्हाईके लिए वर्तमानका उत्सर्ग कर दीजिये।

इससे समस्याएँ कैसे सुलझेंगी ?

वस्तुतः कोई समस्या है ही नहीं। आपने सुना तो है ही कि किसीके बिना संसारका कोई काम नहीं अटकता। योग्यतम सेनापति या राष्ट्र-नायक नहीं रहे तो राष्ट्रोंका काम चला या नहीं ? आपके ही कुलमें—परिवेशमें अत्यन्त कुशल, योग्य सम्माननीय जन नहीं रहे तो क्या हुआ ?

'हमारे बिना अमुक-अमुक हानि हो जायगी।' यह आशङ्का अज्ञान है, अहङ्कार है, अत्यन्त मूढ़ता है। विश्वका पालन-सृजन, सञ्चालन जो करता है, वह सहस्रशः अनाथ शिशुओंको भी पाल लेता है और नितान्त पागलोंको भी मरने नहीं देता।

दूसरी बात—समस्याओंका मूल ही यह है कि आप कन्हाईसे दूर हैं। इस आनन्दकन्द कृष्णचन्द्रके समीप आकर कोई समस्या शेष ही नहीं रहती। समस्याएँ तो मायाकी उलझनें हैं। अन्धकारमें प्रत्येक पद रखनेके लिए टटोलना पड़ता है; किन्तु प्रकाशमें कहीं गतिके लिए कोई उलझन हुई है ? कन्हाई तो प्रकाशस्वरूप है। मायाकी समस्त उलझनें इसकी ओर उन्मुख होते ही दूर भागने लगती हैं।

दो टूक बात—कन्हाईके लिए कुछ करना है, इसमें आप यदि 'अभी नहीं' कहकर टाल देते हैं तो अपने लिए अभाव, कष्ट, उलझनोंको आमन्त्रित करते हैं। अभी नहीं, केवल कभी नहींका पर्याय है। अतः आपको अभी, इसी समय लग जाना है। अभी नहींकी ही बात करनी है तो सांसारिक समस्याओंके लिए कहिये—'ठहरो ! अभी नहीं। अभी अवकाश नहीं है।'



क्या ?

आपने निर्णय कर लिया कि कन्हाईके लिए कुछ करना है, कुछ किया जाना चाहिये तो बहुत कुछ हो चुका। इस मैया यशोदाके अत्यन्त लाड़लेके लिए क्या किया जाना चाहिये, क्या करना है इसका कोई बहुत महत्त्व नहीं है।

'श्यामसुन्दरके श्रीचरणोंके योग्य कोई आस्तरण सुझा दीजिये।' एकने मुझे पत्रमें लिखा—'बाहर तो मेरी अवस्था जैसी है, आप जानते हैं; किन्तु ध्यानमें भी मुझे ऐसा उपयुक्त कोई आस्तरण नहीं सूझता, जिसपर इसके अतिशय मृदुल चरणोंको कष्ट न हो। मेरा हृदय तो अत्यन्त कठोर है।'

जो गायोंके पीछे वन-वन भटकता फिरता है, जो नंगे पैर मथुरासे द्वारिका तक रणछोड़राय बना पैदल भागता चला गया, जो कुरुक्षेत्रकी युद्ध-भूमिमें—वाणों तथा दूसरे अस्त्र-शस्त्रोंके टुकड़ोंसे भरी, कटी-फटी लाशोंसे पटी रक्तके कीचड़से दल-दल बनी भूमिमें रथसे कूदकर भीष्मकी ओर दौड़ पड़ा और दौड़ता ही गया, उसके चरणोंके योग्य कोई आस्तरण? लेकिन सचमुच उसके चरण इतने सुकुमार हैं कि किसी भी किसलय, कुसुमदलका आस्तरण उनके उपयुक्त नहीं है। मुझे भी कुछ सूझता नहीं। आप कोई उपयुक्त आस्तरण सुझा सकेंगे?

श्रीमद्भागवतमें आया है कि भगवान् नारायण शेषशय्यापर शयन कर रहे हैं। सौन्दर्य, सौकुमार्यकी अधिदेवता भगवतीश्री उनका चरण-संवाहन करने बैठ तो गयी हैं; किन्तु वे अपने करोंसे उन चरणोंका स्पर्श करनेका साहस नहीं कर पाती हैं। उन्हें लगता है—'ये चरण इतने सुकुमार हैं कि मेरे करोंके स्पर्शसे इन्हें पीड़ा होगी।' अपने करों की कान्तिसे—केवल करोंसे निकलने वाली ज्योतिसे उन चरणोंका संचालन करती हैं।

भगवान् नारायण तो फिर भी निखिलैश्वर्यैक विग्रह हैं। उनमें मृदुताके साथ कठोरता भी है; किन्तु कन्हाईका श्रीअङ्ग तो नवनीतसारसे निर्मित है। कितना सुकुमार है श्रीब्रजेन्द्रनन्दन—आपकी कल्पनामें भी आजाय तो हृदय धन्य हो जाय।

मैयाने एक बार ही तो बाँधा था इसे ऊखलसे। मैयाका हृदय जीवन-भर हाहाकार करता रहा—'हाय, माँ होकर मैंने अपने ऐसे सुकुमार लालको बाँध दिया।'

मैयाने बहुत नवनीत लगाया, बहुत सुरभित तैल लगाती रही—बहुत दिनों तक--जब तक श्यामसुन्दर व्रज रहा, मैया नित्य इसके उदरपर कोई-न-कोई औषधीय तैल ही लगाती रही; किन्तु उदरमें पड़ी वह रज्जुकी नीली रेखा नहीं मिटी। वह मिट गयी होती तो आप इसे दामोदर कह पाते?

कन्हाईके लिए क्या करना है, यह सोचकर नहीं किया जाता। सोचने ही बैठेंगे तो कुछ हाथ नहीं आवेगा। सोचनेका काम बड़ी दाढ़ी और जटावालोंके लिए छोड़ दीजिये और आपके जो मनमें आवे वह कीजिये। व्रजमें तो कोई सोचता नहीं था। गोप, गोपियाँ, गोबालक, गायें, बछड़े, कपि, पक्षी--व्रजके तो वृक्ष-लताएँ, तृण तक श्यामके लिए कुछ-न-कुछ करते थे; किन्तु कोई सोचता नहीं था। सोचकर कोई कुछ करना चाहता तो कर पाता?

बहुत अटपटा काम है सोचनेका। अच्छा है कि संसारके लोग कुछ सोचते नहीं। केवल सोचनेका दम्भ करते हैं अथवा भ्रमसे समझते हैं कि वे भी सोच सकते हैं। क्योंकि सोचनेसे--विवेकसे, ज्ञानसे तो ब्रह्मा बाबाकी सृष्टि ही चौपट हो जाती है। संसार चलता ही है अज्ञानसे—सोचनेकी शक्तिके अभावसे। इसीलिए जो ज्ञानी हो जाते हैं वे नैष्कर्म्यको अपना लेते हैं। वे अवधूत बननेमें मौज मानते हैं।

अच्छा सुनिये—एक दिन श्यामसुन्दर कहींसे रूठा आया और मैयाकी गोदमें बैठकर बोला--'मैया, श्रीदामा मुझे चिढ़ाता है। कहता है कि तू बुद्धको उत्पन्न हुआ, इसलिए बुद्धू है। भद्र भी उसकी ओर हो गया है।'

'लेकिन लाल, बुद्धिमान तो वे दोनों भी नहीं हैं।' मैयाने हँसकर कहा।

'तब बुद्धिमान कौन होते हैं?' कन्हाई रूठना भूलकर जिज्ञासु बन गया। मैयाकी गोदमें सम्हल कर बैठ गया।

'महर्षि शाण्डिल्य हैं और दूसरे ऋषि-मुनि हैं।' मैया सहज कह गयी--'जिनके बड़ी-बड़ी जटाएँ हैं।'

'तेरे भी तो बड़े केश हैं और माँके भी।' कन्हाई अपने वाम करसे अपनी अलकें टटोलने लगा। इसने समझा कि बड़े केश होनेसे बुद्धि बड़ी होती है। अभी इसकी अलकें छोटी हैं; किन्तु केश तो सभी गोपियोंके खूब बड़े हैं। तब सबकी सब.... ....।

बात समझमें नहीं आयी। स्वयं सिर हिला दिया इसने—'केश तो बरसानेकी सब लड़कियोंके भी बड़े हैं; किन्तु वे मुझसे अधिक बुद्धिमान तो नहीं हैं। मैं उन सबको छका लेता हूँ।'

'हम सब और लड़कियाँ भी कंघीसे केश झाड़ती हैं।' खुलकर मैया हँसी।

'केश झाड़नेसे बुद्धि झड़ जाती है?' कन्हाई चौंका—'मत झाड़ा कर केश। मैं अब अपने केश नहीं झाड़ने दूँगा।'

'केश नहीं झाड़े जायँगे तो जटा बन जायँगे।' मैयाने हँसते-हँसते समझाया—'बुद्धि बहुत लेकर करना भी क्या है। मेरे लालको कोई जटाधारी बाबाजी तो बनना नहीं है।'

आजकल तो केश बढ़ाये रखनेकी सभ्यता चल पड़ी है। पता नहीं केशका बुद्धिसे सम्बन्ध है या नहीं। कोई बड़े वैज्ञानिक अन्वेषण करें तो पता लगे; किन्तु भय है कि कहीं उलटा निष्कर्ष न निकले; क्योंकि साधु-संन्यासियोंका एक बड़ा समूह मुण्डित मस्तक रहता है और ऐसे वर्गमें बहुत बड़े-बड़े बुद्धिमान हुए हैं। लोकोत्तर ज्ञानी हुए हैं।

मुझे तो मैयाकी बात ठीक लगती है। बुद्धिके पीछे लाठी लेकर पड़नेकी आवश्यकता नहीं है। मैंने पढ़ा है कि तिब्बतके लामाओंके एक परम विशिष्ट वर्गमें पहिले कपालमें काटपीट करके तृतीय नेत्र प्रकट करते थे और समाचार मिला है कि योरोपमें एक सम्प्रदाय चला है; जो अपने हाथसे अपनी खोपड़ीमें छेद करता है। भले बहुत थोड़े लोग इस सम्प्रदायमें हैं; किन्तु आप तो ऐसा कुछ करना नहीं चाहेंगे? बुद्धिको भी काम चलाऊ ही रहने दिया जाय तो कोई हानि है?

बुद्धि उधार तो मिलती नहीं; नकद भी खरीदनेका कोई उपाय नहीं। खोपड़ीमें छेद करके भी बुद्धि मिलती हो (वह छेद करने वाला सम्प्रदाय भी नहीं मानता कि बुद्धि मिलती है। वह तो स्फूर्ति और युवावस्था पानेके चक्करमें है।) तो भी लाभ नहीं होने वाला; क्योंकि कन्हाई ऐसा अटपटा है कि—'बुद्धि सहित जेहि जान न बानी।'

'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना।' सबकी अपनी-अपनी बुद्धि और सबके सब मानते हैं कि मेरी बुद्धि सबसे बड़ी। न भी हो सबसे बड़ी तो भी जितनी है उसीसे तो काम चलाना पड़ेगा। इसीलिए कन्हाईसे सम्पर्क बढ़ाना है तो एक बार बुद्धिकी बात बन्द कीजिये और हृदयकी बात सुनिये।

कहा तो कि व्रजमें कोई नहीं सोचता कि वह कन्हाईके लिए जो कुछ करना चाहता है—करता है, उसका कोई उपयोग या औचित्य भी है या नहीं। कोई गोपबालक कुछ पत्ते लिये दौड़ा आवेगा और मोतियोंसे सजी श्यामकी अलकोंमें उन्हें उलझा देगा। कुछ बालक इसे घेरकर बैठा लेंगे और इसके अङ्गोंपर वे गेरू, खड़िया, रामरजसे उलटी-सीधी रेखाएँ खींचेंगे। अपनी समझसे वे चित्राङ्कन करते है।

मृगोंमें-से कोई इसके सिरके ऊपरसे कुलांच लेने लगेगा। गिलहरियाँ इसके पीतपटमें लुकाछिपी खेलेंगी। शशक इसके चरणोंसे सटकर बैठेंगे। इसमें-से किसी की किसी क्रियाका औचित्य या उपयोगिता आप बतला सकते हैं ?

कन्हाई तो है ही ऐसा कि इसे कहो—'तू थक गया है।' यह माने या न माने, इसका चरण-संवाहन करो।

'तेरी अलकें ऐसे सुशोभित नहीं हो रही हैं।' अब आप अलकोंमें पुष्प सजाओ या पत्ते, किसका साहस है जो कहेगा कि श्यामकी अलकें उनके बिना भी सृष्टिके सौन्दर्यको सप्राण करती हैं।

कन्हाईको कुछ आवश्यकता होगी, कुछ इसे अलंकृत करेगा, ऐसी बात सोचनेका साहस तो सृष्टिकर्त्तामें भी नहीं है; किन्तु आप इसके लिए जो कुछ करेंगे, वह सब इसे प्रसन्न करेगा। उससे यह प्रफुल्ल होगा उसे महत्त्वपूर्ण मानेगा। इसने तो प्रतिज्ञा की है—'पत्रं पुष्पं ……। अतः यह मत सोचिये कि आप इसके लिए क्या करने योग्य हैं। यह देखिये कि आप क्या कर सकते हैं और जो कर सकते हैं, कीजिये। उसे पूरे मनसे—पूर्णताके साथ कीजिये।



क्या नहीं ?—

आपका यह प्रश्न अनुचित नहीं होगा, यदि आप पूछें कि 'कन्हाईके लिए क्या नहीं करना चाहिये ?'

कहीं यात्रा करनी है, किसी लक्ष्य तक पहुँचना है तो भले अपने पैर अत्यन्त थक गये हों, अपनेमें चलनेकी शक्ति न रही हो और शान्त—शिथिल होकर अपने बैठ चुके हों; किन्तु अपनेको यह तो पता ही होना चाहिये कि किधर जाना है और किधर नहीं जाना है।

यह जानकारी केवल इसीलिए आवश्यक नहीं है कि जब चलने योग्य होंगे तब उचित दिशामें चलेंगे, अपनी बची-खुची शक्ति भटकनेमें नष्ट नहीं होगी। यह जानकारी इसलिए भी आवश्यक है कि कोई विपरीत दिशामें भटका न दे।

ऐसे अकारण कृपालु लोगोंका कभी अभाव नहीं रहा, जो मनुष्यको मार्ग बतलानेका ठेका ले लेते हैं—तब जबकि उन्हें स्वयं पता नहीं होता कि वे कहाँ भटक गये हैं। आप जानते ही हैं कि श्रीकृष्णके अवतार-कालमें अपनेको भगवान वासुदेव घोषित करने वाले दो और भी थे—पौण्ड्रक और शृगाल *। दो और व्यक्ति अपनेको पैगम्बर घोषित करने वाले हजरत मुहम्मद साहबके समयमें भी थे और आजकी तो पूछिये ही मत। आज तो लगभग ढाई-तीन सौ व्यक्ति अकेले भारतमें ही अपनेको अवतार घोषित करने वाले हैं, भारतके बाहर भी अवतार तथा दिव्य-सन्देश देने वाले कम नहीं हैं।

ये अकारण कृपालु लोग आपको कहीं भटका न दें, यह सतर्कता आवश्यक है या नहीं ?

तब किया क्या जाय ? केवल इतना भली प्रकार समझ लिया जाय कि कन्हाई कहीं बहुत दूर नहीं है। यह हृषीकेश अन्तर्यामी है। यह आपके ही भीतर छिपा बैठा है। अतः इसके पास जाना हो तो एक ही मार्ग—अन्तर्मुख होना। अब जो किसी भी प्रकार बहिर्मुख बनाता है अथवा

---

* इन दोनोंकी पूरी कथा 'श्रीद्वारिकाधीश' में आ चुकी है।

आपकी बहिर्मुखताका समर्थन करता है—वह चाहे जितना बड़ा विद्वान या चमत्कारी पुरुष हो, उससे दूर रहना ही ठीक होगा। कन्हाईके लिए आपको कुछ करना है तो पहिली बात यह हृदयमें बैठा लेना है।

एक महात्मा कहते थे—'ईश्वर इतना निर्दय नहीं है कि अपने बच्चोंको अन्धकारमें छोड़ दे और उन्हें कोई प्रकाश न दे। मायाके—अज्ञानके गहन अन्धकारमें गर्त हैं, शूल हैं और हिंस्र पशु हैं; किन्तु उस दयामयने सबको प्रकाश दे रखा है। उस सबकी रक्षाके लिए नित्य उद्यत है जो उसे पुकारते हैं। उसकी सहायता चाहने वालेको वह सहायता देता ही है।'

'बेवकूफ है। चलता क्यों नहीं।' एक दूसरे महात्मा कहा करते थे। वे साधन-भजन पूछनेपर प्रायः उत्तर देते थे—'चल! चलेगा तो तेरा अन्तर्यामी स्वयं तेरे आगे-आगे चलेगा।'

प्रायः लोग चलते नहीं--चलना चाहते नहीं। पूछकर, पढ़कर केवल जानकारी बढ़ाना—सीधे कहें तो मस्तिष्ककी खुजली मिटाना चाहते हैं।

मैं मानता हूँ कि ग्रन्थोंका, उपदेशका भी उपयोग है। कौन कहेगा कि सड़कोंके मानचित्र व्यर्थ हैं; किन्तु केवल मानचित्रोंका संग्रह किसीको कहीं पहुँचावेगा? मानचित्र यात्रा करने वालोंके लिए होते हैं।

कन्हाईकी ओर जाना है? यह विचित्र बात नहीं है कि आपको इस यात्राको प्रारम्भ करनेका ज्ञान है। प्रत्येकको पता है कि ईश्वरके लिए उसे क्या कुछ करना है। इस जानकारीमें विभिन्नता हो सकती है; क्योंकि सब मानसिक रूपसे एक धरातलपर नहीं खड़े हैं। जो जहाँ है, वहींसे तो उसका मार्ग प्रारम्भ होगा।

अन्धकारमें यात्राके लिए विपुल प्रकाश ही हो, यह आवश्यक नहीं है। विपुल प्रकाश भी एक सीमा तक ही पथ-प्रदर्शित कर सकता है और चलना तो पैर उठाकर ही है। तब छोटे प्रदीपका प्रकाश भी कम कहाँ है। वह जितना दिखलाता है, उतना चलें तो वह आगेका पथ प्रकाशित करता चलेगा।

उलझन उनके लिए है जो चलते नहीं। जो अपनी जानकारीका आदर नहीं करते। उनके लिए तो बहुत उलझन है जो बिना चले ही पहुँच जाना चाहते हैं। बहुत पुराने कालसे लोग स्वर्ण बनाने के चक्करमें हैं और जबसे नोट चले, नोटोंको दुगुना करनेका चक्कर भी चल पड़ा। इसमें

पड़ने वाले घरकी पूँजी भी खो बैठते हैं। अध्यात्मके क्षेत्रमें यह प्रपञ्च बहुत अधिक है; क्योंकि व्यक्ति जब श्रम किये बिना श्रमफल चाहने लगता है तो उसे ठगने वालोंका अभाव नहीं रह जाता।

आप जानते हैं कि प्रीति स्वयं सेवा करना सिखला देती है। यह सम्भव नहीं है कि आप किसीसे प्रेम भी करें और उसकी सेवा आपसे न बने या आपको उसकी सेवा करनेकी पद्धति ज्ञात न हो जाय। केवल प्रीति होनी चाहिये आपके मनमें।

आपके मनमें कन्हाईसे मिलनेकी--इस नन्दनन्दनको प्रसन्न करनेकी उत्कण्ठा उत्पन्न होनी चाहिये। तब आपका स्वभाव स्वतः बन जायगा कि आप अपनेसे बार-बार पूछेंगे--'यह करनेसे कन्हाईको बुरा तो नहीं लगेगा ? उसके नित्य प्रफुल्ल मुखपर खिन्नताकी छाया तो नहीं पड़ेगी इससे ?'

क्या नहीं करना है, यह दूसरोंसे पूछना आवश्यक नहीं है। ग्रन्थोंको उलटे बिना भी काम चल सकता है। कन्हाईसे प्रीति होगी तो उसको प्रिय न लगे, ऐसा आपसे होगा ही नहीं अथवा होगा तो उससे आपको दुःख होगा।

दिवंगत श्रीशारदाप्रसादजी (मन्त्री, मानस संघ) ने सुनाया था कि उनके यहाँ एक बार छोटा काछी आया। उनसे रसगुल्ला खानेकी इच्छा की। कोई बुरी इच्छा तो नहीं थी ? कोई निषिद्ध कर्म तो था नहीं। सस्तीका समय था। श्रीशारदाप्रसादजीने उसे भरपेट रसगुल्ला खिला दिया।

'बाबू ! बड़ी भूल हुई।' सबेरे वह ग्रामीण अनपढ़ बहुत दुःखी दीखा। वह बोला—'अब जीवनमें कभी मिठाई नहीं खाऊँगा।'

'क्यों ? क्या हुआ छोटा !' शारदाप्रसादजीने पूछा।

'बड़ा अनर्थ हुआ।' छोटा रो रहा था--'कल मेरे रामजी मेरे पास आये ही नहीं।'

उसे रात्रिमें भले नित्य भगवद्दर्शन होता रहा हो, आपको भी तो भगवत्स्मृति होती है। बराबर न सही--यदा-कदा होती है। आप यह तो देख ही सकते हैं कि क्या करनेसे वह स्मृति बढ़ती है और क्या-क्या करनेसे

वह घटती है। जो आहार और आचार विस्मृति बढ़ाते हैं, वे सब त्याज्य हैं, क्या इसे समझनेमें भी कोई कठिनाई है आपको ?

मैंने जान-बूझकर आहारकी बात सम्मिलित की है ; क्योंकि आहारका प्रभाव मनपर पड़ता है। अनेक आहार निद्रा, आलस्य, क्षोभ बढ़ाने वाले हैं। इनकी सूची ग्रन्थोंमें तो है ; किन्तु प्रत्येक व्यक्तिकी शारीरिक एवं मानसिक क्षमता तथा परिस्थितिके अनुसार इनका निर्णय उसे ही करना है। केवल ईमानदारीसे करना है।

अपने ही अनुभवकी बात--भोजन बना नहीं पाता और स्थायी कहीं रहता नहीं। एक बार ऐसा अटपटा फँस गया—भोजन किये बिना तो शरीर चलता नहीं और जो भोजन मिलता था, वह शास्त्र-निषिद्ध न होने-पर भी पवित्र नहीं लगता था। मन मारकर उसे उदरस्थ करता था ; किन्तु उसे कन्हाईको तो नहीं खिलाया जा सकता। मनसे भी उसे भोग लगाये बिना खा लिया जाय—बड़ा कष्टकर है यह काम ; किन्तु अनेक बार व्यक्ति विवश रहता है अप्रिय कामोंको करनेके लिए।

आपको जो कन्हाईके अयोग्य लगे, वह नहीं करना है। जो करनेसे वह मुँह फुलावेगा, ऐसा सन्देह आपके मनमें उठता हो, वह नहीं करना है। जिसका सेवन करके, जिसे करके, जिस संगतिमें सम्मिलित होकर उसकी विस्मृति बढ़ती है, उन सबसे दूर रहना है।

जो कुछ भोगोन्मुख करता है, सांसारिक लोभ-मोहको पुष्ट करता है, बहिर्मुखताको प्रोत्साहित करता है, वह सब नहीं करना है, यही कसौटी आप पकड़ लें तो आप कन्हाईसे दूर नहीं होंगे।



इष्टापूर्त ?—

इष्ट और आपूर्त—दोनों पुराने शब्द हैं—शास्त्रीय शब्द। इष्टका अर्थ होता है अभीष्ट—परमाभीष्ट। लेकिन बहुत प्राचीन कालसे यह शब्द पारलौकिक कल्याणके लिए किये जानेवाले कार्योंके अर्थमें रूढ़ हो गया है। जैसे जलज कमल ही है। जलमें उत्पन्न होनेवाली घासें, घोंघे, सीप, मछलियाँ जलज नहीं कहलातीं।

इष्टका अर्थ समाजमें इस समय आराध्यके अर्थमें रूढ़ है; किन्तु सच यह है कि कम ही लोग हैं जिनके इष्ट भगवान हों। भले वे राम, कृष्ण, नारायणादिमें-से किसीको अपना इष्ट बतलावें, उनका अभीष्ट क्या है, जीवनमें वे अपना परम प्राप्य क्या मानते हैं, यह देखें तब उन्हें पता लगे कि उनका इष्ट पैसा है, प्रतिष्ठा है, भोग है या भगवान हैं।

पुराने समयके लोगोंमें श्रेय और प्रेय दो शब्द प्रचलित थे। श्रेयका अर्थ मरणोत्तर जीवनका हित और प्रेयका अर्थ इन्द्रियोंको, मनको प्रिय लगने वाली स्थिति। लोग प्रेयको जीवन-यापनके लिए अपनाते थे; किन्तु जीवन-यापनमात्रके लिए। श्रेयोन्मुख रहना ही उन्हें अभीष्ट था।

श्रेयोन्मुख व्यक्तिका इष्ट होता है। शरीर-त्यागके पश्चात् उसे क्या प्राप्त करना अभीष्ट है, इसको इष्ट कहते हैं। यह इष्ट भी विभिन्न हो सकता है। अपनी रुचिके अनुसार व्यक्ति स्वर्ग, ब्रह्मलोक, सिद्धपदकी आकांक्षा कर सकता है अथवा शिवलोक, वैकुण्ठ, साकेत, गोलोकादिमें-से कहीं जाना या निर्वाणको लक्ष्य बना सकता है।

श्रेयके लिए—इष्टकी प्राप्तिके लिए व्यक्ति जो कुछ करता है, उसे इष्ट कहा जाता है। यह ऐसा ही है जैसे अमरूदके वृक्षको भी अमरूद कहते हैं। इस इष्ट कर्ममें धर्म-पुरुषार्थ और मोक्ष-पुरुषार्थ दोनों आ जाते हैं। अवश्य ही धर्मका लौकिक अंश इसमें नहीं आता। धर्मका लौकिक अंश आपूर्तमें आता है।

आपूर्तका अर्थ है समाजके अभावको दूर करनेके लिए किये जाने वाले कर्म। इसमें कुआँ-सरोवर खुदवा देना, सड़कें बनवा देना, धर्मशाला, औषधालय, अन्नसत्र आदि सब लोकोपयोगी कार्य आ जाते हैं।

आजकल एक शब्द चला है कर्मयोग; किन्तु यह शब्द प्रायः बिना सोचे प्रयुक्त किया जाता है। कर्म, भक्ति या ज्ञानके साथ योग शब्द तभी लग सकता है, जब वह कर्म, प्रेम या ज्ञान परमात्माकी प्राप्तिका साधन बनता हो। अन्यथा आप उसे भले निष्काम कर्म कहें--वह योग नहीं है। अतः आपूर्तको शास्त्रकारोंने धर्म माना, स्वर्गप्रदायक माना; किन्तु योग नहीं माना।

आजकल तो केवल व्याख्यान देनेवाले लोक-सेवक, कर्मयोगी आदि कहे जाते हैं। जबकि यह समाजमें सम्मान ही नहीं, सरलतापूर्वक समस्त सुविधाओंको उपलब्ध करनेका साधन भी है। लेकिन हम यहाँ शब्दोंके दुरुपयोगकी चर्चा नहीं करेंगे।

बात यह है कि हमारे-आपके अन्तःकरणमें कर्तृत्वका अभिमान बद्धमूल है। फलतः व्यक्ति समझ ही नहीं पाता कि कुछ नहीं किये बिना उसे कोई उपलब्धि कैसे होगी। किसीकी भी प्रसन्नता पाना है तो कुछ किया जाना चाहिये। यहाँ तक कि नैष्कर्म्यके साधक भी पूछते हैं--'हम क्या करें ?'

अपने स्वभावसे व्यक्ति विवश है। यह विवशता ही प्रश्न उठाती है कि कन्हाईके लिए इष्टापूर्तमें-से वह क्या-क्या करे ? कितना करे ?

इसका कोई निश्चित उत्तर दिया नहीं जा सकता; क्योंकि व्यक्तियोंकी रुचि, शक्ति-सामर्थ्य समान नहीं है। सबकी परिस्थिति एक जैसी नहीं है। जैसे कोई पूछे--'रोग होनेपर क्या दवा ली जाय ?' इसका कोई सुनिश्चित उत्तर सम्भव नहीं। सब रोगोंकी कोई एक ही दवा नहीं होती। एक रोगकी भी दवाका निश्चय करनेके लिए रोगीकी आयु, शक्ति, देश तथा मौसम आदि अनेक बातें देखनी पड़ती हैं।

जहाँ तक इष्ट कर्मोंकी बात है, वे हैं ही पारलौकिक कल्याणके लिए। उनमें-से कन्हाईके लिए क्या किया जाय, यह आपकी रुचि और शक्तिपर निर्भर है। मुझसे एकने पूछा--'तुम तीर्थ-यात्रा क्यों करते हो ?'

सचमुच मुझे न भ्रमणका लोभ था और न तीर्थ-यात्रासे होने वाले पुण्यका। तीर्थ-यात्रासे पुण्य होता है, पाप क्षय होता है, यह मैं मानता हूँ।

तीर्थयात्राके बहाने देशाटन हो जाता है, इसे कैसे अस्वीकार किया जाय; किन्तु यदि ईमानदारीसे उत्तर देना हो तो मुझे कहना चाहिये--'एक स्थानपर बहुत दिन टिके रहना स्वभाव नहीं है। स्वभाव ही घुमन्तू हो गया है और जब घूमना ही है तो ऐसा घूमा जाय कि वह कन्हाईको भी प्रिय लगे।'

आपूर्तकी--लोकहितकी बात बहुत उत्तम है; किन्तु थोड़ी टेढ़ी है। इसीलिए मैं लोकहित शब्दका व्यवहार न करके आपूर्तका प्रयोग कर रहा हूँ। महात्मा गाँधीने 'जनता-जनार्दनकी सेवा' शब्दका प्रयोग किया था। यह शब्द बहुत महत्वपूर्ण है।

आपूर्त धर्म है, पाप-क्षय करता है। पुण्य प्रारब्ध उत्पन्न करता है। आपूर्त यदि सकाम है तो कामनाओंकी पूर्ति करता है और निष्काम है तो अन्तःकरणकी शुद्धि करता है। लेकिन इसमें एक दोष है, इससे अहङ्कारकी पुष्टि अथवा वृद्धि हो सकती है। बिना चाहे भी इससे समाजमें जो प्रतिष्ठा, सुयश मिलता है, उसमें आसक्ति हो सकती है। लोकसेवाके काम करके अपने लिए लौकिक लाभके साधन सुगम कर लेने वालोंकी चर्चा यहाँ नहीं। वे तो विशुद्ध व्यापारी हैं। उनके लोकहितके कार्योंको आपूर्त कहना ही उचित नहीं।

युगकी आवश्यकताके अनुरूप आपूर्त कर्मोंका स्वरूप बदलता रहता है। यह परिवर्तन उचित है। पहिले अन्नसत्र खोलने, धर्मशालाएँ बनवानेको बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता था। जलाशय बनवा देना अब भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है, नेत्रदान-यज्ञ, औषधालय, पाठशाला, अतिथिगृह आदिके काम भी महत्त्वके ही हैं। महामारी अथवा बाढ़, अकाल, भूकम्पादिसे पीड़ितोंकी सहायता सदा महत्त्वकी रहेगी।

भगवान विश्वरूप हैं। वे ही नाना रूपोंमें हैं। आपूर्तके द्वारा उन्हींकी सेवा की जाती है। अतः आपूर्त कन्हाईके लिए है, कोई सन्देह नहीं। लेकिन लोग दरिद्र हैं, दुःखी हैं, पीड़ित हैं, अभावग्रस्त हैं, यह मानकर आप उनकी सेवा-सहायता करने जाते हो, तब भी आप धर्म ही करते हो। आपको पुण्य होता है। परन्तु आप धनी, समर्थ, दयालु बनकर जाते हो तो आपका काम कन्हाईके लिए तो नहीं हुआ।

इस विश्वरूपमें होनेपर भी व्रजेन्द्रनन्दन न तो दरिद्र है, न दुःखी है, न विपन्न या अभावग्रस्त है। यह परमोदार तो आपको सेवाका सुअवसर देनेके लिए ये विभिन्न रूप अपनाता है।

आप इस बातको न मानें तो पूछना पड़ेगा कि संसारका सञ्चालक अपने संसारको सम्हालनेमें असमर्थ हो गया है कि आप उसकी सहायता करेंगे ?

'जनता जनार्दन' शब्द बहुत सार्थक है। जनता जनार्दन है। इस जनार्दनको सेवा-सहायताकी आवश्यकता इसलिए है कि आप इस प्रकार सेवाका सौभाग्य पा जाते हैं।

साकेतवासी संत रणछोड़दासजीकी ओरसे सतनामें नेत्रदान यज्ञ चल रहा था। वे वीतराग संत एक ओर मोटे कम्बलपर पड़े रहते थे। रोगियोंकी और उनके साथ आये परिचारकोंकी जो उत्तम सेवा हुई, उसे अब तक स्मरण किया जाता है। जिस दिन रोगियोंको विदा किया गया, उस दिन सबको धूपका हरा चश्मा दिया गया था। एक-एक वस्त्र दिये गये थे। अन्तमें महात्मा रणछोड़दासजीने सब रोगियोंके चरणस्पर्श करके हाथ जोड़कर प्रार्थना की--'मेरे प्रभु ! आपने इतने रूपोंमें पधारकर इस दासको कृतार्थ किया। मैंने तो आपकी ही सामग्री आपको अर्पित की ; किन्तु आप परमोदारने दासको यह सेवाका अवसर देकर धन्य किया।'

आपूर्त इस प्रकार किया जा सके तो निश्चय कन्हाईको प्रसन्न करता है। आपको प्रभुने सम्पत्ति दी है, सुविधा दी है तो विनम्र बनकर जनताको जनार्दन मानकर सेवा कीजिये।

आपके पास आपूर्तके साधन नहीं तो भी हानि क्या है ? तीर्थ-यात्रा, देवपूजन, जप-पाठ, ध्यान—जो बन सकता है, उससे अधिककी आशा आपसे कोई नहीं कर सकता। नन्दनन्दन तो उदार है, परम दयालु है। इसके लिए आप जो कुछ करते हैं, करेंगे वही पर्याप्त होगा। वही उसे सन्तुष्ट करेगा ; किन्तु किया उसके लिए--केवल उसके लिए किया जाय।



धर्माधर्म ?—

आप पूछ ही सकते हैं कि कन्हाईके लिए कौन-सा धर्म किया जाना चाहिये और किन अधर्मोंका त्याग आवश्यक है ?

इससे पहिले प्रश्न उठता है—धर्म क्या ?

बहुत सीधी परिभाषा दी है श्रीमद्भागवतने—

'**स्वभावविहितो धर्मः ।**' श्रीम. भा. ७.१५.१४

जिसका जो सहज स्वभाव है, वही उसका धर्म है। यह परिभाषा 'धार्यतेति धर्मः' को ही स्पष्ट करती है। जो धारण करने वाली शक्ति है, उसका नाम धर्म है। जैसे उष्णता न रहे तो अग्निको आप अग्नि कहेंगे ? अग्निकी धारिका शक्ति उष्णता है, इसलिए उष्णता अग्निका धर्म है। उष्णता देना अग्निका स्वभाव है।

पदार्थों और प्राणियोंके सम्बन्धमें यह परिभाषा निरपवाद सत्य है; किन्तु मनुष्योंने अपना स्वभाव विकृत कर लिया। अब मनुष्यके लिए कठिन हो गया यह जानना कि उसके स्वभावमें कितनी विकृति है। अतः सहज स्वभावको धर्म मानकर चलनेपर वह भटक जा सकता है। इसलिए परिभाषा करनी पड़ी शास्त्रको—

'**यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः स धर्मः ।**'

जिससे इस लोकमें अभ्युदय हो और पारलौकिक कल्याण भी हो, वह धर्म है। लेकिन पारलौकिक कल्याणसे अविरुद्ध अभ्युदयका साधन-निर्णय भी बहुत सरल नहीं है। तब सीधी बात कह दी गयी—'**चोदना लक्षणो धर्मः ।**'

जिसके लिए, जिस परिस्थितिमें, जब जो कुछ करनेकी प्रेरणा शास्त्र देता है, उसके लिए, उस परिस्थितिमें, उस समय वही धर्म है।

शास्त्र एक पुस्तकका नाम नहीं है। शास्त्र अपार है और सम्पूर्ण संसारके सब मनुष्योंकी सार्वकालिक स्थितियोंके लिए उसमें विधान हैं। अतः पहिले शास्त्रोंका सम्यक् अध्ययन करो और तब उसमें निर्णय-निपुणता

प्राप्त करो कि कौन-सा विधान किस देशके, किस कालके, किन स्थितियोंमें पड़े लोगोंके लिए है। यह आपको क्या सरल लगता है। महापुरुषोंने भी घबड़ाकर कह दिया—

'शास्त्रजालं महारण्यम्'

शास्त्रोंका विस्तार तो बहुत बड़ा जंगल है। उसमें भटक जानेका ही भय बहुत है।

तब ? लेकिन यह प्रश्न आपके सामने कहाँ है। यह प्रश्न तो उसके सामने उपस्थित होता है जो धर्म पुरुषार्थी है। आपको तो कन्हाईके लिए कर्म करना है। यह गोपकुमार कहाँका धर्मज्ञ शिरोमणि है कि आप इतनी चिन्ता करते हैं।

'धर्मस्य प्रभुरच्युतः।'

आपको नन्दनन्दनके रूपमें नहीं, किसी अन्य रूपमें प्रीति है तो भी चिन्ता करनेकी तो कोई बात नहीं है। जीव धर्मके परतन्त्र है। श्रीहरि तो धर्मके स्वामी हैं।

सबसे बड़ी बात यह कि भगवान् पतित-पावन हैं। भगवान् भक्त-वत्सल हैं। भगवान् भक्त पक्षपाती हैं। हमारे कन्हाईको न्यायाधीश बनना अत्यन्त अप्रिय है। नारायणने भी यह काम यमराजको दे रखा है। भगवान् यदि धर्मात्माका ही उद्धार करते हों, कोई विशेषता रही भगवान्में ? धर्मात्माका उद्धार तो उसका धर्माचरण ही कर देगा। भगवान् पतित-पावन न हों, भगवान्की आवश्यकता ?

श्रीव्रजेन्द्रनन्दन तो अपनोंका अत्यन्त पक्षपाती है। इसने संजयसे दो टूक कहा —

यस्तान् द्वेष्टि स मां द्वेष्टि,
यस्ताननु स मामनु।'

जो पाण्डवोंसे द्वेष करता है, वह मुझसे द्वेष करता है। जो उनके पीछे चलता है, वह मेरे पीछे चलता है।

यह बात केवल पाण्डवोंके सम्बन्धमें कही गयी हो, ऐसा नहीं है। यह तो शाश्वत सत्य है। सब समयके लिए, सर्वत्रके लिए यह घोषणा है। केवल इतनी बात है कि कन्हाईको आप अपना बना लें।

'लोके वेदेषु तदनुकूलाचरणं तद्विरोधिषूदासीनता ।

—नारद-भक्ति-सूत्र. ११

लौकिक कार्योंमें और वैदिक—शास्त्र विहित कर्मोंमें भी एक नियम कर लेना है—अपने आराध्यके अनुकूल आचरण और उसके विपरीत पड़नेवाले कर्मोंसे उदासीनता ।

जो कर्म उसके विपरीत जान पड़ते हैं, उनका खण्डन नहीं—उनका विरोध नहीं । किसीके पीछे लाठी लेकर पड़ना अच्छी बात नहीं । संसार बहुत बड़ा है और काल अनन्त है । शास्त्रके जो विधान हमारे अनुकूल नहीं पड़ते, वे दूसरे किसीके लिए होंगे । हमने ही कोई सम्पूर्ण संसारके तीनों कालोंके मनुष्योंका ठेका ले रखा है ? इसलिए खण्डन नहीं, उदासीनता-तटस्थता ।

अपने अनुकूल आचरणकी बात नहीं है । एक सज्जन कहते हैं—'चोटी रखनेमें मुझे लज्जा आती है ।' दूसरेका कहना है—'सन्ध्या करनेमें मन नहीं लगता ।' इसका अर्थ हुआ कि अपने अनुकूलाचरणका दुराग्रह है । ऐसा तो सभी लोग कर ही रहे हैं, आप भी करते हैं तो आप भगवान्‌की ओर उन्मुख हैं, इसके सम्बन्धमें आशा मत कीजिये । प्रेम अपनी रुचि, अपनी सुविधाका बलिदान माँगता है, यह बात आपके ध्यानमें होगी ।

अपने हृदयसे ईमानदारीसे पूछिये—'मेरा यह कर्म मेरे आराध्यको प्रिय लगेगा ?'

आपको आराध्य प्रिय हैं तो आपका हृदय गलत उत्तर नहीं देगा। आपने सुना है कि श्रीरामकृष्ण परमहंसके एक प्रियजनके सम्बन्धमें लोगोंने परमहंसजीसे कहा—'वे सुरापान करते हैं ।' परमहंसजीके पास जब वे आये तो उनसे परमहंसजीने कहा—'सुरा पीता है ? कोई बात नहीं, माँको भोग लगाकर पिया कर ।'

आप क्या सोचते हैं कि यह शराब पीनेकी अनुमति थी अथवा उसका समर्थन था ? ऐसी बात प्रत्येक मद्यपसे कही जा सकती है ? ऐसा करनेवाला तो अविवेकी होगा । परमहंसजी जानते थे कि वे जिससे कह रहे हैं, उनकी 'माँ' में प्रीति है, श्रद्धा है । परिणाम क्या हुआ ? कई दिन पश्चात् परमहंसजीके पूछनेपर वे रो पड़े—'आपकी आज्ञाका तिरस्कार नहीं कर सकता था और इतनी गन्दी वस्तु माँको निवेदन करनेका साहस नहीं हुआ । अतः सुरा तो छूट ही गयी ।'

उनका रुदन इसलिए नहीं कि सुरा छूट गयी। रुदन इसलिए कि 'इतने अधम निकले हम कि परमहंसजीको मुझे माँको सुराका भोग लगानेकी अनुमति देनी पड़ी।'

कन्हाईको जो प्रिय लगे, वह धर्म, वह कर्तव्य और इसे जो अप्रिय लगे वह अधर्म, वह अकरणीय ! आपको धर्माधर्मकी यह परिभाषा माननेमें आपत्ति नहीं होना चाहिये।

'कन्हाई मिला नहीं। हृदयमें भी इसका आकार आता नहीं। कैसे पता लगे कि इसे क्या प्रिय है, क्या अप्रिय है ?'

इसकी भी चिन्ता मत कीजिये। आपको जो लगता है कि यह नन्दनन्दनको अच्छा लगेगा, वह आपका धर्म। आपको लगे कि यह इसे अच्छा नहीं लगेगा, इससे इसे असुविधा होगी, वह आपके लिए अधर्म।

इस नटखटने एक बार दाऊदादाके बायें कन्धेपर सिर रखा। अग्रजके दाहिने तो यह खड़ा नहीं हुआ करता। स्वभावका चपल, बड़े भाईके कन्धेपर मस्तक हिलाता रहा। जब हटनेका मन हुआ तब दोनोंको पता लगा कि दाऊका कुण्डल इसकी घुँघराली अलकोंमें उलझ गया है। दोनों छोटे ही थे। मस्तक सटाये दोनों मैयाके समीप गये। मैयाने अलक सुलझा दी। कन्हाई हँसता, ताली बजाता कूदने लगा। इसे लगा ही नहीं कि कुछ अकरणीय हुआ। इसे तो किसीका अकरणीय दीखता ही नहीं।

दाऊने उसी दिन वामकर्णसे कुण्डल उतार दिया। वे सदा एक कर्णमें ही कुण्डल पहिनते हैं। एक ही कर्णमें कुण्डल पहिना जाय—यह कोई शास्त्र आदेश देगा ? और किसीको आपने इस वेशमें देखा कहीं ? न यह शास्त्राचार और न लोकाचार; किन्तु यह दाऊका धर्म—उनका सहज स्वभाव बन गया है।

कन्हाईके लिए धर्माधर्मकी बात सोचनी है तो दाऊसे ही सीखना चाहिये। दाऊ—श्रीसंकर्षण जीवोंके परमगुरु, जीवोंको कन्हाईका सान्निध्य देनेके परमव्रती। आप इन बड़े भैयासे नहीं सीखेंगे तो सीखेंगे किससे ?

कभी सन्देह ही हो जाय कन्हाईको प्रिय लगेगा या अप्रिय और आप निर्णय न कर पा रहे हों तो स्वर्णगौर, किञ्चित् अरुण नयन, नीलवसन, एककुण्डली दाऊका ध्यान कर लीजिये। आपको प्रकाश प्राप्त हो जायगा। आपकी द्विविधा दूर हो जायगी।



जप-तप ? पूजा-पाठ ?—

अद्‌भुत हैं भगवान और भगवानके निजजन भी। मैं केवल कन्हाईकी बात नहीं कहता। कन्हाई तो है ही ऐसा कि ब्रह्माबाबा भी इसे समझ नहीं पाते। वे भी हाथ ही जोड़ते हैं। बात सभी भगवद् रूपोंकी। आपने भक्त गाथाएँ पढ़ी हों तो घमोचनकी बात भी पढ़ी होगी। किसी ग्रामीण भोले किसानको किसी दढ़ियल बाबाजीने अघमोचन नामका जप बतला दिया। बेचारा किसान अघमोचन स्मरण नहीं रख सका। वह घमोचनका जप करने लगा।

उसे प्रात: जगनेसे रात्रि सो जाने तक 'घमोचन घमोचन' की धुन चढ़ गयी। फल हुआ कि भगवान शेषशायी व्याकुल हो गये उसका दर्शन करनेके लिए। चलने लगे तो लक्ष्मीजीने भी साथ चलनेका हठ किया— 'मैं भी तो देखूँ कि इस कलियुगमें आपका यह कैसा भक्त है।'

'तनिक सम्हलकर समीप जाना।' भगतजी खेत जोत रहे थे। दूरसे उन्हें दिखलाकर भगवान विष्णुने सिन्धुसुताको सावधान किया— 'बहुत विकट व्यक्ति है। कहीं तुम्हें बैल हाँकने वाला डंडा ही न धर दे। तब तक मैं यहीं गड्ढेमें छिपा बैठता हूँ।'

'इन्द्र-वरुण आदि लोकपाल मेरी कृपादृष्टि चाहते हैं।' लक्ष्मीजीको बड़ा गर्व—'मुझे डंडा मार दे, ऐसा कौन उत्पन्न हो गया ?'

अपने वास्तविक रूपमें ही वे कमला किसानके समीप पहुँचीं; किन्तु उसने उन ज्योतिर्मयीकी ओर दृष्टि ही नहीं डाली। वह तो हल चला रहा था और 'घमोचन घमोचन' गानेमें मस्त था।

'तुम जानते हो मैं कौन हूँ ?' लक्ष्मीजीने पास जाकर पूछा।

'मैं लक्ष्मी जैसी चुड़ैलको भी जानना नहीं चाहता।' किसानने कसकर डाँट दिया—'भाग जा यहाँसे।'

डरके मारे लक्ष्मीजी कई पद पीछे हट गयीं। लेकिन उन्होंने पूछ ही लिया—'तुम यह किसका नाम ले रहे हो।'

'नाम ले रहा हूँ तेरे खसमका।' किसान बिगड़ा—'जाती है या पूजा ही लेगी ?'

सचमुच अपना छोटा पैना (बैल हाँकनेका डण्डा) उठाया उसने। लक्ष्मीजीने और पीछे हटकर डरते-डरते पूछा—'यही बता दो कि मेरे स्वामी कहाँ हैं ?'

'वह गया गड्ढेमें !' किसानने क्रोधसे कहा और झपटनेका ढंग बनाया। बेचारी लक्ष्मी भाग खड़ी हुईं।

आप कह सकते हैं कि यह कथा-वाचकों द्वारा गढ़ी गप्प है; किन्तु आपने कभी 'मानस पीयूष' देखा है ? उसमें आपको कोदईरामजीकी मानस-टीकाका भी उल्लेख मिल जायगा। ये कोदईरामजी वाराणसीके प्रसिद्ध पहलवान थे और अत्यन्त अल्प पठित थे। इनको श्रीरामचरित-मानसका यह ज्ञान हनुमानजीने दिया था। हनुमानजी इनकी किस उपासनासे प्रसन्न हुए, सुनेंगे ?

कोदईराम रहते थे नगरमें और इनका अखाड़ा था वरुणापर, जहाँ आज अदालतें हैं। प्रतिदिन सबेरे अखाड़े जाते, कसरत करते और शिष्योंको कुश्ती लड़ाते। अखाड़ेके पास हनुमानजीकी मूर्ति थी। पहुँचते ही हनुमान-जीको दो डण्डे धमक देते और कहते—'पहलवान ! उठ, जा सरकारकी सेवा कर। पड़ा-पड़ा सो मत।'

अखाड़े प्रतिदिन जाना ही था, अतः हनुमानजीको भी प्रतिदिन डण्डे लगने थे। एक दिन रातसे ही वर्षा होने लगी। सबेरे भी वर्षा रुकी नहीं। अखाड़े जाना नहीं हुआ। दोपहरमें जब भोजन करने बैठे तब स्मरण हुआ—'आज पहलवानको तो जगाया नहीं। वह सो रहा होगा। सरकार उसकी प्रतीक्षामें होंगे।'

भोजनकी थाली धरी रही और कोदईराम अपना सोटा लिये दौड़ पड़े। वरुणा तक तो चले गये; किन्तु वरुणा बाढ़से उफन रही थीं। कोदईरामको तैरना आता नहीं था। तब वरुणापर पुल था नहीं। इधर-उधर देखा, पर आँधी-वर्षामें नौका कहाँ। दूसरा उपाय न देखकर कूदने चले नदीमें तो पीछेसे किसीने दोनों भुजाएँ कसकर पकड़ लीं।

'कौन है रे !' कोदईरामने क्रोधमें झटका दिया। उनकी भुजाएँ पकड़नेका कोई साहस करता है ? लेकिन पकड़ने वाला दुर्बल नहीं था। भुजाएँ छूटीं नहीं। कोदईरामने मुख घुमाकर देखा और हँस पड़े—,पहलवान तू है ? तू जाग गया ? जा सरकारकी सेवा कर। आज डण्डा खानेसे बच गया।'

हस्तमुक्षिप्य जातोऽसि बलात् कृष्ण किमद्भुतम् ।
हृदयाद्यदि निर्याहि पौरुषं गणयामि ते ।।
हाथ छुड़ाये जाता हौ, निबल जानिकै मोहि ।
हिरदय ते जब जाहुगे, मरद बदौंगो तोहि ।।

लेकिन कन्हाई संकोची बहुत है और श्रीरामका तो नाम ही संकोची-नाथ है। हृदयमें कोई और रहे तो आवेगा ही नहीं। यह हृदयमें हो और कोई दूसरा आने लगे तो यह कब धीरेसे खिसक गया, इसका पता भी आपको नहीं लगेगा।

श्रीकृष्णने कहा—'मैं जिसपर अनुग्रह करता हूँ, उसका धन धीरेसे छीन लेता हूँ और जब वह उपार्जनका प्रयत्न करता है तो उसे सफल नहीं होने देता। सर्वस्वसे निराश हो जाता है वह; क्योंकि उसके स्वजन, मित्र उसको त्याग देते हैं। तब वह सत्सङ्गमें प्रवृत्त होता है। फिर तो मैं उसे अपना ही बना लेता हूँ।'

यह क्रम क्यों आवश्यक हुआ ? इसलिए कि सम्पत्तिमें आसक्ति थी। जहाँ यह आसक्ति नहीं, वहाँ उसे हटानेकी आवश्यकता भी कहाँ रही।

एक बात पक्की समझ लें कि संसारमें रस-रुचि रहेगी तो कन्हाई समीप नहीं आवेगा। कृष्णका प्रेम मिलेगा तो संसार और संसारका वैभव रसहीन हो जायगा। भले वह वैभव आपके आसपास बना रहे।

कन्हाईके लिए त्याग आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। अब यह आपकी क्षमता एवं परिस्थितिपर निर्भर है कि आप आसक्तिका त्याग जहाँ हैं वहाँ रहते हुए ही करेंगे अथवा गृहत्याग ही आवश्यक होगा।

जहाँ तक गृहत्यागकी बात है, एक-दो बातें जान लेना अच्छा होगा आपके लिए। पहली बात यह है कि अब सतयुग-त्रेताके समान वन नहीं हैं। अत: यदि आप पत्ते, बेलके कच्चे-पके फल से ही जीवन चलानेको प्रस्तुत नहीं तो वनमें आपका निर्वाह नहीं होगा।

मनुष्य जलके बिना नहीं रह सकता। वनमें जहाँ जलकी ऐसी सुविधा है कि वहाँ रहा भी जा सके अर्थात् जलके समीप समतल स्थान हो, वहाँ प्राय: वनवासी लोग बस गये हैं। सम्भव है, ढूँढ़नेपर कहीं आपको एकान्तमें जल और गुफा या कुटिया बनानेको स्थान मिल जाय तो भी दो बाधाएँ अवश्य आवेंगी। १. समस्त वन वन-विभागके हैं। वहाँ बसनेके लिए प्रान्तीय वन-विभागकी अनुमति आवश्यक है। इसके बिना वनके

कर्मचारी कभी भी आपकी कुटिया उजाड़ दे सकते हैं। बिना अनुमतिके आप वनसे लकड़ी, फल कुछ भी लें तो वह नैतिक दृष्टिसे चोरी है। २. वर्षामें या किसी भी समय आपकी गुफा या कुटियामें रीछ, शेर, सर्प, बिच्छू आदि आ सकते हैं। आप देखें कि आप इसके लिए तैयार हैं या नहीं।

तीर्थोंमें या अन्यत्र आप स्वतन्त्र, स्वावलम्बी बनकर रहें तब तो कोई प्रश्न नहीं; किन्तु किसी आश्रममें रहना चाहें तो ऐसा आश्रम मिलना कठिन ही है जो आपकी रुचि और सुविधाका ध्यान रखेगा। आश्रमके नियमोंका पालन ही आवश्यक नहीं होता, आश्रमकी सेवा भी आवश्यक होती है और वह सेवा आपके नहीं, आश्रम-संचालकके अनुसार होगी। आश्रमोंमें विक्षेपके अवसर, राग-द्वेषका वातावरण घरोंसे कम होगा, यह एक भ्रम ही है। यह अवश्य है कि आश्रम-सञ्चालकोंको अवैतनिक योग्य सेवक सदा अपेक्षित रहते हैं। अतः आर्थिक दृष्टिसे विपिन्न और कर्मके क्षेत्रमें अयोग्य व्यक्तियोंको आश्रमोंमें आश्रय प्रायः मिल जाता है; किन्तु ऐसे आश्रयको त्याग कहा जा सकेगा ?

आश्रमोंमें सब अयोग्य या दरिद्र ही आश्रय पाये हों, ऐसा नहीं है। अच्छे साधक भी पर्याप्त मिलते हैं। योग्य एवं सम्पन्न लोग भी आश्रमोंमें आते हैं; किन्तु ऐसे लोगोंको भी विक्षेपरहित साधनानुकूल स्थिति मिल ही जायगी, यह सुनिश्चित नहीं रहता। उन्हें भी वहाँ कार्यव्यस्त जीवन ही अपनाना पड़ता है। अतः आसक्ति त्यागके लिए आश्रम-जीवन व्यतीत करना हो तभी वह आपको अनुकूल पड़ेगा।



अर्पण ?—

'आप मुझे श्रीकृष्ण-चरणोंमें अर्पित करा दीजिये !' एक महात्मासे मेरे एक मित्रने कहा।

महात्माने उत्तर दिया—'तुम बुद्धिमान हो, विद्वान हो, विवेकी हो। कल सोचकर आना कि तुममें कौन-सी वस्तु है जो श्रीकृष्णार्पण नहीं है। मैं उसे अर्पित करा दूँगा।'

सोचकर क्या मिलना था। मिट्टी, पानी, उष्णता, वायु और आकाश—इन पञ्च तत्वोंके अतिरिक्त तो शरीरमें कुछ है नहीं। ये तत्त्व तो हमारे-आपके नहीं हैं।

स्थूल शरीरको छोड़ दें तो सूक्ष्म शरीरमें ही अपना क्या है? इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार हमने बनाये हैं? भली प्रकार चाहनेपर भी जो मन मेरी बात नहीं मानता, वह मेरा है? उसपर मेरा क्या अधिकार है? मुझे तो यह पता नहीं कि अगले क्षण मनमें क्या आवेगा।

अहंता अपनी है? प्रकृतिमें जो महत्तत्व है, उसका विकार है अहंकार। उस समष्टि अहंकारसे हमारा अहंकार पृथक है? इस प्रकार ढूँढ़नेपर तो ऐसा कुछ मिलता नहीं जो अपना हो और जिसे अर्पित करना हो।

तब ?

वस्तुतः जैसे अज्ञानके कारण शरीर अपना प्रतीत होता है, जैसे अविवेकके कारण सम्पत्ति, स्वजन अपने लगते हैं, जैसे भ्रमवश नाममें आसक्ति होनेसे मान-अपमान लगता है, वैसे ही अज्ञानके कारण—अविद्यासे ही मन, इन्द्रियाँ, बुद्धि आदि भी अपनी प्रतीत हो रही हैं।

नोट हों या भवन हो अथवा सम्पत्तिका और कोई रूप हो, उसमें अपनापन केवल जोड़ा हुआ है। नोट दूसरेके हाथमें पहुँच गया—भले उसने चुरा लिया हो, तो उसका। मकान बिक गया तो दूसरेका। जिन परिवारके लोगोंको आप अपना कहते हैं, उनका शरीर आपका बनाया है? उनके सूक्ष्म शरीरके विषयमें तो यह भी पता नहीं कि वे इससे पूर्व जन्ममें शत्रु थे या मित्र।

इसलिए हम आप सब कहते हैं—

'त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।'

वस्तु ही नहीं, देह, मन, प्राण सब उसीका है। अपना इसमें कुछ नहीं है। उसकी ही वस्तु उसको देनी है। जैसे गङ्गाजीमें खड़े होकर गङ्गाजल अञ्जलिमें लेकर गङ्गाजीको ही अर्घ्य देते हैं।

कठिनाई यही है कि 'त्वदीयं वस्तु' केवल मुखसे कहा जाता है। इसका अर्थ गलेसे नीचे नहीं उतरता। यह अर्थ गलेसे नीचे उतरे तो समर्पण हो गया। समर्पणका अर्थ कुछ देना नहीं है। समर्पणका अर्थ केवल अज्ञानका दूर होना है।

कर्मार्पणकी भी एक पद्धति है। कर्तृत्वका अर्पण इतना सरल नहीं है, जितना सुननेमें लगता है; क्योंकि जन्म-जन्मके अभ्याससे कर्तापनका अहङ्कार बद्धमूल हो गया है। इसीलिए आरम्भ किया जाता है कर्म-फलार्पणसे। विद्वान ब्राह्मण जब यज्ञ, पूजनादि करते हैं, तब पूर्णाहुतिके पश्चात् यजमानके हाथमें जल देकर बोलते हैं—'एतत् सर्वं श्रीकृष्णार्पण-मस्तु।'

यह ब्राह्मणके बोलनेकी बात ही रह गयी तो कुछ नहीं बना। इसे हृदयमें आना चाहिये। कोई कर्म पूरा हो गया तो उसका फल अपने पास मत रखिये। फलको कृष्णार्पण कर दीजिये। यह फलार्पण भी सच्चा तब है जब आपके मनमें कभी न उठे कि—'मैंने अमुक पुण्यकर्म किया था। उसका अमुक फल होगा।'

वैष्णव भक्तोंने एक प्रश्न उठाया—'पुण्य कर्मका फल तो भगवानको अर्पित करना ठीक है; किन्तु पाप कर्मका फल अर्पित करना कैसे ठीक होगा?

इसका समाधान वैष्णव ग्रन्थोंमें ही है कि पाप कर्म निवेदित कर देना चाहिये कि 'प्रभु ! मुझसे यह अपराध बन गया।'

कर्मशास्त्रका एक स्पष्ट सीधा नियम है कि आप अपना उपार्जित धन किसीको भी दे सकते हैं। पुण्य भी उपार्जन है, अतः उसे दिया जा सकता है। सङ्कल्पपूर्वक व्यक्तिको भी दिया जा सकता है। अतः भगवानको भी दिया जा सकता है। लेकिन आप अपना ऋण, अपने किये अपराधका दण्ड दूसरेको नहीं दिला सकते। लेकिन किसी उदार सत्पुरुषसे, स्वामीसे उसको निवेदित करके क्षमा पानेकी आशा कर सकते हैं।

हनुमानजी प्रसन्न हो गये थे प्रतिदिन डंडा खाते-खाते । कोदईरामको उस दिन वरदान दे गये । अब जहाँ ऐसे पुजारी और ऐसे देवता हों ... ।

कण्णप्प भीलकी कथा न पढ़ी हो तो 'कल्याण' का शिवाङ्क तो दुर्लभ हो गया है ; किन्तु श्रीकृष्णजन्मस्थानसे प्रकाशित ' शिव-चरित ' सुलभ है , उसमें पढ़ लें ।

कन्हाईकी बात आप जानते होंगे । व्रजके गोपबालक इसकी पीठपर चड्ढी कसते थे । अतः इन ब्रजचन्द्र , ब्रज-नवयुवराजके लिए जप-तप , पूजा-पाठ , ज्ञान-ध्यान आवश्यक है , यह कैसे कहा जा सकता है । वैसे मैया यशोदा , नन्दबाबा बड़ी निष्ठासे भगवान नारायणकी अर्चा करते थे । उनकी अर्चाका एकमात्र लक्ष्य था--' उनका लाल सकुशल , सानन्द रहे ।'

अयोध्यामें पंडित उमापति त्रिपाठीको हुए बहुत दिन नहीं हुए । अभी तो उनके पौत्र जीवित हैं । पण्डित उमापतिजीकी निष्ठा थी कि श्रीराम उनके शिष्य हैं । वे अपनी पहिनी माला श्रीकनक भवन बिहारीजीको प्रसाद रूपमें पहिनाया करते थे । साधुओंने इसपर आपत्ति की तो पण्डितजी मन्दिरमें गये ; किन्तु कण्ठसे माला नहीं उतारी । सबके सामने ही श्रीमूर्तिने मस्तक झुकाया । पण्डितजीको प्रेम-विह्वल होकर कण्ठसे उतारकर माला अर्पण करनी पड़ी ।

' अ से अनार , आमका आ पढ़ो लालजी ।' सामने वर्णमालाकी पुस्तक , लकड़ीकी काली चमकती पट्टी और मिट्टीकी नन्हीं बोरिका (घरिया) में घुली खड़िया मिट्टी धरी थी । वे समीपके गाँवके गृहस्थ थे । लम्बे , गोरे , दुबले-पतले । बालकोंको पढ़ाया करते थे । गाँवसे लगभग डेढ़ मील दूर यहाँ पश्चिम वाहिनी गंगाके किनारे वामनजीकी कुटीके पीछेकी ओर एकान्तमें उन्होंने एक फूसकी झोंपड़ी बना ली थी ।

पहिले तो वे प्रातः सूर्य निकलते ही आ जाते थे और गंगा-स्नान करके झोंपड़ीमें जाकर उच्च स्वरसे राम-राम बोलते रहते थे । लगभग दो घण्टे उनका यह क्रम चलता था । फिर निकलते , घर जाते और भोजन करके पाठशाला चले जाते । कई महीनों उनका यह क्रम चला । इधर कुछ दिनोंसे उनका उच्च स्वरसे रामनाम बोलना बन्द हो गया था । मैं उन दिनों वामनजीकी कुटीपर ही रहता था । एक दिन कुतूहलवश झोंपड़ीमें झाँकने चला गया कि वे अब क्या करते हैं ।

उन्हें कुछ पता नहीं लगा कि कोई उन्हें देख रहा है । जब वे बाहर निकले , तब मैंने उनसे पूछा--' आप किसको पढ़ा रहे थे ?'

उनकी झोंपड़ीमें मैंने तो उनके अतिरिक्त किसीको देखा नहीं था। कोई चित्र भी उसमें नहीं था। मेरे पूछनेपर वे बोले--'श्रीरामलाल अभी बालक हैं, कुछ चपल हैं। श्रीचक्रवर्ती महाराज इन्हें पढ़ने गुरुगृह तो भेजेंगे ही; किन्तु उससे पहिले इनको अक्षरज्ञान करा देनेकी सेवा मैं कर दूँ तो कोई अनुचित बात तो नहीं है ?'

मैं उन मास्टरजीका स्वभाव जानता था। वे कोई प्रश्न उठनेपर देरतक उचित-अनुचितके तर्क-वितर्कमें उलझे रहते थे और कदाचित् ही कोई निर्णय कर पाते थे। प्रायः मुझसे ही पूछते थे। अतः मैंने हँसकर कह दिया —'आप बहुत अच्छा कर रहे हैं।'

कन्हाईको बाबाने तो पढ़ाया नहीं, अतः मैं इसे प्रतिदिन एक अध्याय भागवत सुनाता हूँ। सुना है कि बुधवारको उत्पन्न बालक या तो बुद्धिमान होते हैं या बुद्धू। कन्हाईको बुद्धू नहीं रहना चाहिये। इसे बुद्धिमान होना चाहिये।

इस श्यामसुन्दरके लिए आप जप-तप, पूजा-पाठ करना चाहते हैं, यह तो बहुत उत्तम बात है। मैया भी इसके लिए व्रत-उपवास करते-करते दुबली होगयी। इसमें यह पूछनेकी आवश्यकता कहाँ है कि आप क्या जप अथवा पूजा करेंगे। किस प्रकारकी तपस्या करेंगे या किस ग्रन्थका पाठ करेंगे।

कन्हाई गोपकुमार है। आपके ओष्ठ हिलते देखेगा तो कहेगा--'तुम जप कर रहे हो ?' किसी भी मन्त्रका जप करो या गाली ही दो —आप चौंकते क्यों हैं ? शिशुपाल नियमसे प्रतिदिन गाली ही देता था या और कुछ करता था ? गाली भी मुँहमें धीरेसे नहीं देता था, न एकान्तमें। उच्च स्वरसे गाली देता था। भरी सभामें भी गाली देता था।

आप कोई ग्रन्थ पाठके लिए चुन लो, क्या अन्तर पड़ता है। गोपालको ग्रन्थसे क्या लेना है। आप पाठ करते हो, इतना पर्याप्त है। अवश्य ही इस सुकुमारको किसीका भी बहुत कष्ट उठाना पीड़ा देता है। इसीलिए इसने गीतामें तपस्याके उग्र रूपको तामस तप कह दिया। तपस्या ही करनी है तो एकादशी, प्रदोष, शिवरात्रि जैसे व्रत बहुत पर्याप्त हैं।

'यद्यद् कर्म करोमि तत्तदखिलं शम्भोस्तवाराधनम्।'

आप ऐसा नहीं मान सकते तो जैसे आपको पूजा करना आता हो, वैसे पूजा कीजिये। कन्हाईको न क्रिया देखनी और न शब्द। इसे तो इतना ही देखना है कि आप इसके लिए कुछ कर रहे हैं। कितने प्रेमसे, कितनी निष्ठासे कर रहे हैं, इसीमें उसकी महत्ता है।

●

त्याग ?—

आप जब पूछते हैं कि 'क्या बिना त्यागके श्रीकृष्ण मिल सकते हैं ?' तब इसका अर्थ होता है कि आपकी मुख्य आसक्ति शरीरमें, परिवारमें, सुखमें, सम्मानमें है। श्रीकृष्ण-प्राप्ति आप आवश्यक मानते भी हैं तो इन सबको रखते हुए। अतः आपके लिए तो उत्तर यही है कि बिना सर्वस्व-त्यागके श्रीकृष्ण मिला नहीं करते।

जरउ सो सम्पति सदन सुख सुहृद मातु-पितु भाइ।
सनमुख होत जो रामपद करइ न सहस सहाइ।।

ऐसा नहीं है कि कन्हाईके लिए सभीने त्याग ही किया हो। सब शुकदेव-वामदेव न हुए, न हो सकते। व्रजवासियोंमें तो कोई विरक्त बाबाजी नहीं था।

सुदामा तब तक निर्धन, भिक्षुक, त्यागी रहे, जब तक वे अपने द्वारिकाधीश सखासे मिले नहीं थे। द्वारिकासे लौटनेपर तो उन्होंने देखा कि उनकी झोपड़ीके स्थानपर दूसरी द्वारिका उनके लिए उनके मित्रने बसा दी है।

अनेक नरेश अत्यन्त भगवद्भक्त हुए हैं और उनमें-से बहुतोंका भगवानसे व्यक्तिगत सम्पर्क रहा है। ध्रुव चक्रवर्ती सम्राट् बने। प्रह्लाद दैत्येश्वर पदपर अभिषिक्त हुए और कहीं भी तो यह उल्लेख नहीं है कि महाराज जनक चार दिनके लिए भी वनमें तप करने गये हों।

पाण्डव वनवासी हुए; किन्तु क्या विरक्त होकर उन्होंने घर छोड़ा था ? श्रीकृष्णने तो युधिष्ठिरसे राजसूय यज्ञ कराके उन्हें चक्रवर्ती सम्राट् बनाया था। जुआ खेलकर सर्वस्व हार जानेको आप त्याग मानने लगोगे तो बहुत अनर्थ होगा। पार्थ-सारथिने फिर भी पाण्डवोंको विजयी बनाया।

यह सब है; किन्तु इनमें-से आपको कौन संसारासक्त लगता है ? संसारकी आसक्ति और श्रीकृष्णकी प्रीति साथ रह सकती है ?

त्यागका अर्थ क्या ? आपके आसपास जो कुछ है, सबका आप त्याग करना चाहेंगे तो होगा ? वन या पर्वतमें ही चले जायँ तो वहाँ आस-पास वृक्ष, तृण, शिलाएँ नहीं रहेंगी या पशु-पक्षी नहीं रहेंगे ? आप किसीके अतिथि होते हैं तो उसका भवन या जो सामग्री वह आपकी सेवामें अर्पित

करता है, वह आपकी हो जाती है ? शुकदेवजी राजा जनकके अतिथि हुए तो वे उन दिनों विरक्त नहीं रह गये ?

वस्तु या व्यक्तिमें ममत्व ही उस वस्तु या व्यक्तिका ग्रहण है। बड़े नगरोंमें सहस्रों व्यक्ति किरायेके भवनोंमें रहते हैं। मकानकी आसक्ति छोड़नेके लिए उन्हें वनमें जानेकी आवश्यकता है ? वनमें ही जाना हो तो उन्हें परिवारकी आसक्ति छोड़नेको जाना पड़ेगा या मकानकी आसक्ति छोड़नेको ?

देश तथा समाजका दुर्भाग्य कि सहस्रों व्यक्ति अत्यन्त निर्धन हैं। उनमें बहुत एकाकी हैं, गृहहीन हैं, भिक्षाजीवी हैं। उनके पास फूटे आलमोनियमके कटोरे और चिथड़ेके अतिरिक्त कुछ नहीं है। ये सब त्यागी हैं ?

त्याग आन्तरिक वृत्ति है। वस्तु और व्यक्तियोंसे इसका सम्बन्ध हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। वस्तु और व्यक्तिमें आसक्ति हो, तब उस आसक्तिको दूर करनेके लिए उनसे दूर होना पड़ता है। अन्यथा जो बहुत ऊँचे भवनके सामने फुटपाथपर सो रहा है या जो वर्षामें भीगनेसे बचनेके लिए किसी कोठीके बरामदेमें आ खड़ा हुआ है, उसे उस समय भी उस कोठीके त्यागके लिए कुछ करना नहीं है।

कन्हाईको अपना बनाना है तो उसके लिए त्याग तो करना ही पड़ेगा; क्योंकि संसारकी आसक्तिके साथ श्रीकृष्ण-प्रेम रहा नहीं करता। लेकिन इसमें नगर-ग्राम या घर छोड़कर बाबाजी बन जानेकी बात कहीं आती नहीं है।

आपने बहुत अधिक साधु देखे हैं। उनमें-से कितने आपको अनासक्त मिले ? त्यागीजी कहलाने वाले तो बहुत हैं। यह तो साधुओंमें एक शिष्टाचारका सम्बोधन है। लेकिन त्यागका अर्थ है अनासक्ति, अन्यथा केवल कौपीन लगानेवाला ही नहीं, दिगम्बर रहनेवाला भी त्यागी न हो, यह सर्वथा सम्भव है। शरीरमें भी आसक्ति हो तो त्याग सम्पन्न हुआ ?

संसारकी सम्पत्ति रहे या चली जाय, स्वजन-सम्बन्धी सकुशल रहें या निःशेष होजायँ, समाज और संसार प्रशंसा करे या सब थू-थू करें, शरीर स्वस्थ रहे या गलितकुष्ठसे सड़ता नालीमें पड़ा रहे, इतनी जिसके मनकी प्रस्तुति है, वह त्यागी और तब उसके मनमें भगवत्प्रेम न रहे, सम्भव नहीं। ऐसा ही व्यक्ति चुनौती दे सकता है—

मनुष्य ही कर्मयोनिका प्राणी है। मनुष्य-योनिसे ही जन्म-मरणसे छुटकारा पाया जा सकता है। मनुष्य जीवनका उद्देश्य ही भगवत्प्राप्ति है। जहाँ यह बात सत्य है, वहीं यह बात भी तो सत्य है कि मनुष्यको मनुष्य-योनि सृष्टि संचालकने दी है। क्या वह सञ्चालक मनुष्य-योनि ऐसे जीवको देता है जो मनुष्य जीवनका लक्ष्य प्राप्त करनेमें ही असमर्थ हो? तब तो उसका मनुष्य जन्म देना ही व्यर्थ हो गया। ऐसा नहीं हो सकता। इसका अर्थ है कि मनुष्य चाहे जहाँ, जिस परिस्थितिमें उत्पन्न हुआ, उसमें अपने लक्ष्यको पानेकी योग्यता है।

मनुष्य मरणासन्न है, रोग-जर्जर है; किन्तु अभी मूर्छित नहीं है, तब तक मनुष्य है या नहीं? मूर्छितको शरीर-भान नहीं रहता। अतः मूर्छित जीव केवल जीव होता है। उस समय उस जीवको अमुक वर्गमें सम्बोधित करते नहीं बनता। मनुष्य जब तक मनुष्य है, उसमें मनुष्यके लक्ष्यकी प्राप्तिकी योग्यता है। अतः उसका शरीर कितना असमर्थ है, उसका मन कितना क्षुब्ध हो रहा है, यह प्रश्न नहीं उठता। उस अवस्थामें भी उसमें भगवन्नाम लेने अथवा भगवानको स्मरण करनेकी शक्ति तो है ही। यह भिन्न बात है कि यदि उसके जीवनमें नामोच्चारण या भगवत्स्मरणका अभ्यास नहीं है तो उस समय यह नहीं होगा। लेकिन अपने अभ्यास-अनभ्यासका उत्तरदायी तो मनुष्य स्वयं ही है।

इसका अर्थ हुआ कि 'कितने वर्ष?' यह प्रश्न व्यर्थ है। एक क्षण भी पर्याप्त है; किन्तु वह अन्तिम क्षण हो और उसका उपयोग केवल कन्हाईके लिए हो। श्रीरामकृष्ण परमहंसका कहना है—

आमि दुर्गा दुर्गा बोले माँ यदि मरि।
सेखानि तुमि ना आसिबे देखा जायगो शंकरि॥

माँ! यदि मैं दुर्गा! दुर्गा! बोलते हुए देह-त्याग कर रहा होऊँ तो हे कल्याणमयी! उस समय तुम नहीं आओगी, यह देखा जायगा। अर्थात् उस समय तुम न आओ, यह तुम्हारे भी वशमें नहीं है। तब तो तुम्हें आना ही पड़ेगा।

एक महापुरुषने कहा—'जम्हाई लेते समय, स्वप्नमें भय लगनेपर, चलते-फिरते कहीं फिसलनेपर या चौंकनेपर तुम्हारे मुखसे भगवन्नाम नहीं निकलता तो तुम दुःखी क्यों नहीं होते कि हाय! हाय! मरते समय भी मेरे मुखसे भगवन्नाम नहीं निकलेगा। मेरा जीवन व्यर्थ चला जायगा!'

बार-बार यदि आप दुःखित होते हैं तो आपके जीवनसे यह त्रुटि चली जायगी। क्योंकि कोई काम बार-बार करनेसे ही उसका अभ्यास नहीं पड़ता। जो भी काम अनिच्छापूर्वक या विवशतावश किया जाता है, वह चाहे जितने दीर्घकाल तक किया जाय, वह अभ्यास नहीं डालेगा। विद्यालयमें छात्र वर्षों तक जाते हैं; किन्तु अध्ययन समाप्त होनेपर विद्यालय जानेको उनके पैर फिर नहीं उठते। अभ्यास पड़ता है इच्छापूर्वक, उत्सुकतापूर्वक किये कामका और जिसके न होनेसे हम बार-बार दुःखी होते हैं, उसका अभ्यास स्वतः हो जाता है।

इस अभ्यासके स्वभावको देखते हुए दैनिक जीवनमें नियमित समय कन्हाईके लिए निकालना आवश्यक है। जहाँ तक सम्भव हो ठीक, निश्चित समय और सम्भव हो तो ठीक निश्चित स्थान। जब भी सम्भव हो वह समय और स्थान पकड़े रहा जाय।

मन तो लगता नहीं ? यह बात व्यर्थ है। आपका अधिकांश जीवन बिना मन लगे कामोंसे चल रहा है। छात्रोंका मन लगा करता है विद्यालय-में ? मन लगता होता तो छुट्टियोंमें वे प्रसन्न होते ? आपका मन लगता है कार्यालयमें ? सच बात तो यह है कि भोजन करनेमें भी प्रतिदिन मन नहीं लगा करता; किन्तु रिक्त मन लगे भोजनसे शरीरको पोषण मिलता है या नहीं ?

कन्हाईके लिए समय देना है, क्या करना है उसमें ? आप उसमें न व्यायाम करेंगे, न गाली बकेंगे। अतः पूछनेकी बात क्या है ? जप, पाठ और पूजा तथा ध्यानका प्रयत्न। इन्हींमें-से कुछ कर सकते हैं या और कुछ ? आपसे जो हो सकता है, जो आपको आता है, वह कीजिये। यह आप आवश्यक मानकर कर रहे हैं, अतः यह अभ्यास बनेगा।

कन्हाईके लिए जीवनमें कोई अभ्यास बना लेना है। मन लगे या न लगे, केवल अभ्यास भी बन जाय तो वह अभ्यास ही मनुष्यको श्यामके सान्निध्यमें पहुँचानेमें समर्थ है।



कितना हृदय--बुद्धि ?--

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्यवे अत ऊर्ध्वं न संशयः ।। -गीता १२.८

मुझमें ही मनको भली प्रकार रख दो। बुद्धिको मुझमें प्रविष्ट कर दो। इसके पश्चात् मुझमें ही निवास करोगे, इसमें सन्देह नहीं।

कृष्णके यह कह देनेके पश्चात् 'कितना' का प्रश्न रह जाता है क्या ? 'आधत्स्व' का अर्थ ही है पूरी तरह रख देना—चारों ओरसे समेटकर रख देना और निवेशयका अर्थ होता है भली प्रकार प्रविष्ट करा देना।

मन रख दिया जाता है। हृदय ही तो दिया जा सकता है। बुद्धिको दिया नहीं जाता। बुद्धिको प्रविष्ट कराया जाता है।

पहिली कठिनाई तो यह है कि एक पूरा समुदाय भक्तोंका है जो भगवान्के सम्बन्धमें भावना ही भावना करता है। बुद्धि लगानेकी बातसे ही चौंकता है। बुद्धिसे सोचनेको ही कुफ्र मानता है। दूसरा समुदाय ज्ञान-मार्गियोंका है। यह भावनाका उपहास करता है। भावनाको कल्पना--बहुत छोटे स्तरकी वस्तु मानता है।

जीवनकी यथार्थताकी ओरसे दोनों नेत्र बन्द किये हैं और भगवान् तो जीवनका जीवन है। वह जीवनके वास्तविक धरातलको छोड़ देनेपर कैसे मिलेगा ?

जीवनमें जितना सुख-दुःख है, सब ज्ञानात्मक है। इन्द्रियोंके सब भोग ज्ञानात्मक हैं। हमारी नासिका निष्क्रिय हो तो सुगन्धि पास रहे या दुर्गन्धि। हम मूर्च्छित हों तो शरीरका आपरेशन हो या मुखमें शहद डाला जाय। ज्ञानके बिना न सुख है, न दुःख। सब भोग ज्ञानात्मक हैं। अतः भगवान्का भी दर्शन होगा, उनके प्रति प्रीति होगी तो उसका पता लगेगा या नहीं ? ज्ञान ही न हो तो मनुष्य और पत्थरमें अन्तर ? ज्ञान बुद्धि वृत्ति है। जिस बुद्धिपर हमारे सब भोग–सारा जीवन अवलम्वित है, उसीको कन्हाईसे दूर रखकर हम अपनेको दूर करेंगे या समीप।

लेकिन बुद्धिके निर्णयसे ही व्यवहार नहीं चलता। सबका सब व्यवहार भावनात्मक है। विचार करनेपर तो अन्न भी मिट्टी है; किन्तु

क्या आपका काम मिट्टी खाकर चलेगा ? बहिन और पत्नी दोनों स्त्री हैं ; किन्तु दोनोंसे समान व्यवहार किया जायगा ? व्यवहारका आधार ही भावना है और भावना हृदयका धर्म है। भावनाका तिरस्कार करके तो आप भावमय हृषीकेशका ही तिरस्कार करते हैं।

' न तत्र वाग्गच्छति न मनोगच्छति न बुद्धिः।'

उस परमात्मा तक न वाणी जाती , न मन जाता , न बुद्धि जाती। श्रुतिकी यह बात ठीक है ; किन्तु तब आप हाथपर हाथ धरे बैठे रहेंगे।

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी ।

लेकिन इसी कारण तो निष्क्रिय-निराश नहीं हुआ जा सकता। किसीके पास इतना बड़ा पात्र है कि उसमें गङ्गाजी आजायँ ? लेकिन इससे तो हमारा काम अटकता नहीं। हमारे पास छोटी लुटिया हो तो उसमें हम गङ्गाजल ले आते हैं। हमें पवित्र करनेके लिए वही पर्याप्त है।

कन्हाईमें मनको धर देना है। जैसे गङ्गामें डुबकी लगा लेना है। गङ्गाजी कितनी गहरी , यह न देखा जा सके तो हानि ? मनमें कन्हाई पूर्णतः नहीं आ पाता तो न आवे , मन तो उसमें डूब जाय।

बुद्धिमें भगवान्‌का ऐश्वर्य आ नहीं सकता ; किन्तु बुद्धि उसीको सोचनेमें लगी रहे तो संसारका सोचना छूट जायगा या नहीं। संसारका संसरण— जन्म मृत्युका बन्धन ही तब तक है जब तक मन और बुद्धि संसारमें लगे हैं। कोई नहीं सोचता कि पूरा संसार मनमें कभी आता है ? पूरा संसार आ जाय तो विराट्पुरुष-परमात्मा ही आ जाय। ऐसे ही किसी बड़े-से-बड़े वैज्ञानिकने दावा किया कि प्रकृतिके सब रहस्य वह समझ गया ? प्रकृतिके सब रहस्य समझनेवाला परमात्मासे दूर रहेगा ?

आप जैसे संसारके अत्यन्त क्षुद्र भागमें मन लगाये रहते हैं , जैसे संसारकी छोटी-मोटी बातोंको ही सोचते रहते हैं और इससे आपका संसारिक जीवन चल रहा है , ऐसे ही कन्हाई जितना मनमें आवे , उतनेमें ही मन लगाये रहें , बुद्धिसे जितना समझा जासके , उतना ही बुद्धि समझनेमें लगे तो आपका पारमार्थिक जीवन सप्राण हो जाय।

यहीं कितनाका प्रश्न उठता है ; क्योंकि हमारे मनको संसारमें लगनेका तो अभ्यास है ; किन्तु कन्हाईमें यह लगानेपर भी नहीं लगता। मन अपने हाथमें ही नहीं तो इसे धर कैसे दें ?

आप यदि अपना सब उपार्जन किसी एकको ही दे देते हैं तो यह स्वत: उसका दायित्व हो जाता है कि आपके ऋण भी वह चुकावे। आपका सब उपार्जन ले ले और आपके ऋणका दायित्व न ले तो वह ईमानदार नहीं कहा जायगा। अत: जब आप अपने सब पुण्यकर्म कृष्णार्पण करते रहते हैं तो पापकर्मोंसे आपको मुक्त करनेका दायित्व स्वयं कन्हाईपर आ जाता है। इसे स्वीकार किया है इसने—

'अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः। —गीता १८.६६

यह बात तो कर्मफलार्पणकी हुई। लेकिन यह अधूरा समर्पण है। इसमें 'मैं कर्मोंका कर्ता' और 'मैं फलार्पण करने वाला'—यह अङ्कार अर्पित नहीं हो पाता। लेकिन यदि आप ईमानदारीसे फलार्पण करते रहेंगे तो शीघ्र हृदय शुद्ध हो जायगा और कर्मार्पण करनेकी योग्यता प्राप्त हो जायगी।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ —गीता ९.२७

यहाँ श्रीकृष्णने फल नहीं माँगा, कर्म ही माँगा है; क्योंकि इसमें 'यदश्नासि' भी पड़ा है। भोजन करने तकका भी कर्म वे चाहते हैं। इसमें कर्म पूरा होनेपर उसका फल नहीं देना है। कर्म प्रारम्भ करते ही कर्म ही दे देना है। जैसे मजदूर, नौकर या मुनीम कर्म अपना नहीं करते, कर्म ही वे अपने स्वामीके लिए करते हैं। कर्मकी लाभ-हानि उनकी नहीं है।

कर्मार्पण भी अन्तिम स्थिति नहीं है; क्योंकि इसमें भी कर्तृत्व शेष रहता है। मजदूर हो, सेवक हो या मुनीम हो, उसमें अपनी क्रियाशीलताका, चतुराईका अहङ्कार तो रहता ही है। वह कर्म अपने स्वामीके लिए करता है; किन्तु 'मैं करता हूँ—मैंने किया' तो उसमें बना ही रहता है। अब यदि कोई ईमानदारीसे अपने सब कर्म अर्पित करता रहता है, अपने लिए नहीं, कन्हाईके लिए करता है तो चित्तकी अत्यन्त शुद्धि होनेपर यह कर्तृत्वका अहङ्कार भी समाप्त हो जाता है। तब कर्तृत्व ही अर्पित हो जाता है।

यत् कृतं यत् करिष्यामि तत् सर्वं न मया कृतम्।
त्वया कृतं त्वं फलभुक् त्वमेव मधुसूदन॥

इसीको कहते हैं भगवानके हाथका यन्त्र हो जाना। तब आप कह सकते हैं—

न मैं बुरा हूँ, न अच्छा हूँ,
तुमने बनाया जो, वही हूँ मैं।
और भी बना दो वह बन जाऊँ,
यन्त्र ही तुम्हारा—बुरा-अच्छा क्या ?

यहाँ आकर प्रश्न ही नहीं उठता कि पुण्य अर्पण करो या पाप। यद्यपि गीतामें श्रीकृष्णने कई बार कहा है कि प्रकृति कर्म कराती है अथवा प्रकृतिके गुण कर्म कराते हैं; किन्तु यह कहीं अस्वीकार नहीं किया कि प्रकृतिके वही सञ्चालक हैं।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥ गीता १८.६१

इसीको श्रीरामचरितमानसने कहा—

नट मरकट इव सबहिं नचावत।
राम खगेस बेद अस गावत॥

कन्हाईका स्वभाव है कि यह अधूरा कुछ लिया नहीं करता। देना है तो पूरा दीजिये और नहीं तो देनेका प्रयत्न मत कीजिये। आपका अधूरा समर्पण तो यह लेनेसे रहा।

गोपियोंका, ब्रजके लोगोंका पूरा ही जीवन श्रीकृष्णके लिए था। उनका भोजन, शृंगारादि सब श्रीकृष्णके लिए*। श्रीकृष्णने स्वयं गोपियोंके लिए कहा—

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहिकाः। श्रीम०भा० १०.४६.४

श्रीकृष्णको अपना बनानेके लिए पहिले अपनेको और अपने सबको इस प्रकारसे उन्हें दे देना पड़ता है। कन्हाईके लिए ऐसा सम्पूर्ण समर्पण आवश्यक है।



* इसे 'ब्रजका एक दिन' में स्पष्ट किया गया है।

कितना जीवन ?—

अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्वको यदि उत्सर्ग कर देना सम्भव न हो तो कितना जीवन कन्हाईके लिए लगा देनेसे उसे पाया जा सकता है अथवा उसकी प्राप्तिका पथ मिल सकता है ?

यह प्रश्न बहुत स्वाभाविक है ; क्योंकि अपने आपको उत्सर्ग कर देना बहुत कठिन है । व्यक्ति अपने पूर्वके संस्कारों तथा वर्तमान जीवनके अभ्यास, परिस्थिति आदिसे विवश है । बहुत-से कार्य उसे अनिच्छापूर्वक करने पड़ते हैं । विवेकके द्वारा कुछ उचित लगे भी तो उसे कर नहीं पाता । कुछ अपनी दुर्बलता, कुछ सामाजिक परिस्थिति । अपना मन ही अपने वशमें नहीं है और जब मन ही उत्सर्ग नहीं हो पाता तो जीवन कैसे उत्सर्ग होगा । इसलिए सहज प्रश्न है कि यदि सम्पूर्ण समर्पण न हो सके तो ?

कितना जीवन ? यह प्रश्न दो रूपोंमें विभक्त है—१. प्रतिदिनके जीवनका कितना भाग ? २. सम्पूर्ण जीवनके कितने वर्ष ?

इन दोनोंमें-से ही किसीका कोई सुनिश्चित उत्तर नहीं है । आप दैनिक जीवनमें आहार-ग्रहणके लिए कितना समय लगाते हैं ? कोई भी रात-दिन खाता ही नहीं रह सकता । भोजनमें समय तो कम ही लगता है ; किन्तु उतने ही समयमें उदरमें पहुँचा आहार शरीरको दैनिक कार्यके लिए सक्षम रखता है । ऐसे ही थोड़े समयकी भी एकाग्र मनसे भगवत्सेवा या भगवच्चिन्तन पूरे दिन-रातका समय भगवन्मय रख सकता है ।

व्यक्ति जब रोगी हो जाता है, उसका आहार पचता नहीं, तब कितना भी और कैसा भी पौष्टिक आहार करे, उसकी दुर्बलता बढ़ती ही जाती है । इसी प्रकार अधिकांश भजनमें लगने वाले भी मानसिक दृष्टिसे रोगी हैं । उनका भजन-पूजन, जप-ध्यानादि कितने भी समयका उनके अन्तःकरणको भगवनोन्मुख नहीं रख पाता है ।

जहाँ तक कन्हाईकी प्राप्तिकी बात है, अपनेको पूरा दिये बिना, सम्पूर्ण और सम्यक् समर्पणके बिना यह गोपकुमार मिला नहीं करता । जहाँ तक इसकी प्राप्तिके पथपर पहुँचनेकी बात है, इसने स्वयं आश्वासन दिया है—

'जिज्ञासुरपि योगस्य शब्द ब्रह्मातिवर्तते ।—गीता. ६.४४

'कन्हाई कैसे मिलेगा' यह भी जिज्ञासाका एक रूप है या नहीं ? यह ठीक बात है कि जैसी जिज्ञासा, वैसी प्राप्ति अर्थात् योगका वैसा रूप। जो निर्विकल्प समाधि पाना चाहता है अथवा जिसे ब्रह्मज्ञानकी जिज्ञासा है, उसके सम्मुख श्रीब्रजेन्द्रनन्दन क्यों आने लगा। लेकिन जिसमें जैसी जिज्ञासा—भगवत्तत्त्वको जिस रूपमें पानेकी इच्छा उत्पन्न हुई, वह शब्द-ब्रह्म अर्थात् वैदिक विधि-निषेधके बन्धनोंको अवश्य पारकर लेगा। उसे अपने अभीष्टकी अवश्य प्राप्ति होगी। जैसी तीव्र या मंद जिज्ञासा, प्रयत्नमें उतना बल और प्राप्तिमें उतनी शीघ्रता या विलम्ब।

जीवनके कितने वर्ष ? बहुत अटपटा प्रश्न है। आप ये वर्ष अभी-अभी लगाना चाहते हैं या अन्तमें। यदि अभी लगाना चाहते हैं तो उतने वर्ष लगा देनेके बाद क्या करनेकी सोचते हैं ? कोई सांसारिक काम ? तब तो आप संसारकी वासनासे इन वर्षोंको भी वासित ही रखेंगे। इनको कन्हाईके लिए लगाया गया, यह औपचारिकता ही तो हुई ? यदि इन वर्षोंके बादके लिए आपका कोई कार्यक्रम नहीं है, पीछे श्यामसुन्दर जो करावे, वह करेंगे तो भले अभी आपने पूरा वर्ष नहीं, कुछ महीने या कुछ दिन ही लगानेकी सोची हो, जीवन तो आपने पूरा ही दे दिया। अतः आपका निश्चय पवित्र है। यही किया जाना चाहिये।

आप जीवनके अन्तिम वर्ष देना चाहते हैं ? कौन-से वर्ष आपके अन्तिम वर्ष होंगे—आप जानते हैं ? वृद्धावस्थामें साधन-भजन करनेकी बातथोथी है। पहिली और मुख्य बात यह कि मृत्यु बालक, युवा, वृद्ध कुछ देखती नहीं। किसकी मृत्यु कब होगी, कुछ निश्चय नहीं। दूसरी बात यह कि वृद्धावस्थामें जब शरीर असमर्थ हो जाता है, स्मरण शक्ति लुप्त होने लगती है, भजन बनेगा ? उस समय केवल पूर्वाभ्यास काम आता है। नवीन आरम्भ बुढ़ापेमें चल नहीं पाते। शरीर और मनकी दुर्बल पड़ती शक्तियाँ दैनिक जीवनको ही सम्हालनेमें लग जाती हैं।

यह बात ठीक है—'अन्ते या मतिः सा गतिः।' मरते समय अर्थात् मृत्युसे पूर्व मूर्छित होनेसे भी पहिले क्षणमें चित्तमें जो संकल्प, जो भावना उठेगी, अगली गति उसके अनुसार होगी; किन्तु उस समय क्या मनुष्य जान-बूझकर कोई संकल्प करनेकी स्थितिमें होता है ? उस समय तो जिसका जीवनमें प्रबल अभ्यास रहा है, वही मनमें आता है।

हम संसारकी बातोंको सोचना तो जानते हैं। जहाँ नहीं जानते, उस विषयको सिखलानेके विद्यालय हैं, पुस्तकें हैं, विशेषज्ञ हैं। लेकिन भगवान्के विषयमें चिन्तन करना हमें आता नहीं और इसका शिक्षण देनेवाले विद्यालय नहीं हैं। पुस्तकें हैं तो सही; किन्तु वे भी ठीक-ठीक कम ही समझमें आती हैं। उनमें मतभेद बहुत हैं। विशेषज्ञ—अर्थात् भगवत्तत्त्वके ज्ञाता महात्मा तो सुदुर्लभ हैं।

यहाँ एक सुविधा भी है। संसार बाहर है अतः उसके सम्बन्धमें निश्चित पद्धति है। संसारमें तो पिता पिता है और माता माता; किन्तु भगवान तो अधोक्षज हैं, अन्तर्यामी हैं, सर्वरूप हैं, सर्वभावमय हैं। उन्हें आप एक साथ कहते हो—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

अतः कन्हाईके सम्बन्धमें आप जो भाव करें, सब ठीक है और बुद्धिसे इसे जैसा—जितना अनुभव करें, आपके लिए उसमें कोई त्रुटि नहीं है। केवल करना यह है कि मन इसके सम्बन्धमें भावना करता रहे और बुद्धि इसको छोड़कर तटस्थ न हो जाय। इसे समझनेका प्रयत्न करती रहे।

कितना? यह प्रश्न फिर भी रह ही गया। गोस्वामी तुलसीदासने उत्तर दिया—

कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम॥

एक सन्तने कहा—'भगवानको हेडक्वार्टर बनाओ।'

व्यक्ति कार्यवश इधर-उधर जाता है। दो-चार दिनको भी जाता है प्रयोजन विशेषसे और अधिक दिनको भी; किन्तु उसको घूम-फिरकर वहीं लौट आना है। वहीं आकर उसे निश्चिन्तता और शान्ति मिलती है। क्या आपके मनकी यह स्थिति कन्हाईके सम्बन्धमें बन गयी है? क्या वह दूसरी बातें सोचते-सोचते घूम-फिरकर श्रीव्रजराजकुमारको सोचने लगता है? क्या आपकी बुद्धि दूसरे ऊहापोहमें लगकर भी अन्ततः ईश्वरके विषयमें चिन्तन करने लगती है? यदि ऐसा है तो कितनाका प्रश्न नहीं है।

यह भी नहीं होता ? तब कितना क्यों ? तब जितना आप लगा सकते हों उतना। क्योंकि जब आपका वश ही नहीं तो पूछनेसे तो कोई लाभ है नहीं।

जितना आप लगा सकते हों—भले वह कुछ क्षण ही हों। इसमें निराश होने जैसी कोई बात नहीं है। यह तो आप जानते ही हैं कि सम्पूर्ण प्राकृत प्रपञ्च त्रिगुणात्मक है। अत: संसारके सम्बन्धका मनका सब संकल्प-विकल्प और बुद्धिका सब चिन्तन त्रिगुणात्मक ही होगा। यह एक ही प्रकारके—त्रिगुणात्मक संस्कार बनावेगा।

कन्हाई तो त्रिगुणात्मक नहीं है। अत: कन्हाईके लिए जो भावना, जो बुद्धिका चिन्तन है, वह त्रिगुणात्मक संस्कार तो बनावेगा नहीं। संस्कार बनेगा; किन्तु मायिक संस्कारोंका विरोधी संस्कार। अत: मायिक संस्कार इसे मिटा या दबा नहीं सकते।

सांसारिक संस्कार तो कूड़ेके समान हैं। उनमें विकार होता है। जैसे कूड़ा सड़ता है। उनमें एकसे दूसरा दबता, मिटता या बदलता भी है। लेकिन भगवदीय संस्कार तो हीरेके कण जैसे हैं—ज्योतिर्मय। वे न सड़ते, न बदलते और न उन्हें कूड़ा छिपा पाता। अत: प्रत्येक बार जब सञ्चित्‌को उलट-पलटकर प्रारब्ध बननेका अवसर आता है, ये ज्योतिर्मय संस्कार पहिले चुननेमें आ जाते हैं।

इसीलिए भजनके मार्गमें पीछे लौटना नहीं है। फिरसे प्रारम्भ करना नहीं है। जो जितना बढ़ गया, उसे अगले जन्ममें उससे आगे ही बढ़ना है। यह मार्ग ही ऐसा है कि इसपर चरण रखने वालेको यह अन्तत: पहुँचा ही देता है।

अत: कन्हाईके लिए आप हृदय और बुद्धि जितनी दे सकते हैं, उतनी ही दीजिये। उतना ही आपकी प्रगतिको बनाये रखनेके लिए पर्याप्त है।



चिन्ता-चिन्तन ?

अवश्य ही चिन्तनके साथ चिन्ताका बहुत अधिक सम्बन्ध है। चिन्ताके बिना चिन्तन ध्यान है और ध्यान सहसा हुआ नहीं करता। आप जानते ही हैं कि १. यम-नियम, २. आसन, ३. प्राणायाम, ४. प्रत्याहार, ५. धारणाके पश्चात् ध्यानकी स्थिति आती है। इस क्रमसे चले बिना सीधे ध्यानका प्रयत्न करनेवाले साधक अपनी अवस्था जानते हैं।

आप रागसे चिन्तन करते हो या द्वेषसे। जिसके प्रति राग है, उसका चिन्तन सब समय न भी होता हो तो भी सुखद या दुःखद परिस्थिति बनते ही उसका चिन्तन होने लगता है।

माताएँ जानती हैं कि पुत्र कहीं भी हो, उत्सवके दिन उसकी याद अवश्य आती है। पुत्र जहाँ गया है, वहाँकी किसी भी दुर्घटनाका समाचार मिले तो पुत्रके लिए चिन्ता होने लगती है। चिन्ता हो और चिन्तन न हो, यह तो सम्भव नहीं है।

जो शत्रु है, द्वेषसे उसका चिन्तन होता है। भय अथवा भय आनेकी आशंकासे चिन्ता होती है, चिन्तन होता है। लेकिन कन्हाईसे द्वेष कर लेना सामान्य जीवके वशकी बात नहीं है। यह तो हिरण्यकशिपु, रावण, शिशुपाल जैसे विशेष कारक पुरुषोंकी ही सामर्थ्य है; क्योंकि वे मूलतः भगवत्पार्षद हैं और भगवानकी इच्छासे, उनकी लीलाको साङ्गता देनेके लिए इस रूपमें धरापर आये हैं।

कन्हाईसे भय? श्री ब्रजेन्द्रनन्दन प्यार करनेके लिए है, इससे भला कोई क्यों डरे। अवश्य ही जिनमें उत्तम विवेक जाग गया है, जिनमें वैराग्य है, वे जन्म-जरा-मृत्युसे भयभीत होकर इस श्यामसुन्दरकी शरण लेते हैं। उनका भय जितना स्पष्ट और प्रगाढ़ होगा, उतना ही प्रगाढ़ चिन्तन वे इस शरणदाताका कर सकेंगे; क्योंकि भय लगता है तब भयसे जहाँ, जिससे बचाये जानेकी सम्भावना हो, उसका चिन्तन करनेको किसीको कहना नहीं पड़ता।

जीवन सङ्कटोंसे भरा है। कालके मुखमें मनुष्य खड़ा है। केवल मृत्युका ही भय नहीं है, अनेक प्रकारके भय जीवनमें बार-बार आते हैं और यह भी संतोंका अनुभव है कि सङ्कटमें पड़कर कोई इस कृष्णचन्द्रको पुकारे और उसे सहायता न मिले, ऐसा होना कभी सम्भव नहीं है। आर्त-पुकारको अनुसुनी कर देना कन्हाईको आता ही नहीं। लेकिन संकटमें यह कितनोंको याद आता है ? मनुष्यका अभाग्य यही तो है कि उसे इस परित्रातापर आस्था ही नहीं है। वह इसे न पुकारकर इधर-उधर हाथ-पैर मारता रहता है।

भय तभी कृष्णके चिन्तनका कारण होता है, जब पहिलेसे विश्वास हो कि पुकारनेपर कन्हाई रक्षा करेगा ही। यह विश्वास व्यक्तिको निश्चिन्तता, अभय दे देता है।

कन्हाईसे द्वेष सम्भव नहीं और सङ्कटमें यह बचा ही लेगा, ऐसा दृढ़ विश्वास भी नहीं, तब इसका चिन्तन चिन्ताके ही द्वारा सम्भव है। तब इन ब्रजसुन्दरसे राग चाहिये। इससे प्रीति होगी तो विशेष अवस्थामें इसके लिए चिन्ता भी होगी। चिन्ता होगी तो चिन्तन अपने आप होगा।

नारायण अजामिलका सबसे छोटा लड़का था। वह इतना ही बड़ा था कि खेल-कूद कर सके। उस बालकसे अजामिल किसी भी प्रकार सहायता पाने या रक्षा होनेकी आशा नहीं कर सकता था। लेकिन बालकमें अजामिलका स्नेह बहुत था। बहुत चाहता था अजामिल अपने इस पुत्रको।

यमदूत अजामिलको दिखलायी पड़े। कहते हैं कि पापी व्यक्ति मरने लगता है तो उसे लेने यमदूत आते हैं और अनेक बार वे मरणासन्नको दिखलायी भी पड़ते हैं। उस समय अजामिलमें सोचने-समझनेकी शक्ति नहीं थी। अतः उसने क्या सोचकर पुत्रको पुकारा, यह प्रश्न नहीं उठता। वह सोचनेकी स्थितिमें होता तो भी शायद पुकारता। शायद यह सोचकर पुकारता कि उसका पुत्र दूर भाग जाय और इन भयङ्कर लोगोंसे बचा रहे, किन्तु सोच तो वह सकता नहीं था उस समय। उसने तो घबड़ाकर पुकारा—'नारायण !'

मरते समय इस प्रकार घबड़ाकर भी आप पुकार सकें—'कृष्ण ! कन्हाई ! कनूँ !' आपका जीवन-मरण भी धन्य हो जायगा। लेकिन मरते

समय यह पुकार कैसे आवेगी ? अजामिलके एक ही पुत्र नहीं था, उसके और भी पुत्र थे। उसने छोटे पुत्रको ही क्यों पुकारा ? इसलिए कि उसीसे अजामिलका दृढ़ स्नेह था। कन्हाईसे जीवनमें ऐसा दृढ़ स्नेह, प्रबल राग आपका हो गया है ?

राग नहीं है, स्नेह नहीं है तो कन्हाईके लिए आपको चिन्ता क्यों होने लगी। चिन्ता नहीं तो चिन्तन कैसे होगा ? सहज चिन्तन तो चिन्तासे होता है। एक परिचित थे (अब उनका शरीर नहीं है)। वे कहीं यात्रामें जाते तो ट्रेनके दो टिकट लेते थे। प्रायः प्रथम श्रेणीमें चलते थे। एक सीट उनको अपने लिए और एक अपने ठाकुरजीके लिए आवश्यक लगती थी।

एक महिला हैं, वे कहीं जाती हैं तो बाजारमें ढूँढ़ती फिरती हैं कि ठाकुरजीके लिए क्या ले जा सकती हैं। एक सज्जन बाजारसे कुछ लेने लगे। पूछनेपर बोले—'घरमें एक नन्हा बालक है। कुछ लेकर नहीं जाऊँगा तो वह मुँह फुलावेगा !'

उन महिलाको और इन सज्जनको बाजारमें दूकान-दूकान भटकते समय भी चिन्ताके कारण चिन्तन हो रहा है, आपको इसमें कहीं सन्देह है ? आप कन्हाईका चिन्तन करना चाहते हैं ? तब आप कन्हाईके लिए चिन्ता करनेका अभ्यास डालिये। चिन्ता होने लगेगी तो चिन्तन अपने आप होगा। तब आपको आसनपर बैठकर, आँख बन्द करके चिन्तनका असफल प्रयास नहीं करना होगा।

मैं बहुत बीमार था। स्वयं बिना सहारेके चारपाईसे उठ नहीं सकता था। झूसी (प्रयाग) था उस समय। गर्मीके दिन थे किन्तु आषाढ़के। कभी भी वर्षा आ सकती थी। मेरी चारपाई रात्रिमें खुलेमें थी। रात्रिमें सहसा मेरे ऊपर बूँद पड़ी। नींद टूटी तो देखता हूँ कि जो विद्यार्थी दिनमें सेवा करता था, वह समीप खड़ा है, सहारा देकर उठाने और चारपाई छायामें ले जानेको। मैंने चौंककर पूछा—'तुमको कैसे पता लगा कि बूँद पड़ने लगी है ?'

वह विद्यार्थी खूब ऊँचे बने संकीर्तन-मण्डपमें सो रहा था। मध्य-रात्रिमें बालकको गाढ़ी नींद आनी ही चाहिये और अभी तो मेरे ऊपर केवल एक बूँद पड़ी थी। लेकिन उस बालकने कहा—'छप्परके खपरैलपर बूँद पड़नेकी ध्वनिसे मैं जागकर दौड़ा आया हूँ।'

खपरैल पर पहिली बूँद पड़ी और वह जाग गया। उसके मनमें सोते समय मेरे लिए चिन्ता रही होगी या नहीं ? इस चिन्ताने नींदमें भी चिन्तन बनाये रखा। सुषुप्तिमें भी वह प्रमादग्रस्त नहीं हुआ था।

आप अपने जीवनमें कन्हाईको इतना तो स्थान दीजिये कि उसके लिए कभी-कभी आपको चिन्ता हो। बाजार जानेपर, कहीसे घर लौटते समय, सायंकाल अँधेरा होनेपर जब आप सायं प्रार्थना या दीप जलाना नहीं कर पाते। इन अवस्थाओंमें आपको कन्हाईके लिए चिन्ता नहीं होती तो आप चिन्तन कैसे करेंगे ?

कोई बड़ा पर्व या उत्सव आता है तो आपको स्मरण आता है कि कन्हाईको क्या भोग लगेगा ? कैसे सजावेंगे इसे ? इसके लिए थोड़ी-बहुत चिन्ता होती है ?

आप घरसे बाहर हैं, आँधी या वर्षा आती है, यह भी तो हो सकता है कि घर-परिवारके लोग, सेवक खिड़कियाँ बन्द करना भूल जायँ या देरसे बन्द करें। ठीक है कि आप दौड़कर पहुँचनेकी स्थितिमें नहीं हैं; किन्तु आपको चिन्ता तो होनी चाहिये।

चिन्ता—कन्हाईके लिए चिन्ता करनेका अभ्यास कीजिये। कोरा चिन्तनका अभ्यास काम नहीं दिया करता। इस नन्दकुमारके लिए आप चिन्ता करने लगेंगे तो यह चिन्ता ही आपकी सब चिन्ताओंकी महौषधि हो जायगी।



कितनी व्याकुलता ?–

आपने अनुभव किया होगा कि व्याकुलता उत्पन्न नहीं की जाती, वह होती है। जब कोई अप्रिय स्थिति दूर नहीं होती, तब उसे दूर करनेके लिए व्याकुलता होती है। जब कोई प्रिय पदार्थ, व्यक्ति या स्थिति प्राप्त नहीं होती तो उसे पानेके लिए व्याकुलता होती है। प्रियके वियोगमें व्याकुलता होती है। अप्रियके आ जानेपर व्याकुलता होती है। भयके कारण व्याकुलता होती है। यह व्याकुलता कितनी ? उतनी जितना कोई प्रिय या अप्रिय हो। इतनी भी सम्भव है कि वह साधारण ऊब मात्र लगे और इतनी भी सम्भव है कि उससे प्राण ही चले जायँ।

कन्हाई आपको कितना प्रिय है ? इसीके अनुपातमें इसके न मिलनेमें व्याकुलता होनी है आपको।

संसार आपको कितना काटता है ? इसीके अनुपातमें आपको इससे छूटनेकी व्याकुलता होनी है।

जिसे संसारके भोगोंमें तृप्ति मिल रही है। जो अपनी स्थितिसे सुखी-सन्तुष्ट है अथवा अपनी सांसारिक स्थितिको ही सँवारने-सुधारनेकी बात सोचता है, इसीके प्रयत्नमें लगा है, उसे व्याकुलता होती भी है या है तो संसारके लिए, भोगोंके लिए, परिवारके लिए, शरीरकी सुख-सुविधा या सम्मानके लिए। उसे श्यामके लिए क्यों व्याकुलता होने लगी।

कन्हाई मिलता है। सब युगोंमें मिलता है। इस युगमें भी मिलता है। बहुतोंको मिला है और ऐसा कोई नहीं है जिसे न मिल सकता हो। स्त्री-पुरुष, बालक-युवा-वृद्ध, कंगाल-करोड़पति, सेवक और उच्च शासनाधिकारी, स्वस्थ-रोगी सबको ही मिल सकता है। योगी-भोगी, ज्ञानी-मूर्ख, अत्यन्त पापी-बड़ा पुण्यात्मा, तपस्वी-विलासी, कोई नहीं जो कृष्णकी प्राप्तिका अनधिकारी कहा जाय।

आप किसीको बतला सकते हैं जिनसे मिलनेसे यमराज अस्वीकार कर दें ? केवल मुक्त पुरुषोंसे वे नहीं मिलते। ऐसे कैवल्यकामी मुक्त पुरुषोंसे कन्हाई भी नहीं मिलता। यमराज श्यालक हैं, अतः उन्हें सबसे

मिलना ही है; किन्तु उनके ये नवघन सुन्दर जीजाजी अपनी ओरसे किसीसे नहीं मिलते, किन्तु कोई मिलना ही चाहे तो किसीसे मिलना अस्वीकार नहीं करते।

अद्भुत है यह अहीर-कुमार। यह साधन-भजनसे कदाचित ही मिलता है। मिलता भी है तो क्षणिक रूपमें, अपरिचितकी भांति। कितने क्लेशकी बात है कि जो सचमुच ही अपना है, वह अपरिचितकी भाँति मिले। इससे न मिलना क्या अधिक अच्छा नहीं है? लेकिन यह वनबिहारी (जंगली कहनेपर कदाचित आप चिढ़ेंगे) योगी, तपस्वी, ज्ञानी-ध्यानीसे एक तो मिलता कठिनाईसे है और मिलता है तो अपरिचित जैसा।

इसे दोष भी नहीं दिया जा सकता। कोई भी अपने समान लोगोंमें ही तो घुलमिल सकता है। उदार हुआ तो अपनेसे छोटोंसे भी घुल-मिल लेता है; किन्तु अपनेसे बड़ोंके साथ मिलना ही पड़े तो उनका संकोच, शालीनता रखनी पड़ेगी या नहीं? कन्हाई स्वयं कहाँ योगी-यती, ज्ञानी-ध्यानी, तितीक्षु-त्यागी या बड़ा धर्मात्मा है कि ऐसे लोगोंसे भली प्रकार घुल-मिल सके।

नन्दनन्दन मिलता है, मिल सकता है; किन्तु किसी साधन-भजनसे नहीं, केवल चाहनेसे। आप जानते ही हैं कि चाह सबके हृदयमें होती है। चाहनेमें कोई प्रतिबन्ध नहीं और श्याम केवल चाहनेसे मिलता है।

अवश्य ही चाह-चाहमें भी अन्तर होता है। आप साधारण चाहसे परिचित हैं। बाजार जाते हैं और चाहते हैं कि परवल ले आवें। मिलता तो है, पर आपको महँगा लगता है। आप दूसरी कोई सब्जी ले आते हैं। परवलके बिना भी काम चल सकता है तो उसीके लिए अधिक व्यय क्यों करें। यह साधारण चाह है।

घरमें कोई प्रियजन रुग्ण हैं। चिकित्सकने पथ्यमें परवलका ही पका पानी देनेको कहा है। बाजारमें परवल दीखता नहीं। आप उसके लिए पूरा नगर छान मारते हैं। एक रूपयेका एक परवल मिले तो भी आपको चाहिये। यह है विशेष चाह।

इस चाहसे भी पहिले उत्सुकता होती है। जैसे बच्चे, बहुत-से बड़े भी उड़ते वायुयानको देखने कमरेमें-से बाहर आ जाते हैं। वायुयानकी ध्वनि नहीं सुनायी दी, तब तक कोई बात नहीं थी। ध्वनि सुनायी दी तो कुतूहल जाग उठा।

कन्हाई केवल कुतूहलसे नहीं मिलता । चाहनेसे मिलता है; किन्तु साधारण चाहसे नहीं और ऊपर बतलायी विशेष चाहसे भी नहीं । मिलता है तब, जब चाह व्याकुल बन जाती है और व्याकुलता अत्यन्त उत्कट हो जाती है ।

'तद् विस्मरणे परम व्याकुलता' (नारद-भक्ति-सूत्र १६) । यह तो देवर्षि नारदने भक्तिका लक्षण बतलाया है; किन्तु यही कन्हाईको पानेका भी उपाय है । कन्हाई भक्तिसे ही तो मिलता है ?

परम व्याकुलताका आपने पता नहीं कभी अनुभव किया है या नहीं । प्यास लगी हो, गला सूख रहा हो और तब भी घण्टे-आध-घण्टे जल न मिले तो जलके लिए परम व्याकुलता होती है । जलमें व्यक्ति डूबने लगता है तो बाहर निकलनेके लिए परम व्याकुलता होती है । मुझे मूर्च्छित रोगी मिले हैं । मुख बन्द, दाँत जकड़े हुए । उन्हें दवा कैसे दी जाय ? सीधा उपाय मेरा है —मैं उनकी नाक दबा देता हूँ । कुछ क्षण भी नहीं लगते कि श्वास लेनेको मुख खुल जाता है । अब कोई मुख भी दबा दे तो ? तब श्वास लेनेके लिए परम व्याकुलता होगी ।

जब तक आपमें कृष्णको देख लेनेका केवल कुतूहल है, कोई आशा नहीं । जब तक आपका काम कन्हाईके बिना चल जाता है, भले आपमें व्याकुलता जाग गयी है, छटपटाहट भी है; किन्तु काम किसी प्रकार चलता है, तब तक भी कोई आशा नहीं । बहुत सम्पन्न लोग भी संकटमें पड़ते हैं और तक जो भी सड़ा-गला, कदन्न मिलता है, उससे पेटकी ज्वाला बुझाते हैं । पहिले तो समुद्री-यात्रामें ऐसे अवसर बहुत आते थे; किन्तु अब भी ऐसे अवसर आ ही जाते हैं । उस समय आहार पानेकी जैसी व्याकुलता होती है, वैसी —उतनी भी नहीं; क्योंकि आपका काम चल जाता है ।

कुतूहल मात्रसे या सामान्य अथवा विशेष उत्सुकतासे भी लोगोंको श्रीकृष्ण-दर्शन हुआ है । अनेक चमत्कारी पुरुष तो विशिष्ट लोगोंको बिना उत्सुकताके भी भगवद्-दर्शन करा देते हैं । बहुधा ऐसा दर्शन सम्मोहन (हिप्नोटिज्म) होता है । ऐसा न भी हो तो भी इससे कन्हाई मिलता नहीं । अधिक-से-अधिक सत्य इसमें हुआ तो यही होगा कि एक झलक मिल जाय ।

कन्हाई मिलता है—सचमुच मिलता है और सदा-सदाको मिल जाता है; किन्तु मिलता है परम व्याकुलतासे । इस परम व्याकुलताका अर्थ है कि जब

आपका काम किसी प्रकार कन्हाईके मिले बिना नहीं चलता। जब मरण या मिलनमें क्षणार्धका अन्तर रह जाता है, तब कन्हाई मिलता है। मिलता ही है उस समय। मिले बिना यह रह जो नहीं सकता।

कन्हाईसे मिलनेका कुतूहल भी कितनोंके मनमें है? आपके मनमें कुतूहल ही नहीं, उत्सुकता है, चाह है तो आपका सौभाग्य; क्योंकि कन्हाईके लिए चाह भी जन्म-जन्मान्तरके पुण्योंका उदय होनेसे ही जागती है।

चाह तब तक निर्वीर्या है, जब तक उसमें व्याकुलता नहीं आती। अतः सामान्य चाह नहीं, विशेष चाह तो उसे बनने ही दीजिये। विशेष चाह बनेगी तब व्याकुलता उत्पन्न होगी। यह व्याकुलता ही समस्त प्रतिबन्धोंको भस्म कर देती है। हृदयका सब पाप-ताप, कषाय-कल्मष व्याकुलताकी ज्वालामें जल जाता है। इसे तो जल ही जाना है।

व्याकुलता—कन्हाईके लिए परम व्याकुलता जागे तब जीवन धन्य होता है। यह परम व्याकुलता भी वाञ्छनीय, प्रार्थनीय है। परम व्याकुलता दो बार नहीं जगाना पड़ता। प्राणोंमें एक बार यह जागी तो फिर व्रजराजकुमारका विस्मरण कैसा? और तब क्या कन्हाईके मिलनेमें बिलम्ब होना है।

व्याकुलता आवे कैसे ?—

आवश्यकता होती है, तब उसे प्राप्त करनेकी इच्छा होती है। आवश्यकता अधिक हो तो प्राप्तिकी इच्छा तीव्र होती है और अप्राप्तिमें व्याकुलता होने लगती है। रागके माध्यमसे व्याकुलता होनेका यही क्रम है।

कोई वस्तु, व्यक्ति या स्थिति कष्ट देने लगती है तो उसे दूर कर देने अथवा उससे स्वयं दूर हो जानेकी इच्छा होती है। उससे जितना अधिक कष्ट होता है, दूर करनेकी इच्छा उतनी तीव्र होती है। उसे दूर करने या उससे स्वयं दूर होनेमें जितना बिलम्ब होता है, जितनी विवशता दीखती है, उतनी ही व्याकुलता बढ़ती है। द्वेषके माध्यमसे व्याकुलताका यह क्रम है।

कन्हाईके अस्तित्वमें ही जिनकी आस्था नहीं है या जो इसकी ओरसे उदासीन हैं—उन्हें इसके लिए न रागके माध्यमसे व्याकुलता होगी, न द्वेषके माध्यमसे। उनका तो इससे जैसे सम्बन्ध ही नहीं और स्वयं इस नन्दनम्दनका स्वभाव है कि जो इससे उदासीन है, उससे यह परम उदासीन है।

जो इसकी सत्ता स्वीकार करते हैं, वे यदि इसकी लीलामें ही सहयोग देने आये इसीके कोई परिकर नहीं हैं तो इससे उनका द्वेष होना सम्भव नहीं है। किसी मति-भ्रमसे द्वेष हो भी जाय तो वह अल्पकालिक रहेगा।

मैं ऐसे लोगोंको जानता हूँ कि जो राम या कृष्णका नाम लेनेसे चिढ़ते हैं--चिढ़नेका नाटक करते हैं, यह कहना अधिक ठीक है। ये तो भावुक लोग हैं। प्रेमीजन हैं। ये तो चिढ़नेका नाटक करते ही इसलिए हैं कि इन्हें चिढ़ानेके लिए ही दूसरे वह भगवन्नाम लें।

मैं कैसे भूल सकता हूँ कि लोगोंने दूसरोंके उपासना मन्दिर ध्वस्त किये हैं। असंख्य लोगोंकी हत्या हुई है। ये सब धर्मोन्मादग्रस्त भटके हुए लोग हैं। इनमें किसी भी धर्मके प्रति दृढ़ आस्था या आचरण नहीं होता। ये तो लुटेरे होते हैं या पदलोलुप। ये कन्हाईके किसी भी नाम या रूपकी

ओर जाने ही वाले नहीं हैं। इनकी गणना केवल पामरोंमें की जा सकती है या चतुर स्वार्थी लोगों द्वारा उभाड़ दिये गये अविवेकियोंमें। अतः ये द्वेषके भी साधक नहीं हैं।

भली प्रकार विचार करके देखें तो कन्हाईकी प्राप्तिका मार्ग सर्व-सामान्यके लिए द्वेषका मार्ग है ही नहीं। केवल रागका—प्रेमका मार्ग ही है। अतः विचार करनेकी बात यही रह जाती है कि इस कृष्णचन्द्रके लिए प्रीति—पुरःसर व्याकुलता जीवनमें कैसे जागे और कैसे तीव्रतम बने।

हम-आप जन्म-जन्मान्तरसे इस संसारसे ही परिचित हैं। इसीके भोग-उपभोगमें लगे हैं। अतः संसारसे ही राग या द्वेष करनेका हमें अभ्यास है। अब भी हमको जो संसर्ग प्राप्त होता है, वह संसारकी ही ओर लगाने वाला अधिक है।

किसी जन्मके किसी पुण्यका उदय होनेपर कन्हाईके सम्बन्धमें कुछ सुननेको मिलता है। लेकिन हवामें घास और पौधोंके बीज तो उड़ते ही रहते हैं। वे वहीं उगते हैं जहाँ उनके उगनेके अनुकूल भूमि हो। इसी प्रकार सुननेको बहुत-सी बातें बराबर मिलती ही रहती हैं। उनमें-से हृदयमें वही जम पाती है, जिसके अनुकूल कुछ संस्कार पहिलेसे वहाँ हों।

घास तो वहाँ भी उग आती है, जहाँ दो चिटकी मिट्टी हो; किन्तु वहाँ वह बढ़ सकेगी? किसी पौधेका उग जाना ही पर्याप्त नहीं है। वहाँ उसे खाद-पानी भी मिलता रहे तो वह बढ़ता है और उसे सुरक्षा भी चाहिये ही। कोई पशु उसे चर या उखाड़ भी ले जा सकता है।

कन्हाईके सम्बन्धमें चर्चा कानमें पड़ी या आपने कहीं कुछ पढ़ लिया। बात यदि आयी-गयी हो गयी तो कहना होगा कि हृदयमें अभी इस अंकुरके पनपने योग्य भूमि नहीं थी। भूमि अनुकूल हो तो इच्छा होती है कि इन नन्दनन्दनके सम्बन्धमें कुछ अधिक जानें।

आपमें कन्हाईके सम्बन्धमें जाननेकी जिज्ञासा हुई तो आगे की बहुत-सी बात यह स्वयं कह लेता है। यह कृष्ण है, आकर्षण करना इसका स्वभाव है। अतः मनको यह अपनी ओर आकर्षित तो कर ही लेगा। यह इसके आकर्षणका चिह्न है कि इसे देख लेने या प्राप्त करलेनेकी इच्छा होती है।

इसे प्राप्त करनेकी इच्छा होने लगी अर्थात् इसका आकर्षण आपके लिए सक्रिय हो गया; किन्तु इस अंकुरको कोई भी चर जा सकता है।

आपको ही इस ओरसे सावधान रहना पड़ेगा। कुसंग और कामना ऐसे भयानक पशु हैं जो हृदयमें अंकुरित भगवन्मुख होनेकी इच्छाको उन्मूलित ही कर देते हैं। अतः कुसंग न हो—न संसारासक्त ऐसे लोगोंका जो बहिर्मुखताको प्रोत्साहित करते हैं और न ऐसे साहित्यका। साथ ही कोई सांसारिक भोग, पद, प्रतिष्ठा पानेकी बहुत तीव्र कामना न जाग उठे तो यह अंकुर सुरक्षित रहेगा।

सुरक्षा ही मुख्य व्यवस्था नहीं है। यद्यपि सुरक्षा अत्यन्त आवश्यक है आरम्भमें; किन्तु खाद-पानी? इसके बिना केवल सुरक्षासे कोई अंकुर जीवित रहेगा? यह खाद-पानी क्या? जीवनमें कन्हाईको अपना बना लेनेकी आवश्यकताका अनुभव। यह अनुभव जितना अधिक होने लगेगा, व्याकुलता उतनी ही बढ़ती जायगी और मिलनकी सम्भावना उतनी समीप आती जायगी।

सच बात है कि जीवनमें कन्हाईकी आवश्यकताका अनुभव हम नहीं करते। कभी दुःख, अभाव, विपत्ति आ भी जाती है तो हम केवल उसे दूर करनेको व्याकुल होते हैं। उसे मिटानेका जैसे सांसारिक प्रयत्न करते हैं, वैसे ही उसे मिटानेके साधनके रूपमें ही कभी प्रार्थना, पूजा, जप अनुष्ठान भी कर लेते हैं। यह प्रार्थना, जप, अनुष्ठान चाहे जितना अधिक हो, पाना तो हम कन्हाईसे भी संसार ही चाहते हैं।

साधनमात्र यदि वह आध्यात्मिक साधन है तो उसकी नींव विवेक और वैराग्य ही हैं। बिना विवेक और वैराग्यके साधन या तो दम्भ हो जाता है या सांसारिक स्वार्थपूर्तिका साधन बनकर रह जाता है। कन्हाईकी उदारता कि यह आर्त तथा अर्थार्थीको भी भक्त मानता है; किन्तु क्या आर्त या अर्थार्थीमें कन्हाईके लिए कोई व्याकुलता है?

वैराग्यका अर्थ है—कुसंगसे बचे रहना और किसी भी सांसारिक कामनाको प्रबल न होने देना। विवेकके द्वारा संसारके भोगोंकी असारता जैसे-जैसे बढ़ेगी, वैसे-वैसे एक ओर उनसे वैराग्य बढ़ेगा और दूसरी ओर जीवनमें कन्हाईकी आवश्यकताका अनुभव बढ़ेगा।

विवेक कैसे बढ़े? एक ही उत्तर है—सत्संगसे। यह सत्संग भले सद्ग्रन्थोंके अध्ययनके रूपमें ही हो। वैसे यह अनुभूत सत्य है कि किसी महापुरुषका प्रत्यक्ष कुछ क्षणोंका सत्संग जो प्रभाव डालता है, वह प्रभाव उसी महापुरुषके लिखे ग्रन्थोंके बहुत अध्ययनसे भी नहीं पड़ता। उलटे

उसके ग्रन्थोंके अध्ययनमें रुचि तथा उस अध्ययनका प्रभाव बढ़ जाता है यदि हम व्यक्तिगत रूपसे उस महापुरुषसे परिचित हो जाते हैं।

अनेक बार आपको अमुक वस्तु-सेवनकी इच्छा तीव्र होती है। इसलिए होती है ; क्योंकि वह वस्तु और उसके सेवन करने वाले आपके आसपास एकत्र हो जाते हैं। उनके संसर्गसे पूर्व आपको उस वस्तुका स्मरण भी न आता रहा हो, यह बहुत सम्भव है। इसी प्रकार जो लोग कन्हाईको पानेके प्रयत्नमें हैं, भले वे अभी प्राप्त न कर सके हों, महापुरुष न हों, तो भी उनका संसर्ग आपके मनमें भी श्यामको पानेकी आवश्यकता जगा देगा, बढ़ाता रहेगा। इसलिए अनुकूल संग मिलता रहे, इस ओर ध्यान देनेकी बहुत आवश्यकता है।

जीवनमें जिसकी आवश्यकताका अनुभव नहीं होता, उसको पा लेनेका कुतूहल हो सकता है, उसके लिए व्याकुलता नहींहुआ करती। कन्हाई केवल कुतूहलसे तो मिलता नहीं। अतः जीवनमें इसकी आवश्यकता-का अनुभव बढ़ना चाहिये। इसकी आवश्यकताका अनुभव जितनी गहराईसे, जितनी तीव्रतासे आप करेंगे, इसके लिए उतनी ही अधिक व्याकुलता बढ़ेगी।



प्रतीक्षा ?–

आपने कभी किसीकी प्रतीक्षा की है ? किसीकी न भी की हो तो स्टेशनपर पहुँचकर ट्रेनकी प्रतीक्षा की होगी। उस समयकी उत्सुकता आप जानते हैं। दूसरे किसी काममें मन नहीं लगता। कुछ भी करो, बार-बार ध्यान उधर ही जाता है। ऐसी प्रतीक्षा कन्हाईके लिए जीवनमें आ सकती हो तो इससे बड़ी तो कोई साधना ही नहीं है।

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते
जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्॥

श्रीम०भा० १०.१४.८

यहाँ प्रतीक्षाकी बात नहीं है। सृष्टिकर्ता, जगतके भाग्य-विधाता स्वयं विधाता प्रार्थना करते हुए श्रीब्रजेन्द्रनन्दनसे कह रहे हैं—

'आपकी अनुकम्पा तो सबपरसदा ही है; किन्तु जो उस अनुकम्पाको भली प्रकार देखते हुए जीवन व्यतीत करता है, बराबर अनुभव करता रहता है, जीवनकी सुख-दुःख, भाव-अभाव, हानि-लाभ, संयोग-वियोग, मान-अपमान प्रत्येक परिस्थितिमें कि इस रूपमें उसपर आपकी अनुकम्पा उतर रही है, अतः अपने प्रारब्धका—पूर्वकृत कर्मोंका फल सन्तोषपूर्वक भोगते हुए आपको शरीरसे, वाणीसे, हृदयसे प्रणाम करता रहता है, वह मोक्षका दायभागी है। उसे मुक्त होनेके लिए न कोई और साधन करना है, न किसीकी कृपा अपेक्षित है। मोक्ष तो उसका होगा ही; क्योंकि मोक्ष उसका स्वत्व हो चुका।'

तीन बातें इसमें कही गयीं—

१. भगवत्कृपा अपनेपर है, इसका बराबर अनुभव।

२. प्रारब्धका जो भी भोग आता है, वह प्रिय-अप्रिय कुछ भी हो, सन्तोषपूर्वक उसे भोगते रहना।

३. हृदय, वाणी तथा शरीरसे भी भगवत्प्रणति। हृदय भगवानके प्रति विनम्र-अहङ्कारहीन रहे, वाणीसे स्तवन होता रहे और शरीर देवमन्दिर आदिमें दण्डवत प्रणिपात करनेमें सङ्कोच न करे।

यह कोई बहुत उच्च साधककी स्थिति नहीं है। उच्च स्थिति है प्रतीक्षाका जागृत होना। हमें पहिले आवश्यकताका अनुभव होता है और तब उसकी पूर्तिकी प्रतीक्षा चलती है।

कन्हाईकी प्रतीक्षा ब्रजके सभी लोगोंके प्राणोंमें जागी और अहर्निशि बनी रही। उनकी उस प्रतीक्षाका वर्णन किसीके लिए भी सम्भव नहीं है। कृष्णचन्द्र ब्रजसे मथुरा चला गया। जाते समय कह गया—'मैं आऊँगा।'

ब्रजके लोग श्रीकृष्णगत-प्राण—कन्हाईके निज जन। 'मैं आऊँगा' कहकर श्याम न गया होता—नन्दबाबाके मथुरासे लौटनेके ही दिन पूरा ब्रज प्राणिहीन हो गया होता; किन्तु कन्हाई कह गया—'मैं आऊँगा।'

बाबा, मैया, गोपियाँ, गोप, गोपकुमार, सेवक-सेविकाएँ तक इस 'मैं आऊँगा' को रज्जुसे बँध गये। बँध गये सबके प्राण, सबका देह, सबका जीवन और इसीमें बँधा चलता रहा—घसिटता रहा भी कहा ही जा सकता है।

'कमल-लोचन श्याम आवेगा और हमें नहीं पावेगा तो रोवेगा, उसके बड़े-बड़े नेत्रोंसे अश्रु झरेगा। वह दुःखी होगा।' यह आशंका श्रीकृष्ण-वियोगसे बहुत अधिक दारुण थी। यह असह्य थी। इसी आशंकासे सब जीवित थे। जीवित ही नहीं थे, भली प्रकार आहार करते थे, सब व्यवहार करते थे। अपनेको अपने घरोंको, गोष्ठको, पशुओंको सजाये रहते थे। आशंका जो थी कि अपने जनोंको कन्हाई, दुर्बल, मलिन, उत्साहहीन देखेगा तो दुःखी होगा। उसे दुःखी तो देखा नहीं जा सकता और वह इतना मृदुल हृदय है कि किसी वनपशुका भी शिथिल होना उससे देखा नहीं जाता।

ब्रजके इन लोगोंकी प्रतीक्षाका वर्णन तो वाणी—साक्षात् भगवती वीणापाणिके भी वशका नहीं। प्रतीक्षाका यत्-किञ्चित् वर्णन किया गया है कुब्जाका। उसे 'भगवान वासुदेव'* में ही देखना चाहिये।

कुब्जाको कन्हाई मार्गमें कुछ क्षणको मिला था। कूबरी कुब्जाको उसने सीधी कर दिया। तनिक-सा स्पर्श मिला उस दासीको। कन्हाईने उससे कह दिया—'मैं तुम्हारे घर आऊँगा।'

---

* श्रीकृष्ण जन्मस्थान सेवा-संस्थानसे प्रकाशित विशाल श्रीकृष्ण-चरितका प्रथम खण्ड

वह भुवनमोहन रूप, वह मन्द मुस्कान और अमृत स्पर्श क्या भूला जा सकता है ? कुब्जाके प्राणोंमें प्रतीक्षा जाग पड़ी तो आश्चर्य क्या ? उसके प्राणोंकी प्यास, उसकी तड़पन, उसकी आकुल प्रतीक्षा समझमें आती है। वह प्रतीक्षा न करती, तभी आश्चर्य होता।

कन्हाईकी एक झलक भी मिली नहीं है। उसकी मुरली-ध्वनि दूर रही, कभी उसके नूपुरोंकी झंकार भी कानोंमें नहीं पड़ी। कभी नासिकाने उसकी अङ्ग-सौरभ नहीं पायी। इतना सौभाग्य कहाँ कि उसका अङ्गस्पर्श मिले। जन्म-जन्म बीत गये हैं संसारके सड़ते-गलते रूपको सुन्दर मानकर इसीके लिए भागते-दौड़ते। यहींके दारुण शब्दोंको मधुरतम सङ्गीत मानकर सिर हिलाते हैं। यहाँकी सड़ाँधको ही सुरभि समझकर लट्टू हैं। यहाँ तो सब नोचते हैं और वही अब तक सुखद स्पर्श लगा है। ऐसेमें कन्हाईके लिए प्रतीक्षा प्राणोंमें कैसे जागे ?

प्रतीक्षा ऐसेमें भी जागती है—जागनी चाहिये; क्योंकि प्रतीक्षा—आकुल प्रतीक्षासे उत्तम कोई साधन नहीं है। प्रतीक्षा ही है जो जीवनको प्रतीक्ष्यमय बना देती है। ऐसी प्रतीक्षा जागती है—इसका उदाहरण ही जानना हो तो 'श्रीरामचरित' का तृतीय खण्ड देख लें। परम भक्ता शबरीके प्राणोंमें यह प्रतीक्षा जागी थी।

शबरी कोई ऋषि-मुनि तो नहीं थी। मुनिगण तो उसकी छायासे भी दूर रहते थे—बचते थे। उसने वेद पढ़ा था या यज्ञ अथवा अनुष्ठान करती थी ? किसीने कभी कहीं कहा या लिखा है कि शबरीने कितना जप-तप किया ? उसने पहिले कभी श्रीरामको देखा था ? कभी उसे उन कौशल्यानन्द-बर्धनका चरण-स्पर्श या श्रीअङ्गकी सुरभि सूँघनेको मिली थी ? इस सबके बिना उसके प्राणोंमें प्रतीक्षा जागी तो आपमें क्यों नहीं जाग सकती ?

शबरीने दो-चार दिन या दो-चार महीने प्रतीक्षा नहीं की। उसकी प्रतीक्षा पूरे बारह वर्ष चली। रात-दिन चली, अविश्रान्त चली। महर्षि मतङ्गने शरीर त्याग दिया था, बारह वर्ष पूर्व और तभीसे शबरी श्रीरामकी प्रतीक्षामें लग गयी थी।

'तुम्हारी कुटियामें श्रीराम अपने छोटे भाई लक्ष्मणके साथ आवेंगे।' महर्षि मतङ्गने यह आश्वासन दिया था शबरीको और वे महापुरुष थे; किन्तु—

किन्तु क्या ? यह कहना चाहते हैं आप कि भगवान व्यास महापुरुष नहीं हैं ? अथवा स्वयं भगवानका दिया आश्वासन महर्षि मतङ्गके आश्वासन जितना दृढ़ आधार नहीं है ?

भगवान व्यासके ग्रन्थोंमें सबके लिए आश्वासन नहीं है ? स्वयं भगवानने आश्वासन नहीं दिया है कि जो उनकी प्रतीक्षामें लगा है जिसके प्राण उन्हें पानेको व्याकुल हैं, उन्हें वे अवश्य मिलेंगे ?

शबरी जैसी श्रद्धा, तत्परता नहीं है। श्रीराम आवें ही, यह आग्रह नहीं जगा है प्राणोंमें--इसीलिए प्रतीक्षा भी नहीं जागती है, लेकिन यह किसका दोष है ? यह अपना ही तो प्रमाद है। इस प्रमादको छोड़े बिना भला कन्हाई मिल कैसे सकता है।

प्राणोंमें प्यास जागनी चाहिये। कन्हाईके लिए प्रतीक्षा जागनी चाहिये। प्रतीक्षा जाग जाय तो अपने आप मन-प्राण-जीवन उसके ही उन्मुख हो जाय। सब काम चलेंगे, चलते रहेंगे; किन्तु मन संसारमें लगनेके स्थानपर उचटा-उचटा रहेगा। बारबार कान-प्राण उधर ही उन्मुख होंगे—'कन्हाई आया नहीं। आ तो नहीं रहा है ?'

प्रतीक्षा सबसे बड़ा साधन है। कन्हाईके लिए आपके प्राण-मन प्रतीक्षा करने लगें, यह साधन तो है ही, साध्य भी है। इसे प्राप्त कर लीजिये। कन्हाई तो आवेगा—विवश होकर आवेगा; क्योंकि प्रतीक्षा करते प्राणोंकी वह उपेक्षा कर नहीं सकता।



अपनत्व–

आपका अपनत्व अनेकोंसे है। घर-परिवारके लोग तथा सम्बन्धी ही नहीं हैं जिन्हें आप अपना कहते हैं, बहुत-से मित्र हैं आपके और उनमें अनेक घनिष्ट हैं। यह सबका-सब अपनापन किसके लिए—किस माध्यमसे है, इसका बहुत महत्व है।

बन्धु शब्द उसी धातुसे बना है, जिससे बन्धन बना है। अतः सम्बन्धका अर्थ हो है अपने साथ भली प्रकार बाँधे रखने वाला। आप किनके साथ बँधे हैं, इसकी महत्ता आप स्वयं समझ सकते हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीका कहना है--

नाते नेह राम सों मनियत
सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अञ्जन कहा आँख जौं फूटै
बहुतक कहों कहाँ लौं॥

क्या वह अञ्जन है, जिसके लगानेसे आँख फूट जाय? संसारके सम्बन्धी संसारमें ही तो बाँधेगे? इसके अपवाद नहीं हैं, ऐसा मैं नहीं कहता। जहां अपवाद है, वह सम्बन्ध धन्य है।

अपनत्व शरीरको लेकर, शरीरके लिए नहीं। अपनत्व कन्हाईको लेकर, कन्हाईके लिए। 'नाते-नेह राम सों मनियत।' जहाँ तक भी सुहृद हैं, सुसेव्य हैं, उनका नाता और उनसे स्नेह रामको लेकर मानना योग्य है।

सुसेव्य होते हैं वे जिनकी सेवा करके आप प्रसन्न होते हैं। जिनका पालन-पोषण आप अपना कर्तव्य मानते हैं। जिनकी सेवा, आज्ञापालन आपको करना पड़ता है पैसोंके लिए, वे तो कुसेव्य हैं। वहाँ तो आपकी विवशता है; किन्तु जो सुसेव्य हैं, उनके सम्बन्धमें तुलसीदासजी तो बहुत कठोर हैं।

जरउ सो संपति-सदन-सुख, सुहृद मातु-पितु भाइ।
सनमुख होत जो रामपद, करइ न सहस सहाइ॥

श्रीरामके चरणोंकी ओर उन्मुख होनेमें जो सहर्ष सहायता न करे, वह कोई भी हो--चूल्हेमें जाय। बे-मनसे या विवशकी भाँति सहायता

करने वाला भी नहीं, विरोध करने वालेकी तो कहना क्या। यह बात बहुत कठोर है; किन्तु फक्कड़ बाबाजीसे नरम बात सुननेकी आप आशा भी क्यों करें।

कन्हाईके लिए आप अपनत्वका विस्तार करते हैं--सम्बन्ध बनाते-बढ़ाते हैं तो यह सम्बन्ध आपको कन्हाईके साथ ही बाँधता है। यह सम्बन्ध संसारका बन्धन नहीं दिया करता।

आचार्यने कहा--

संगः सर्वात्मना त्याज्यं यदित्यक्तुं न शक्यते।
साधुभिः सह कर्तव्यं संतः संगस्य भेषजम्॥

आसक्ति सर्वथा त्याज्य है। उत्तम स्थिति यही है कि अपने शरीरसे भी आसक्ति न हो। आसक्ति हो; किन्तु केवल कन्हाईसे ही हो। यह आसक्ति ही तो भक्ति है।

ऐसा नहीं हो पाता तो आसक्ति उनसे जो कन्हाईके हैं। संसारमें सम्बन्ध, अपनत्व कन्हाईको लेकर, कन्हाईके लिए। यह आसक्ति आसक्ति नहीं है। यह तो आसक्तिकी औषधि है। इससे आसक्ति निर्मूल होती है।

'वे मेरे चाचा गुरु हैं।' मैं एक महात्माके दर्शन करने गया तो वहाँ एक युवक वैष्णव साधुने एक वैष्णव महात्माका नाम लेकर अपना परिचय दिया।

'चाचा गुरु?' मैं थोड़ा खीझ गया। घर छोड़ा, परिवार छोड़ा और भगवानको अपना बनानेके लिए निकल पड़े, भजन करना है। भजनका मार्गदर्शक चाहिये, अतः गुरु तककी बात समझमें आनेकी है; किन्तु यहाँ भी वही परिवार, वही पारिवारिक सम्बन्ध? यहाँ भी चाचा, ताऊ, भाई-भतीजे? मैंने उन युवक वैष्णवसे कहा कुछ नहीं, किन्तु मैं झल्ला गया था और अपने क्षोभ या खिन्नताको भी छिपानेका मैंने कोई प्रयत्न नहीं किया।

जिन महात्माके समीप हम दोनों बैठे थे, उन्होंने भी स्पष्ट इस बातको नहीं उठाया। उन्होंने ऐसा कुछ प्रकट नहीं किया कि वे इस विषयमें अपना कोई निर्णय दे रहे हैं। उन्होंने उपदेशके ढंगसे ही चर्चा की। उस चर्चाके मध्य उन्होंने कहा--

'मनुष्य दुर्बल है; किन्तु यह दुर्बलता कोई अपराध नहीं है। दुर्बल है, इसीलिए उसे भगवानका सहारा चाहिये। मनुष्यकी दुर्बलता ही यह है

कि वह अच्छी बातोंका भी दुरुपयोग कर लेता है। गुरुकी आवश्यकता और महत्ता सबको स्वीकार है; किन्तु गुरुडमका कोई समर्थन करेगा? गुरुकी आवश्यकता शिष्यको है। गुरु-सेवाकी आवश्यकता शिष्यको है। लेकिन जब गुरुको शिष्य-संख्या वृद्धि और शिष्योंकी सेवा आवश्यक जान पड़ने लगती है, तब गुरुडम चलता है।'

आगे उन महापुरुषने कहा--'दुर्बल मनुष्य केवल गृह-त्यागसे ही सर्वसंग-विनिर्मुक्त नहीं हो जाता। इसलिए भगवत्सम्बन्ध या गुरुसम्बन्धको माध्यम बनाकर संतों-साधकोंका परिवार बनाता है। इसलिए बनाता है कि यह उसके आराध्यका परिवार है। इसके माध्यमसे वह अपने आराध्यकी निकटता अनुभव करता है। लेकिन यही सम्बन्ध जब व्यावहारिक लाभ या आदान-प्रदानके लिए चलने लगता है तो अपनी उपयोगिता खो देता है। तब यह भी लौकिक परिवारके स्तरपर आ जाता है।'

एक लड़कीने पत्र लिखकर पूछा – 'मैं आपको दादा कहूँ या मानने लगूँ?' पत्रमें उसने मुझे 'बाबा' सम्बोधित किया था। उसके पितामहसे मेरा परिचय था। उसके पिता भी मेरा सम्मान करते हैं। उसके भाई, बहिनें सब मुझे 'बाबा' ही कहते हैं। लेकिन उसके पूछनेका कारण है। वह कन्हाईको भाई मानती है। मैं कन्हाईको छोटा भाई कहता हूँ तो उसका मन मुझे 'दादा' कहना चाहता है। वह मुझे 'बाबा' कहे, यह पारिवारिक पृष्ठभूमि है। वह मुझे 'दादा' कहे, यह उसकी मानसिक पृष्ठभूमि है। उसके लिए 'बाबा' मिटकर 'दादा' बन जाय, यह अधिक श्रेयस्कर है या नहीं?

मैं कई लोगोंको जानता हूँ, जिनका कई लोगोंसे अच्छा पारिवारिक सम्बन्ध है और यह सम्बन्ध केवल भगवान्‌के ही नाते हैं। रक्तका सम्बन्ध उनमें नहीं है।

मेरे साथ तो कन्हाईका पक्षपात है ही। इसने रक्त-सम्बन्ध मेरा कहीं रहने ही नहीं दिया। तेरह-चौदह वर्षकी आयुसे एकाकी। कोई घरमें नहीं और कोई परिवारमें नहीं। कोई नाते-रिश्तेदार नहीं। गोस्वामी तुलसीदासको माता-पिताने त्याग दिया था। कुछ पता नहीं कि वे गोस्वामीजीका उत्कर्ष देखने तक जीवित रहे या नहीं; किन्तु मेरे माता-पिता परलोक पधार गये। मुझे किसीका त्याग नहीं करना पड़ा। मैंने कोई परिवार नहीं बनाया। इतनेपर भी कई परिवार मेरे अपने हैं; उन

परिवारोंमें मैं अभिन्न सदस्य हूँ। कुछमें तो परिवार प्रमुख भी। लेकिन क्यों? कन्हाईके नाते। कोई बन्धन देता होगा यह पारिवारिक सम्बन्ध मुझे?

कन्हाईसे ही अपनत्व—यह सर्वोत्कृष्ट स्थिति। लेकिन सम्बन्धकी, अपनत्वकी सीमा इतनी सरलतासे न की जा सके तो?

सब कर ममता ताग बटोरी।
मम पद मनहिं बाँध बट डोरी॥

मर्यादा-पुरुषोत्तमकी इस बातमें मीन-मेख निकालनेकी धृष्टता मैं कैसे कर सकता हूँ। मैं तो दुर्बलताकी बात कर रहा हूँ। यदि समस्त अपनत्व न छोड़ा जा सकता हो, केवल कन्हाई तक सीमित न किया जा सकता हो तो अपनत्व कन्हाईके लिए।

सम्पन्न लोग अपने बच्चोंके लिए आया तथा सेवक रखते हैं या नहीं? उनको वे अपना सेवक ही तो कहते-मानते हैं। कन्हाई ही कहाँ बड़ा-बूढ़ा है। आप इसके लिए सेवक रखो। जो इसकी सेवामें लगे हैं, इसके हो चुके हैं, उनमें अपनत्वका विस्तार करो तो यह अपनत्व आपको कन्हाईके साथ सम्पृक्त करेगा।



श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान, मथुरा द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

श्रीसुदर्शन सिंह 'चक्र' के ग्रन्थ—

भगवान वासुदेव—(श्रीकृष्णका मथुरा-चरित्र)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ४०८, साधारण जिल्द, मूल्य १०)५०
पूरे रैक्सीनकी जिल्द, १२)५०

श्रीद्वारिकाधीश—(श्रीकृष्णका द्वारिका-चरित्र)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ४००, सजिल्द, मूल्य १०)५०

पार्थ-सारथि (श्रीकृष्णका हस्तिनापुर-चरित्र)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ४३६, पक्की जिल्द, मूल्य १२)००
रैक्सीनयुक्त (बिना गत्तोकी जिल्द) मूल्य १०)००

शिव-चरित— डिमाई आकार, पृष्ठ ४२८, सजिल्द, मूल्य ११)२५

शत्रुघ्नकुमारकी आत्मकथा—
डिमाई आकार, पृष्ठ २१२, सजिल्द, मूल्य ७)५०

हमारी संस्कृति— डिमाई आकार, पृष्ठ २६०, सजिल्द, मूल्य ७)२५

कर्म-रहस्य— डिमाई आकार, पृष्ठ १८४, मूल्य ४)००

आञ्जनेयकी आत्मकथा—(श्रीहनुमान-चरित)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ३१२, सजिल्द, मूल्य ६)००

साध्य और साधन (साधना, भगवद्दर्शन, गुरुतत्व)—
डिमाई आकार, पृष्ठ ३८४, सजिल्द, मूल्य १०)००

श्रीरामचरित भाग-१— डिमाई आकार, सजिल्द, पृष्ठ ३८३, मूल्य १०)००

श्रीरामचरित भाग-२— डिमाई आकार, सजिल्द, पृष्ठ २७२, मूल्य ८)२५

श्रीरामचरित-भाग-३— डिमाई आकार, पृ० ३६४, सजिल्द मूल्य १२)००
पूरे रैक्सीन की जिल्द १४)००

राम-श्यामकी झाँकी भाग-१ पाकेट आकार. पृष्ठ १६०, मूल्य २)००

,, ,, भाग-२ पाकेट आकार, पृष्ठ १३२, मूल्य १)७५

हमारे धर्मग्रन्थ— पाकेट आकार, पृष्ठ ६७, मूल्य १)००

हिन्दुओंके तीर्थ-स्थान— पाकेट आकार, पृष्ठ २७४, मूल्य ३)५०

शिव-स्मरण— पाकेट आकार, पृष्ठ ८५, मूल्य १)२५

हमारे अवतार एवं देवी-देवता— पाकेट आकार, पृष्ठ १०८, मूल्य १)५०

ब्रजका एक दिन— पाकेट आकार, पृष्ठ ११०, मूल्य १)७५

सांस्कृतिक कहानियां प्रत्येक भाग—
पाकेट आकार, पृष्ठ लगभग १६०, मूल्य २)००

ज्ञान गंगा (कहानियाँ)— पाकेट आकार, पृष्ठ २८४, मूल्य ४)५०
नवधा भक्ति (कहानियाँ)— पाकेट आकार, पृष्ठ १७६, मूल्य ३)००
भक्ति भागीरथी (कहानियाँ)— पाकेट आकार, पृष्ठ २४८, मूल्य ४)००
श्यामका स्वभाव— पाकेट आकार, पृष्ठ १००, मूल्य १)५०
उन्मादिनी यशोदा— पाकेट आकार, पृष्ठ १५७, मूल्य २)५०
सखाओंका कन्हैया (सचित्र)— डिमाई आकार, पृष्ठ १६८, मूल्य ६)००

अन्य प्रकाशन--

दो आध्यात्मिक महाविभूतियोंके प्रेरक प्रसंग—
पाकेट आकार, पृष्ठ १८८, मूल्य २)५०
आरतीमाला—पाकेट आकार, सम्पूर्ण पुस्तक आर्ट पेपरपर,
अनेक चित्रों सहित, पृष्ठ ३१, मूल्य १)५०
श्रीराधा-कृपाकटाक्ष-स्तवराज—रंगीन चित्रों सहित, हिन्दी-अंग्रेजी-
उर्दू पद्यानुवाद सहित, पाकेट आकार, पृष्ठ ३६, मूल्य १)००
रसिया भागवत— डिमाई आकार, पृष्ठ ६८, मूल्य १)२५
श्रीविष्णुप्रिया-चरित— डिमाई आकार सजिल्द, पृष्ठ ५३२, मूल्य १२)५०
श्रीविष्णुप्रिया-नाटक—देवनागरी लिपिमें मूल बङ्गला तथा हिन्दी
अनुवाद सहित, डिमाई आकार, सजिल्द, पृष्ठ २७८, मूल्य ७)५०
श्रीलक्ष्मीप्रिया-चरित— डिमाई आकार, सजिल्द पृष्ठ २२६, मूल्य ६)५०
आत्माराम आकर्षक हरिके गुण—
डिमाई आकार, सजिल्द, पृष्ठ २८४, मूल्य ७)७५
श्रीरूप-शिक्षा— डिमाई आकार, पृष्ठ १३९, मूल्य ३)२५
प्रभुपाद श्रीहरिदासजी गोस्वामीकी आत्मकथा—
डिमाई आकार, सजिल्द, पृष्ठ ३७५, मूल्य ९)५०
वैष्णव स्मृति— डिमाई आकार, पृष्ठ ७१, मूल्य ०)७५
श्रीसनातन-शिक्षा—डबल क्राउन आकार, सजिल्द, पृष्ठ ६१०, मूल्य ३०)००
श्रीविष्णुप्रिया-सहस्रनामस्तोत्र — न्योछावर—भक्ति पूर्वक पाठ
श्रीमद्भागवत-पादानुक्रमणिका— कल्याण आकार, पृष्ठ ६०४, मूल्य ८०)००
बाल-रामायण (चित्रमय) डिमाई आकार, पृष्ठ १२८ मूल्य, ७)००
बाल-कृष्णायन डिमाई आकार, पृष्ठ ६४, मूल्य २)००

—×—



श्रीकृष्ण-सन्देश

[आध्यात्मिक मासिक-पत्र]

श्रीकृष्ण-सन्देशका वर्ष जनवरीसे प्रारम्भ होता है। 'श्रीकृष्ण-सन्देश' प्रतिमास ७२ पृष्ठ पाठ्य-सामग्री देता है।

आप श्रीसुदर्शन सिंह 'चक्र' को सशक्त लेखन-शैलीसे इस पुस्तकके द्वारा परिचित हो रहे हैं। श्रीकृष्ण-सन्देशमें श्री 'चक्र' द्वारा लिखित 'श्रीकृष्ण-चरित' प्रति अङ्क १६ पृष्ठ और उन्हीं द्वारा लिखित 'श्रीराम-चरित' प्रति अङ्क ३२ पृष्ठ जा रहा है।

वार्षिक शुल्क — **१० रुपये।**
आजीवन शुल्क — **१५१ रुपये।**
सम्भव हो तो आजीवन ग्राहक बनें।

व्यवस्थापक—
श्रीकृष्ण-सन्देश
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान सेवा-संस्थान
मथुरा-२८१००१